आपातकाल विशेषांक

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जून-जुलाई-अगस्त, 2023
संयुक्तांक : 516-517-518

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755-2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि
व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250
संस्थाओं के लिए : ₹ 300
आजीवन : ₹ 3, 000

यह अंक : ₹ 75 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)
समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय // 05
सत्ता के नशे में चूर नेतृत्व और लोकतंत्र के रक्षण सेनानी

बातचीत // 13
मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. श्री सुन्दरलाल पटवा से डॉ. मयंक चतुर्वेदी

आलेख
दत्तात्रेय होसबाले आपातकाल में संविधान // 18
कप्तान सिंह सोलंकी संविधान से खिलवाड़ और लोकतंत्र को चुनौती // 24
श्रीधर पराड़कर आपातकाल का स्मरण और सबक // 29
लक्ष्मीनारायण भाला आपातकालीन भूमिगत आंदोलन : एक झाँकी // 34
कैलाशचन्द्र पन्त वे पदचाप जो प्रजातंत्र को लील गए थे // 37
कमल किशोर गोयनका आपातकाल में हस्तलिखित समाचार-पत्र // 43
शैवाल सत्यार्थी महाकवि बच्चन और आपातकाल // 47
इंदुशेखर तत्पुरुष क्रूरकाल की करतूतों का काला चिट्ठा // 49
हृदयनारायण दीक्षित संविधान के रास्ते तानाशाही // 51
रामबहादुर राय आपातकाल के कागजात // 54
सुरेश बाबू मिश्रा आपातकाल लोकतंत्र के इतिहास का काला अध्याय // 57
डॉ. रामकिशोर उपाध्याय आपातकाल : लोकतंत्र का काल // 61
संदीप अवस्थी हम आपातकाल के समर्थन में हैं // 63
मोनिका जायसवाल डायरियों में अभिव्यक्त आपातकालीन यथार्थ-चित्रण // 66
धनंजय वर्मा चंद यादें आपातकाल की यानी 'देश को जुकाम हो गया' // 69
रामभुवन सिंह कुशवाह आपातकाल और जेल जीवन के वे दिन...! // 75
अरुण कुमार भगत आपातकाल में बिहार के साहित्यकारों की भूमिका // 83
रमेश गुप्ता आपातकाल में एक दुस्साहसपूर्ण अभियान // 99
जगदीश तोमर ताकि सनद रहे आपातकाल : काले दिनों की तिक्ततायें // 102
प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे गोविंदाचार्य उर्फ भोलानाथ माणिकचन्द वाजपेयी // 110

सुरेश हिंदुस्थानी आपातकाल : लोकतंत्र पर जबरदस्त आघात // 112
पंकज जगन्नाथ जयसवाल आपातकाल के अलग-अलग दौर // 114
हितेश शंकर पुछल्लों पर टिके तानाशाह // 117
विष्णु शर्मा इमरजेंसी की भेंट चढ़ गए थे दिल्ली के एक उपराज्यपाल // 119
पंकज पटेरिया आज भी सिहरन दौड़ जाती है // 121

संस्मरण

शिवराज सिंह चौहान लोकतंत्र के सच्चे प्रहरी हैं मीसाबंदी // 122
जयप्रकाश नारायण ऐसा तो मेरे साथ अँग्रेज सरकार ने भी नहीं किया था // 124
कृष्ण कुमार अष्ठाना मीसाबन्दी सुदर्शनजी // 126
हरिहर शर्मा/गोपाल दंडोतिया काली रातों के साये // 131

कविता

अटल बिहारी वाजपेयी स्वामी आल्हा // 136
बलवीर सिंह 'करुण' कैसा प्रजातंत्र आया है // 138
डॉ. देवेन्द्र दीपक मौन // 140
डॉ. विजयानन्द आपातकाल // 144
डॉ. नाथूराम राठौर वे काली रातें // 143
प्रशांत पोल आपातकाल... // 144
सौ. कुसुम खरे 'श्रुति' आपातकाल बनाम मीसा // 146

कहानी

इंजी. आशा शर्मा सदमा // 148

समीक्षा

विनय त्रिपाठी 'जब कैद हुई अभिव्यक्ति' आपातकाल के कैदी साहित्यकारों से संवाद // 154

कच्चा चिट्ठा

दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में लेखक की भूमिका // 157

सम्पादकीय

सत्ता के नशे में चूर नेतृत्व और लोकतंत्र के रक्षण सेनानी

सर्वप्रथम में अपने स्वभाव के विपरीत इस अंक के संपादकीय के लंबे हो जाने के लिए क्षमा याचना करता हूँ। सामान्यतया छोटे संपादकीय लिखना यह मेरा रुचि का विषय रहा है किंतु इस अंक का विषय मुझे अपने बाल्यकाल की अनेक कड़वी स्मृतियों की याद दिलाता है इसलिए भावावेश में कुछ अधिक लिख जाऊँ तो क्षमा करें।

25 जून का दिवस प्रतिवर्ष हमें स्मरण कराता है भारतीय राजनीतिक इतिहास के एक ऐसे काले अध्याय की जब पूरे भारत में संविधान को ताक पर रखकर इस देश की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपने अहंकार की तुष्टि के लिए आपातकाल लगा दिया था। जी हाँ हम चर्चा कर रहे हैं आपातकाल यानी इमरजेंसी की, इमरजेंसी अर्थात् मीसा की। जी हाँ इस मीसा को मेंटेनेंस ऑफ इंटरनल सिक्योरिटी एक्ट अर्थात् आंतरिक सुरक्षा अधिनियम के नाम से पुकारा गया।

25 जून 1975 से 21 मार्च 1976 तक पूरे 21 माह तक पूरा भारत एक महिला की जिद और अहंकार की भेंट चढ़ कर रह गया था। यह काल पूरे भारतीय इतिहास में इसलिए दुर्भाग्यशाली माना जाता है क्योंकि इस युग में आंतरिक सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत संपूर्ण भारत में 34986 राष्ट्रभक्त कार्यकर्ताओं को नजरबंद किया गया था। मध्य प्रदेश में ही नजरबंद किए गए लोगों की संख्या 5620 थी। इतना ही नहीं इस कानून के अंतर्गत देशद्रोह का आरोप लगाकर पूरे भारत में 75,818 और मध्य प्रदेश में 2,521 राष्ट्रभक्त नागरिकों को जेल में बंद किया गया था।

मेरे साथ भी इस विषयक अनेक स्मृतियाँ हैं जो विचलित करती हैं परंतु मुझे उन घटनाओं की गंभीरता तब इसलिए अधिक पता नहीं चली क्योंकि वह मेरा बचपन का समय था। हालाँकि तब की कुछ कठोर स्मृतियाँ मुझे आज तक सिहरा देती हैं किंतु इस समय मैं बात कर रहा हूँ राष्ट्रीय सुरक्षा कानून अर्थात् देशद्रोह में बंदी बनाए गए व्यक्तियों की। विगत दिनों मध्यप्रदेश के नीमच में एक विधि महाविद्यालय की अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता के लिए मेरा जाना हुआ। स्वाभाविक रूप से अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में अनेक पूर्व न्यायाधीश, वरिष्ठ अधिवक्ता और विधि के विशेषज्ञ सम्मिलित थे। मुख्य अतिथि के रुप में उपस्थित नीमच के एक अत्यंत श्रद्धेय सज्जन जब उद्बोधन देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने अपनी पुरानी स्मृतियों को खँगालते हुए माइक पर जब यह कहा कि मुझे आपातकाल के समय टेलीफोन के खंभे पर चढ़कर भारत सरकार की टेलीफोन लाइनें काटने के आरोप में जेल में निरुद्ध किया गया था तो उनके इस कथन को सुनकर वर्ष 2020 में युवा हो गई पीढ़ी को घोर आश्चर्य

हुआ। बाद में अनेक युवाओं ने इतने वरिष्ठ व्यक्ति के इतने घिनौने आरोप में बंदी होने संबंधी अनेक जिज्ञासाएँ प्रकट कीं और उन्होंने सब का समाधान भी किया।

वास्तव में आज की पीढ़ी इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती कि उन 21 महीनों में पूरे भारत में कैसी खामोशी, श्मशान जैसा सन्नाटा, अत्यधिक निराशा और अज्ञात भय में जी रहे राष्ट्र भक्तों को किस मानसिक प्रताड़ना से गुजरना पड़ा था। यह तो देश का सौभाग्य था कि भारत में जयप्रकाश नारायण जैसा एक बुजुर्ग राजनेता था जिसने युवाओं और छात्रों को जगा कर तत्कालीन सरकार के खिलाफ समग्र क्रांति का नारा देकर खड़ा कर दिया था। उस युग के छात्र आंदोलन की परिणीति के रूप में इस देश को अनेक युवा राजनीतिज्ञ प्राप्त हुए। इन नवोदित छात्र नेताओं में केंद्र की राजनीति के शिखर पर पहुँचे चंद्रशेखर जी और लालू प्रसाद यादव जैसे राजनेताओं से लेकर वर्तमान में मध्यप्रदेश के यशस्वी मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान जैसे युवा भी सम्मिलित रहे।

उसी आंदोलन से राजनीतिक क्षेत्र में प्रकट हुए और ध्रुव नक्षत्र बने श्री अटल बिहारी वाजपेई, श्री लालकृष्ण आडवाणी और समकालीन अनेक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ बाद में राष्ट्रीय राजनीति की धुरी बन कर उभरे थे। आपातकाल को हटाने के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवकों का त्यागपूर्ण सहभाग इस पूरे आंदोलन की एक अनकही कहानी है। उस युग में प्रत्येक संघ का कार्यकर्ता प्राण अर्पित कर देने के भाव से इंदिरा गांधी के द्वारा लादे गए इस काले कानून के विरुद्ध डट कर खड़ा हो गया था। केंद्र में जहाँ जॉर्ज फर्नांडिस जैसे लोकतंत्र सेनानी को अंग्रेजी हुकूमत की क्रूरता की याद दिलाते हुए लोहे की जंजीरों से जकड़ा गया, रेल के इंजन से बाँधा गया ठीक उसी तर्ज पर पूरे भारत में इस आंदोलन में सहभाग करने वाले मीसा बंदियों के साथ जो क्रूरतापूर्ण व्यवहार हुए उनके विषय में चर्चा करते समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

आपातकाल की पूर्व पीठिका को अगर हम देखें तो ध्यान में आता है कि इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित कर दिया गया था। तत्कालीन राजनेता स्वर्गीय राजनारायण ने यह याचिका लगाई थी और न्यायालय ने यह माना कि इंदिरा गांधी ने भ्रष्ट आचरण करके चुनाव जीता है। न्यायालय ने सत्ता के दुरुपयोग के पुख्ता प्रमाण होने पर इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री पद छोड़ने का आदेश दे दिया था किंतु सत्ता के दुरुपयोग के अभ्यस्त नेतृत्व ने राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से देश में आपातकाल लगवा दिया। 25 और 26 जून की उस मध्य रात्रि में गिरफ्तारियों का एक ऐसा भयावह बवंडर चला कि पूरा भारत एक खुली जेल में बदल गया। देशद्रोह के मुकदमों की बाढ़ सी आ गई। समाचार सेंसर होने लगे। अखबारों पर प्रतिबंध लगने लगा। संवाददाता से लेकर संपादक तक और अखबारों के मालिकों तक हर कोई तत्कालीन प्रधानमंत्री के उस क्रूर कानून का शिकार हुए थे। रेवा प्रकाशन लिमिटेड के 'स्वदेश' जैसे समाचार पत्र तो इस कुचक्र के ऐसे शिकार हुए कि भृत्य से लेकर संपादकों तक और प्रबंधन मंडल के एक-एक सदस्य तक जेल में डाल दिए गए। प्रेस पर ताले पड़ गए। श्रद्धेय माणिक चंद जी वाजपेई के मुख से हमने अनेक बार उस युग के

भयावह प्रसंग सुने थे। इतना ही नहीं तो पूज्य मामी जी के देहावसान के पूर्व भी मामा जी घर पर नहीं आ पाए थे और अपनी अर्धांगिनी से उनका जीवन भर का विछोह इस आंदोलन के प्रसाद स्वरूप ही उन्हें प्राप्त हुआ।

कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर पूरे भारत की पुलिस एक प्रकार से कांग्रेस कार्यकर्ताओं का ही दायित्व निभा रही थी। विधि के सारे नियम ताक पर रखकर इसी लूट, खसोट, हिंसा, हत्या, क्रूरता, बर्बरता, दमन, आतंक और भय का ऐसा नंगा नाच चला कि उसे देखकर मुगलों की यातनाएँ शर्मसार हो गईं, अंग्रेजों के कारागार भी पानी मांग गए। कोई सोच भी नहीं सकता था कि भारत की एक महिला प्रधानमंत्री देशभक्त नागरिकों के साथ इतना क्रूर आचरण कर सकती हैं। केवल जेल में बंद कर देने मात्र से आज की पीढ़ी अंदाजा नहीं लगा सकती कि वह जेल कितनी भयावह रही होगी। आज राजनीतिक कैदियों को जेलों में टीवी, अखबार, सुस्वादु भोजन, बढ़िया आरामदायक बिस्तर और मुँह माँगी सुविधाएँ प्राप्त होती है किंतु आपातकाल में इस प्रकार की सुविधाएँ इन राजनीतिक कैदियों को प्राप्त नहीं हुई थीं बल्कि हत्या, लूट जैसे जघन्य अपराधों में बंद कैदियों से भी बदतर यातनाएँ इन्हें दी गई थीं।

उफ्फ! वो अव्यक्त वेदना उस युग में आपातकाल के मीसा बंदियों के मुख से सुने हुए अनेक प्रसंग आज भी मेरे शरीर में झुरझुरी पैदा कर देते हैं। जेल की नारकीय जिंदगी को संक्षेप में समझाएँ तो इन कैदियों को मोटे मोटे सरियों वाली छोटी-छोटी अँधेरी कोठरी में बंद किया जाता था जिसे 12 ताड़ी गेट की कैद कहा जाता था। छोटी सी दुर्गंध मारती खोलियों में प्रकाश की कोई व्यवस्था नहीं होती थी। रात्रि में यदि लघुशंका या शौच के लिए जाना हो तो उसी बैरक में एक खड्डा नुमा खुले स्थान पर निवृत होना होता था। जो दो कंबल बिछाने और ओढ़ने के लिए दिए जाते थे वे इतने गंदे होते थे कि उन्हें बिछाना और ओढ़ने काँटों पर सोने से कम नहीं होता था। सैकड़ों खटमल उन निरपराधों का खून रात भर चूसते रहते थे। यदि रात्रि में स्वास्थ्य खराब हो जाए तो उपचार की कोई व्यवस्था नहीं। प्रात:काल उठकर जिस सार्वजनिक शौचालय में शौच हेतु जाना होता था उनमें दरवाजे केवल आधी ऊँचाई के होते थे। बाहर हौदी से जिस डिब्बे को पानी भरकर ले जाना होता था उसमें जानबूझकर छेद कर दिए जाते थे, जिस कारण शौचालय में पानी समाप्त होने से पहले ही बाहर निकलना अनिवार्य हो जाया करता था। विद्यार्थियों को पढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं दी गयी थी इसलिए अत्यंत युवावस्था के विद्यार्थी अपनी पढ़ाई से वंचित हो गए और उनकी इस पढ़ाई का छूटना जीवन भर के लिए अभिशाप बन गया। इंदौर के अक्षय जी सोडानी और कांतिलाल जी जैन ऐसे ही विद्यार्थी थे जिनकी मूँछ की रेख भी नहीं उभरी थी और उन्हें कारागार में भेज दिया गया था। पत्र लिखकर बाहर भेजना सेंसर का शिकार होता था। पहले जेलर हर पत्र को पढ़ता फिर ही वह डाक में जाता था। समाचार पत्र के दर्शन तो लगभग दुर्लभ से ही थे। इन राजनीतिक बंदियों के सामने ही जब रोटी बनाने के लिए आटा निकाला जाता था तो उसमें बड़ी संख्या में धनेरिये तैरते दिखाई देते थे और

जघन्य अपराधों के कैदी इनकी आँखों के सामने ही उस आटे में पानी डालकर रोटियाँ बनाना शुरू कर देते थे। कच्ची-पक्की रोटियों को सेंक कर एक लगभग दुर्गंध मारते सड़े हुए कंबल पर फेंका जाता था जिससे उस कंबल के बाल रोटियों पर चिपक कर थालियों तक की यात्रा संपन्न कर लेते थे। लेकिन इन सब यातनाओं को हम जेल की बड़ी यातनाएँ नहीं समझें क्योंकि जघन्य घटनाओं का विवरण इन छोटी-छोटी यातनाओं की तुलना में बहुत अधिक दुखद है।

जेल से छूटने के बाद जघन्य यातनाओं के प्रभाव की यदि हम चर्चा करें तो केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा। उत्तर प्रदेश के एक कार्यकर्ता को दोनों पैर मोड़कर और दोनों हाथ जोड़कर कोहनी और घुटनों के बीच से एक मोटा डंडा निकाल कर इस ढंग से फँसा दिया गया था कि यदि वह लुढ़क भी जाएँ तो पुन: बैठ नहीं सकते थे और इस अवस्था में उनको इतने लंबे समय तक रखा गया कि जेल से छूटने के बाद परिवार को पलंग पर लेटा कर उनके पैरों में भारी-भारी पत्थर बाँधकर लटकाना पड़ते थे। जैसे ही वे पत्थर उनके पैरों से खोल दिए जाते थे उनके पैर घड़ी होकर घुटने उनकी ठोड़ी से लग जाते थे। यह तो केवल एक सामान्य सा उदाहरण है किंतु इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकरण ऐसे थे जिनका विवरण देते समय आत्मा काँप जाती है। राजनीतिक बंदियों को बर्फ पर रात-रात भर लिटा कर रखना, उनकी हाथों की हथेलियों पर कुर्सी के पाए रखकर भारी वजन वाले 2-3 पुलिस कर्मचारियों को बैठाना, गुदाद्वार में मोटे डंडे डाल देना और रक्त स्त्राव होने पर उसमें नमक और मिर्ची लगा देना, 36 घंटे इन कार्यकर्ताओं को प्यासा रखना और पानी माँगने पर उनके मुँह में थानेदार द्वारा मूत्र विसर्जन कर देना, इस तरह के घटनाक्रम 10-20 और सैकड़ों की संख्या में नहीं थे अपितु हजारों प्रकरण थे। अनेक प्रसंग तो कार्यकर्ता गण ठहाकों के साथ सुनाते थे किंतु उनसे पैदा हुए कष्ट की कल्पना हम आज नहीं कर सकते। किसी कार्यकर्ता की पत्नी इस भयावह हादसे के कारण उन्हें छोड़कर चली गई। परिवार के परिजन बीमार होकर मृत्यु को प्राप्त हो गए। कहीं कांग्रेस के लोगों ने संघ और राष्ट्रभक्त कार्यकर्ताओं को सार्वजनिक रूप से प्रताड़ित करते हुए उनके बाल मूँडकर गंजा कर दिया। कहीं संघ के स्वयंसेवकों के नाम-पते पूछने के लिए परिवार के लोगों के हाथ-पैर तोड़ दिए गए तो किसी की दाढ़ी-मूँछें मूँड दी गई।

मध्य प्रदेश के लोकतंत्र सेनानियों में आदरणीय मेघराज जी जैन, डॉ. लक्ष्मी नारायण जी पांडे, दादा बेलापुरकर, श्री कन्हैया लाल जी मौर्य, श्री कृष्ण कुमार जी अस्थाना, श्री हिम्मत कोठारी, श्री रामेश जी गुप्ता सहित अनेक ऐसे नाम हैं जिनको एक साथ इस संपादकीय में उल्लेख करना भी संभव नहीं। इतना ही नहीं अनेक पिता-पुत्र एक साथ आपातकाल में जेल में बंद रहे ऐसे जोड़े भी मध्यप्रदेश में कई थे। स्वर्गीय अंबालाल जी जोशी और उनके पुत्र डॉ. रघुनंदन जोशी हों या रतलाम के डॉक्टर मोघे जी और उनके पुत्र विनय मोघे जी हों, दत्ता जी मांदले और उनके पुत्र अनिल मांदले सहित ऐसे अनेक नाम इस समय स्मरण आते हैं।

समाज का प्रतिरोध प्रत्येक स्तर पर इस ढंग से चल रहा था कि आपातकाल का विरोध करने

के लिए लोग किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार थे। ग्वालियर का एक प्रसंग तो इस हिम्मत को दर्शाने के लिए पर्याप्त है। हम सब जानते हैं कि ग्वालियर का तानसेन समारोह संगीत का विश्व प्रसिद्ध कार्यक्रम होता है। आपातकाल के दौर में तत्कालीन नेतृत्व के विरुद्ध अपना बुलंद स्वर प्रकट करने के लिए चलते तानसेन समारोह के मंच पर ग्वालियर के एक युवा कार्यकर्ता श्री सुभाष गोयल मंच पर चढ़े और आपातकाल मुर्दाबाद, इंदिरा गांधी मुर्दाबाद के नारे लगाने लगे। पुलिस ने उन्हें पकड़कर इतना अधिक पीटा और मारा कि आखिरकार उस पिटाई के कारण उस नौजवान की मृत्यु हो गई। वास्तव में इस प्रकार की यातनाओं के शिकार बने कार्यकर्ताओं के परिवारों का संबल बन रहे थे कुशाभाऊ ठाकरे और हरीभाऊ जी जोशी जैसे अनेक कार्यकर्ता। इन वयोवृद्ध कार्यकर्ताओं से लेकर हमारे यशस्वी मुख्यमंत्री शिवराज सिंह जी जैसे युवा कार्यकर्ताओं तक स्वयंसेवकों का उत्साहवर्धन करने के लिए सदैव उनके साथ खड़े रहते थे।

उस संघर्ष ने अपने कार्यकर्ताओं का साहित्यबोध भी जागृत कर दिया था। मुझे स्मरण आता है स्वर्गीय हरिभाऊ जोशी ने उस युग में एक कविता लिखी थी-

''मैं समर्पण के लिए उत्सुक
यहाँ पर माँग लो कितना लहू तुम माँगते हो
आज सत्ता के नशे में चूर हो तुम
बुद्धि से हर तरफ से ही दूर हो तुम
न्याय की तुमने उड़ाई धज्जियाँ
दंभ से अन्याय से भरपूर हो तुम
यह न समझो सत्य आवाज मेरी
झूठ के आक्रोश में तुम दाब दोगे
और कारागार में बंदी बनाकर
क्रांति के बढ़ते चरण तुम बाँध दोगे
मत समझना यह समर्पण हार है
तोल लूँ कितना करारा वार है
विश्व देखेगा समय के पृष्ठ पर
स्वाभिमानी रक्त की यह धार है
भूलना मत यह नशा महँगा पड़ेगा
दंभ का मस्तक यहाँ गहरा पड़ेगा।''

मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि यह जो कार्यकर्ता उस युग में इतने ओजयुक्त गीत और कविताएँ लिख रहे थे उनका साहित्य से दूर-दूर तक कोई लेना-देना नहीं था किंतु फिर भी उनकी कविताओं के स्वर मुझे स्वतंत्रता संग्राम के क्रांतिकारियों के स्वर से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं।

वास्तव में इसी घनीभूत पीड़ा को लोकतंत्र सेनानियों ने अपनी पंक्तियों में प्रकट किया था। यह गीत और कविताएँ स्वयंसेवकों को अपना सर्वस्व समर्पण कर देने की प्रेरणा दे रहे थे। यही कारण है कि आपातकाल के दौरान अथवा वहाँ की पीड़ाओं के कारण से अस्वस्थ होकर जेल से बाहर आने के बाद भी हुतात्मा हुए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी मालिका हमें दिखाई देती है। केवल मध्य प्रदेश की ही चर्चा करें तो श्री शालिग्राम आदिवासी खरगोन, श्री प्रभाकर राजे कटंगी, श्री परशुराम रजक जबलपुर, श्री सोमनाथ खेड़ा सिवनी, श्री हशमत वारसी भोपाल, श्री भैरव भारती नागदा, श्री घीसा लाल गोयल नलखेड़ा, श्री अमर सिंह जी भूतिया देवास, श्री ठाकुर लाल जेठवानी उज्जैन जैसे अनेक सेनानियों की स्मृतियाँ आज भी आँखें भिगो देती हैं। इन देशभक्तों के बलिदान की संख्या पूरे भारत में बहुत बड़ी मात्रा में रही। उत्तर प्रदेश में 26, मध्य प्रदेश में 16, बिहार में 15, महाराष्ट्र में 14, पश्चिम बंगाल में 11, कर्नाटक में 8, केरल में 6, पंजाब में 6, दिल्ली में 4, असम में 2, गुजरात में 2, हिमाचल में 2, जम्मू कश्मीर में 2, राजस्थान में 2, चंडीगढ़ में 1, और तमिलनाडु में 1 कार्यकर्ताओं के हुतात्मा होने के समाचार उन दिनों प्राप्त हुए थे। दुर्भाग्य यह कि इतने बड़े प्रत्यक्ष नरसंहार की दोषी को कभी इसका दंड नहीं मिला।

आज की पीढ़ी के लोगों को यह लग सकता है कि कारावास से बाहर आने के बाद आखिरकार इन कार्यकर्ताओं की मृत्यु क्यों हुई होगी? इस प्रश्न के समाधान के लिए हम सबको आपातकाल का काला इतिहास विस्तार से पढ़ना चाहिए। हम आज इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि उस काल की सर्वमान्य राजनीतिक महिला नेत्री परम आदरणीया राजमाता सिंधिया जी को भी सीलन और दुर्गंध से युक्त एक ऐसे बैरक में रखा गया था जिसमें पागल, दुर्दांत अपराधी और वेश्याओं को रखा गया था किंतु राजमाता सिंधिया जैसी मातृशक्ति ने भी उस युग में इस संघर्ष को अत्यंत निर्लिप्त भाव से स्वीकार किया था। राजमाता गायत्री देवी, श्रीमती मृणाल गोरे, श्रीमती मालती देवी चौधरी जैसी अनेक बहनें उस काल में जिस प्रकार के कठोर कारागार को झेल कर आई थीं वह अत्यंत भयावह था। पुरुष कार्यकर्ताओं के साथ हुए अत्यंत वीभत्स घटनाक्रमों ने उन्हें मौत की ओर धकेला था। किसी कार्यकर्ता को सीधे बिजली के झटके दिए गए तो किसी कार्यकर्ता के मूत्र विसर्जन स्थान पर 10-10 किलो के पत्थर लटका दिए गए। भयावह पिटाई के दृश्यों का विवरण बताता है कि एक साथ 15-15/ 20-20 संतरी कार्यकर्ताओं को लगातार बेंतों और लाठियों से पीटा करते थे। खून से लथपथ हो जाने और बेहोश हो जाने का भी उन पर कोई असर नहीं होता था। किसी के दांत टूटते थे तो किसी का सिर फट जाता था। 16-16 और 18-18 टाँके आना सामान्य बात हुआ करती थी।

आपातकाल को हटाने के लिए जेल में बंदी बने स्वयंसेवकों के अतिरिक्त बाहर भूमिगत रहकर उस संघर्ष को परवान चढ़ाने वाले कार्यकर्ताओं का योगदान भी अपने आप में अद्भुत रहा। सरकार के विरुद्ध भूमिगत रहकर संघर्ष करने वाले कार्यकर्ताओं में रघुनंदन जी शर्मा और बालमुकुंद जी झा जैसे अनेक कार्यकर्ताओं के स्मृति प्रसंग आज भी मुझे रोमांच से भर देते हैं। मैं रतलाम जिले

के एक छोटे से स्थान आलोट का निवासी हूँ। मुझे आज भी स्मरण आता है कि उस समय आलोट के श्री शांतिलाल जी तलेरा, श्री पंचम लाल जी जैन, श्री शांतिलाल जी डूंगरवाल सहित मेरे पिताजी श्री जीवन लाल जी दवे भूमिगत रहकर इस पूरे आंदोलन को सक्रिय रखने के दायित्व का निर्वाह कर रहे थे। पिताजी क्षिप्रा नदी के किनारे ग्रामों और जंगलों में भटककर कार्यकर्ताओं से देर रात अँधेरे में मिलने जाते थे। मेरी अत्यंत बाल्यकाल की भयावह स्मृतियों में आज भी वे दृश्य दौड़ने लगते हैं जिनमें लावरे सरनेम वाले एक थानेदार का आगमन हमारे घर में बगैर समय देखे होता था। पिताजी को गिरफ्तार करने के लिए वह थानेदार केवल दिन में ही नहीं बल्कि कई बार मध्य रात्रि में भी अचानक आकर पूरे घर का सामान बिखेर दिया करता था। एक-एक कोठी, एक-एक पेटी को वह खोल-खोल कर सारा सामान पूरे घर में फैला कर जाता था। इतना ही नहीं हम बच्चे जब भोजन कर रहे होते थे तो वह आकर हमारी भोजन की थालियों को लात मारने से भी नहीं हिचकता था। उस भयावह दौर में भूमिगत रहकर सरकार के विरुद्ध पर्चे बाँटने और रात्रि के अंधकार में सरकारी कार्यालयों की दीवारों पर पोस्टर चिपकाना तथा साइक्लोस्टाइल से छोटे-छोटे पत्र तैयार करके घर-घर में फेंक कर आने जैसे काम, यही सारे भूमिगत कार्यकर्ता कर रहे थे।

पीड़ित परिवारों के अनेक प्रसंग तो आज भी हमें द्रवित कर देते हैं। जबलपुर की पूर्व सांसद जयश्री बनर्जी दीदी को और उनके पति को जब गिरफ्तार किया गया था तब उनका बेटा दीपांकर मात्र 4 वर्ष का था। हम कल्पना कर सकते हैं एक महिला प्रधानमंत्री सहज मातृत्व के उस भाव को भी पहचान नहीं पाई और यातनाओं के कारागार में इन सब कार्यकर्ताओं को डालती रही। कुछ युवाओं को तो विवाह की वेदी पर से दूल्हे के वेश में ही उठाकर कारागार में डाल दिया गया। सुसनेर के श्री गिरिराज शरण शर्मा जो कि अधिवक्ता थे उनके साथ हुआ यह घटनाक्रम इस बात को सिद्ध करता है कि उस युग की सरकार ने तानाशाही का कोई तरीका छोड़ा नहीं था। भूमिगत आंदोलन के सेनानियों में श्री कुशाभाऊ ठाकरे के साथ प्यारे लाल जी खंडेलवाल, नारायण प्रसाद जी गुप्ता, मोरेश्वर रावजी गदरे, कैलाश नारायण जी सारंग, हरि मोहन जी मोदी जैसे अनेक कार्यकर्ता लगातार संघर्ष कर रहे थे। नारायण प्रसाद जी गुप्ता तो बताते रहे कि वह पायजामा और बनियान पहने 3 दिन तक कार्यकर्ताओं के घरों के दरवाजे खटखटाते रहे किंतु हर घर से बच्चे बाहर निकल कर एक ही बात कहते थे पापा जेल में हैं। परिचय के अभाव में आखिर इन भूमिगत कार्यकर्ताओं को कहाँ ठौर मिलता?

वास्तव में इन संघर्षों की दास्तानें जितनी मात्रा में लिखी जाना चाहिए उतनी मात्रा में लिखी नहीं गईं किंतु फिर भी साहित्य क्षेत्र में होने के कारण इस अवसर पर मैं साहित्यकारों के साथ उन कार्यकर्ताओं को भी प्रणाम करता हूँ जिन्होंने अपनी लेखनी इस आपातकाल के विरुद्ध उठाई थी। नागार्जुन की 'जयप्रकाश पर पड़ी लाठियाँ लोकतंत्र की', माधव शंकर इंदापुरकर जी द्वारा लिखित 'आपातकाल इतिहास का कालापन्ना', सर के पी सिंह जी द्वारा लिखित 'स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बनाम लोकतंत्र प्रहरी', गुलशन सेठिया जी का आलेख 'आपातकाल एक प्रशिक्षण वर्ग', पूर्व

सरसंघचालक सुदर्शन जी द्वारा लिखित 'अरे यह तो सत्य की लड़ाई है', शरद यादव द्वारा लिखित 'इस देश में कोई हिटलर नहीं बन सकता' से लेकर रामलीला मैदान में सस्वर गाया गया रामधारी सिंह दिनकर का गीत 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' तक का उल्लेख करते हुए ऐसे सभी लेखनधर्मी साहित्यकारों को इस आलेख के माध्यम से मैं अपना विनम्र प्रणाम अर्पित करता हूँ। वास्तव में आपातकाल के इस अँधेरे युग के प्रसंगों को लिखना बड़ा कठिन कार्य है। इन सबको लिखने के लिए कलम में स्याही के साथ अपने खारे आँसुओं को मिलाना पड़ता है। आपातकाल की स्मृतियों को एक बार पुन: स्मरण कराने का तात्पर्य केवल इतना है कि नई पीढ़ी जान सके कि आज वर्ष 2021 में टीवी चैनलों पर और अखबारों में बड़े-बड़े लेख लिख कर अथवा प्रेस वार्ताओं को आयोजित करके कांग्रेस के जो नेता आज के प्रधानमंत्री जी पर हिटलर होने का आरोप मढ़ते हैं और बोलने की स्वतंत्रता छीनने का गंदा आरोप लगाते हैं, उन्हें अपना स्वयं का यह घृणित इतिहास पढ़ लेना चाहिए। बोलने की आजादी छीनना, प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित करना और निरपराध नागरिकों को क्रूर यातनाएँ देना क्या होता है? यह जानना है तो इन कार्यकर्ताओं को अपना ही पुराना इतिहास पढ़ लेना चाहिए। इसकी वास्तविक परिभाषाएँ उन्हें सहज रूप से समझ आ जाएँगी। 25 जून को आपातकाल की वर्षग्रंथि के अवसर पर मैं हुतात्मा हुए कार्यकर्ताओं को श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। उन कार्यकर्ताओं को भी विनम्र प्रणाम करता हूँ जो यातनाओं को भोग कर बाद में पुन: समाज और राष्ट्र कार्य में सक्रिय हुए और आज भी हम सबको मार्गदर्शन प्रदान कर रहे हैं।

पूज्य बाबा साहब अंबेडकर के द्वारा निर्मित संविधान को इससे बुरे दिन कभी न देखना पड़े यही प्रार्थना ईश्वर से करते हुए इस संपादकीय को समाप्त करता हूँ।

सदैव सा

डॉ. विकास दवे

संपादक एवं निदेशक

साहित्य अकादमी (म.प्र.)

मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री स्व. श्री सुन्दरलाल पटवा से डॉ. मयंक चतुर्वेदी

मध्यप्रदेश में सुन्दर लाल पटवा की पहचान एक ऐसे राजनेता की थी, जिन्होंने भारतीय जनता पार्टी से पूर्व मातृ पार्टी के रूप में जनसंघ को यहाँ सींचा और उसके बाद भाजपा की नींव इस राज्य में रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वहीं भाजपामय जिस राजनीतिक पौधे को इन्होंने सिंचित किया, उसकी सुगंध अपने जीवनकाल में ही राज्य के कोने-कोने तक पहुँचाने में आपने सफलता प्राप्त की है।

श्री पटवा की एक विशेषता यह भी रही है कि वे मध्यप्रदेश के इकलौते पूर्व मुख्यमंत्री हैं, जिन्होंने वर्तमान मुख्यमंत्री शिवराज सिंह के अलावा समतामूलक समाज और एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय के स्वप्न को जिसमें कि विकास में पीछे छूट चुके व्यक्ति को मुख्यधारा में सम्मिलित करने का उद्देश्य शामिल है के लिए सबसे अधिक पैदल राजनीतिक यात्राएँ की हैं। यहाँ मध्यप्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री सुन्दर लाल पटवा से हिन्दुस्थान समाचार बहुभाषी न्यूज एजेंसी के प्रदेश ब्यूरो प्रमुख डॉ. मयंक चतुर्वेदी के बीच आपातकाल के दौरान उनके क्या अनुभव रहे और लोकतंत्र की पुनर्स्थापना के लिए उनके द्वारा किए गए संघर्ष पर वर्ष 2016 में हुई बातचीत के अंश दिए जा रहे हैं। यही कारण है कि हमारी उस परंपरा का क्रम भंग कर रहे हैं जिसमें संपादक स्वयं साक्षात्कार लेते हैं।-संपादक।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : श्री पटवा जी, आपातकाल भारतीय इतिहास का वह स्याह पन्ना है, जिस पर जितनी बात की जाए कम होगी, यह आपका भोगा हुआ यथार्थ भी है। आज आप इस कालखण्ड को किस रूप में देखते हैं?

सुन्दरलाल पटवा : 26 जून, 1975 को आपातकाल की घोषणा श्रीमती इंदिरा गाँधी ने की थी। उनके प्रति श्रद्धाभाव रखने वालों ने इसे अपने समय में 'अनुशासन पर्व' तक कहा, जब तक कि वक्त के गुजरने के साथ उनके सामने आपातकाल की यथास्थिति प्रकट नहीं हो गई। आपातकाल की सच्चाई यही थी कि ये 'दमन पर्व' था। श्रीमती गाँधी ने अपने विरोधियों तथा उन सभी राजनीतिक दलों के नेताओं को जिनसे उन्हें जरा भी भय प्रतीत होता था उन सभी को नींद से जगाकर जेल में डाल दिया और यह सब हुआ आंतरिक सुरक्षा के नाम पर। तत्कालीन सरकार को लगा कि देश की आंतरिक सुरक्षा पर खतरा है और इस बहाने से आंतरिक सुरक्षा कानून के तहत बंदियों को न्यायालय में प्रस्तुत किए बगैर ही सजा देना शुरू कर दिया गया। न अपील, न वकील, न दलील। अंधकार ही अंधकार था, चारों ओर अंधकार था। कोई सुनने वाला नहीं था। प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने देश में तानाशाही कायम कर दी। अखबारों में सेंसरशिप लागू हो गयी। उनकी तारीफ केवल छप सकती थी उनके खिलाफ टिप्पणी छपना तो दूर की

बात हो गई थी। एक तरह से बोलने तक की आजादी इस दौरान छीन ली गई थी।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : पुलिस ने आपको कब पकड़ा और आप कब तक जेल में बंद रहे?

सुन्दरलाल पटवा : मुझे पुलिस उसी रात पकड़ ले गई जिस दिन देश में आपातकाल लगाए जाने की घोषणा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा की गई थी। मेरा घर पुलिस थाने के सामने मंदसौर में था। हुआ यह कि एसपी ने मुझे थाने बुलाया और आगे किसी विषय पर बात न करते हुए सीधे लॉकप में बंद कर दिया। मेरी यह जेल यात्रा फिर उस समय तक चलती रही जब तक कि इस मीसा की समाप्ति नहीं हो गई। यानि कि मैं पहले दिन से लेकर अंतिम दिन तक मीसा के तहत जेल में बंद रहा।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : क्या उस समय कुछ लोग सहयोग के लिए आगे आए?

सुन्दरलाल पटवा : हाँ, बिल्कुल, आए। (पूरा नाम न बताते हुए) बेरिस्टर त्रिवेदी हमारे साथ थे, पिटिशन तैयार की गई, लगाई भी गई लेकिन कोई सुनने वाला नहीं था। सरकार के सामने हमारी एक न चली। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ और समाजवादी पार्टी के सर्वोदयी कार्यकर्ता उस समय इंदौर सेंट्रल जेल समेत पूरे प्रदेश की जेल में निरुद्ध कर दिये गए थे। उन पर अनर्गल आरोप जड़ दिये गए। मेरे साथ जनसंघ के नेता वीरेन्द्र कुमार सकलेचा पर आरोप लगाया गया कि वे सरकार के खिलाफ जनता में बगावत पैदा कर रहे हैं। इसी प्रकार से नीमच के वयोवृद्ध नेता उमाशंकर त्रिवेदी जिनकी आयु 80 वर्ष के ऊपर थी, पर सरकार ने आरोप लगाया कि वे टेलीफोन के खंबे पर चढ़कर तार काट रहे हैं, इत्यादि। सरकारी मशीनरी कुछ सुनने को तैयार नहीं थी। मैं चार दिन मंदसौर जेल में रहा, उसके बाद मुझे इंदौर केंद्रीय कारागृह में शिफ्ट कर दिया गया।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : जेल में आपके साथ अन्य बंदी साथियों की क्या मनोदशा थी, इस संबंध में आप क्या अनुभव कर रहे थे?

सुन्दरलाल पटवा : मेरे साथ जनसंघ के अलावा कई राजनैतिक पार्टियों के लोग भी मीसा में जेल में बंद किए गए थे। ज्यादातर नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की स्थिति यह थी कि उनका जेल से मुक्त होने का विश्वास डगमगाने लगा था। अधिकांश का एक ही प्रश्न परस्पर होता था, कब छूटेंगे, कब छूटेंगे। जेल में ऐसा माहौल हो गया था कि लोग यह आस छोड़ने लगे थे कि जेल से जिन्दा बाहर लौट भी पाएँगे या नहीं। उन्हें भय था कि जेल में पुलिस उन्हें मार डालेगी और उनकी हड्डियाँ ही बाहर निकलेंगी। किसी तरह एक वर्ष बीता लेकिन उसके बाद तो जैसे ज्यादातर हमारे साथी निराश ही हो गए, उन्हें लगने लगा था कि अब तो जिन्दगी यहीं गुजरेगी। बड़े बड़े नेताओं की सही पहचान उन 19 महीनों में हो गई जो स्वयं को बहुत बढ़ा चढ़ाकर प्रस्तुत करते थे। कई लोग श्रीमती गाँधी के भय से राजनीति छोड़ने की बात करने लगे थे। ऐसे लोग मुझसे कहा करते थे कि इंदिरा जी के पास लिखकर माफीनामे का आवेदन भिजवा देते हैं और साथ में यह भी लिखेंगे कि राजनीति से संन्यास ले लेंगे। उन्हें छोड़ दिया जाए।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : आप तो सर्वमान्य नेता थे, ऐसे समय में आपने क्या किया?

सुन्दरलाल पटवा : अच्छा प्रश्न किया है, तुमने। थोड़ा रुकते हुए, मैं और मेरे साथी इस दौरान सभी का हौसला बढ़ाते थे। मैं यह बात सभी से बार–बार कहता कि हम अधिकतम तीन वर्ष तक यहाँ रखे जाएँगे, उसके बाद यह आपातकाल देखना, हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगा। मैं कहता था कि यह हमारे

लिए स्वर्णिम काल से कम नहीं है। बाहर, जनता देख, सुन और समझ रही है। वह अपना निर्णय जरूर हमारे पक्ष में ही सुनाएगी। हमारा यह त्याग व्यर्थ जानेवाला नहीं है। यह आपातकाल हमारे लिए आपातकाल नहीं, काँग्रेस के लिए आपातकाल सिद्ध होगा। पर इतना सब कहने के बाद भी बहुत से ऐसे लोग भी हमारे साथ थे जिन्हें मेरी कही हुई बातों पर भरोसा नहीं होता था। ऐसे लोग ज्यादा नहीं थे, किंतु जितने भी थे ये सभी बहुत निराश हो गए थे।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : मीसा बन्दियों को छुड़ाने के लिए लोकनायक जय प्रकाश नारायण ने भी बाहर से कुछ प्रयत्न किए थे, क्या उनका सरकार पर कोई असर नहीं हुआ?

सुन्दरलाल पटवा : हाँ, हाँ बिल्कुल हुआ। श्रीमती गाँधी पर उनके प्रयासों का विपरीत असर हुआ। प्रायः होता यही था कि जो राजनैतिक बंदी होते थे वे महीने दो महीने में जेल के बाहर आ जाते थे। लेकिन यहाँ तो 6 माह और देखते-देखते एक वर्ष बीत रहा था। इन परिस्थितियों में मीसाबंदी के पारिवारिक सदस्य सशंकित थे कि जो अंदर गए वो कभी बाहर आएँगे भी कि नहीं। इसलिए सभी दलों का सहयोग लेकर जय प्रकाश नारायण ने मीसाबंदियों को छुड़ाने के लिए लोकसंघर्ष समिति का गठन किया, जिसके माध्यम से इंदिरा जी की तानाशाही के खिलाफ जन सत्याग्रह की योजना बनायी गई। मध्यप्रदेश की तरह देश के कई राज्यों से हजारों लोग स्वेच्छा से सत्याग्रह करके जेल गए। लेकिन इस सत्याग्रह का असर इंदिरा गाँधी पर उल्टा हुआ। परिस्थितियाँ चहुँओर मानवीय संवेदनाओं को झकझोर के रख देने वाली थीं।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : जेल में बंद मीसा बंदियों के साथ ऐसी क्या परिस्थितियाँ पैदा हो गई थीं?

सुन्दरलाल पटवा : मीसाबंदियों के घरवालों को बहुत कष्ट दिए जाते थे। उस समय लोग मीसा बंदी के परिवार या उससे जुड़े किसी भी व्यक्ति से संबंध रखने में भय का अनुभव करते थे। उन्हें लगता था कि पुलिस पकड़कर जेल में बंद न कर दे। जिलाधीश मीसाबंदियों की पत्नी को मिलने तक का समय नहीं देते थे, बहुत प्रयत्नों के बाद यह समय मिल पाता था। यही हाल अन्य पारिवारिक सदस्यों के साथ था। कई बार मिलने के लिए घरवालों द्वारा आवेदन देने और प्रयास करने के बाद ही कोई मीसाबंदी अपनी पत्नी, बच्चे और बूढ़े माँ बाप से नहीं मिल पाता था। इसके अलावा महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि मीसाबंदी परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने पर बंदी को तीन दिन का पेरोल देकर अंतिम संस्कार में शामिल होने की सुविधा दी गई थी, लेकिन हकीकत कुछ ओर थी। अक्सर, बंदी की जमानत और सालवेंसी के लिए अडंगा लगाया जाता, जो सक्षम नहीं थे उनको पैरोल नहीं मिलती और इस कारण से वे अपने माता-पिता, भाई, पत्नि के अंतिम संस्कार तक में शामिल नहीं हो पाते थे। वास्तव में यह मानवीय संवेदनाओं को झकझोरकर रख देने वाली स्थितियाँ थीं। आजादी की लड़ाई के सेनानियों के लिए तो सजा तय होती थी मगर मीसा बंदियों की सजा तय नहीं थी। आपातकाल के जरिए लोकतंत्र को समाप्त करने की कोशिश की गई थी मगर इस मंशा को देश की जनता ने पूरा नहीं होने दिया।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : इस दौरान आपकी पत्नी श्रीमती पटवा ने भी राजनीतिक आंदोलन किए थे?

सुन्दरलाल पटवा : वास्तव में आपातकाल के वक्त सबसे ज्यादा कष्ट हम जैसे राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं की पत्नियों ने झेले। मेरी पत्नी भारती के साहस की मैं आज भी दाद दूँगा। वह

जब भी जेल में मिलने आतीं तो कहती थीं कि आपसे मिलने के लिए पाँव उछलकर चलते हैं और वापिस जाते समय यही पैर सवा मन के हो जाते हैं। उन्होंने भी इस आपातकाल के दौरान एक आंदोलन का नेतृत्व किया था। इस में मीसाबंदी परिवारों की महिलाएँ मंदसौर में एकत्र होकर तानाशाही के खिलाफ सड़कों पर जुलूस की शक्ल में निकलीं। जिला प्रशासन ने भरसक कोशिश की कि यह जुलूस न निकले। महिलाओं को हतोत्साहित करने के लिए सरकार की ओर से तमाम प्रयत्न हुए, यहाँ तक प्रचारित किया गया कि जुलूस में भाग लेने वाली महिलाओं को गिरफ्तार करके मीसा में बंद कर दिया जाएगा। लेकिन इसके बाद भी मेरी धर्मपत्नी ने महिलाओं के जुलूस प्रदर्शन की अनिवार्यता को देखते हुए उसका नेतृत्व किया। इसके पूर्व उन्होंने कभी किसी राजनैतिक जुलूस में हिस्सा नहीं लिया था। मंदसौर के दशपुरकुंज गार्डन से जुलूस प्रारंभ हुआ। जिलेभर से एकत्र हुईं महिलाएँ हाथ में तख्तियाँ पकड़ी हुई थीं जिस पर लिखा था कि मीसाबंदी छोड़ दो, छोड़ दो, इंदिरा तेरी तानाशाही नहीं चलेगी, नहीं चलेगी। वास्तव में यह जुलूस आपातकाल के मुँह पर करारा तमाचा था। जुलूस कलेक्ट्रेट पहुँचा। महिलाओं की ओर से हमारी श्रीमती ने कलेक्टर से कहा कि पैरोल पर आने के लिए जमानत और सालवेंसी का अडंगा हटाएँ। जिसे कि महिलाओं के भारी आक्रोश को देखते हुए मंजूर कर लिया गया। इसके बाद मीसाबंदियों को व्यक्तिगत मुचलके पर पैरोल मिलना शुरू होने लगा। आज इतिहास के आइने में देखें तो मध्यप्रदेश में आपातकाल के पाए में महिलाओं का यह प्रदर्शन अपने आप में पहली घटना थी, बाद में अनेक राज्यों में भी महिलाओं ने इस प्रकार के जुलूस, धरना, प्रदर्शन किए।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : इन सभी विपरीत परिस्थितियों के बीच क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का भी कुछ सकारात्मक योगदान था?

सुन्दरलाल पटवा : मीसा के दौरान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तरुण स्वयंसेवकों का उत्साह देखते ही बनता था। वे बेफिक्र होकर जेल में शाखा लगाते थे और कबड्डी, खो-खो, बालीबॉल, बेडमिंटन जैसे खेल खेलते थे। उनका बालपन हम सभी के लिए त्याग और सेवा का भाव जगाने वाला तथा संघर्ष करते रहने की प्रेरणा देने वाला रहा। संघ के लोग मीसा में बंद लोगों के परिवारवालों की छद्म नाम रखकर खाद्य सामग्री से लेकर स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचाने तक एवं अन्य सभी प्रकार का सहयोग कर रहे थे। सही पूछिए तो संघ का योगदान संपूर्ण आपातकाल के दौरान अति महत्वपूर्ण रहा है। संघ की उपस्थिति के कारण जेल के अंदर हम जैसे लोग कुछ सीमा तक बेफिक्र थे, हमें मालूम था कि संघ सभी मीसाबंदियों के घरवालों की बाहर बराबर मदद कर रहा है, उनकी चिंता कर रहा है।

डॉ. मयंक चतुर्वेदी : मध्यप्रदेश में मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान ने मीसा बंदियों के लिए लोकनायक जयप्रकाश सम्मान निधि देने का जो प्रयास किया है, उसे आप किस रूप में देखते हैं।

सुन्दरलाल पटवा : शिवराज सिंह जी का यह बहुत अच्छा निर्णय और कार्य है। वास्तव में यह तो लोकतंत्र की रक्षा के लिए किए गए संघर्ष और त्याग की भावना का सम्मान है। मुख्यमंत्री शिवराज सिंह का यह कदम अन्य राज्यों को भी प्रेरणा देनेवाला है। आपातकाल के दौर में मीसा में बंद हुए अनेक मीसाबंदियों के परिवार उजड़ गए, अनेक लोग आज इस दुनिया में नहीं हैं और उस समय जो किशोर अवस्था में कदम रख रहे थे आज वे बुढ़ापे की दहलीज पर कई प्रकार की शारीरिक एवं अन्य प्रकार की

समस्याओं से घिरे हुए हैं। परेशानियों के इस दौर में सरकार द्वारा दी जाने वाली सम्मान निधि निश्चित ही उनके अँधेरे जीवन में रोशनी ला रही है।

धन्यवाद, श्री पटवा जी आपने अपने कीमती वक्त में से कुछ समय निकालकर साक्षात्कार के लिए दिया। इन परिस्थितियों में लगता है आपातकाल- भारतीय संविधान में आपातकाल की घोषणा करने के लिए कुछ विशेष परिस्थतियों का जिक्र है। जैसे कि देश पर बाहरी आक्रमण होने, आंतरिक अशांति को खतरा, अथवा वित्तीय संकट की स्थति में आपातकाल की घोषणा की जा सकती है। देश ने 1962 में चीन के साथ हुआ युद्ध और 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध के दौरान आपातकाल का दौर देखा था। इन दोनों समय में इसे लगाने का मुख्यकारण बाहरी आक्रमण था। 25 जून 1975 की मध्यरात्रि से 21 मार्च 1977 के बीच जो आपातकाल का दौर देश ने देखा, वह आंतरिक अशांति के करण अनुच्छेद 352 के अंतर्गत लगाया गया था।

25 जून, 1975 की मध्यरात्रि को मंत्रिमंडल की अनुशंसा पर राष्ट्रपति फखरूद्दीन अली अहमद ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। यद्यपि हकीकत यह है कि आपातकाल की घोषणा रेडियो पर पहले कर दी गई तथा बाद में सुबह मंत्रिमंडल की बैठक के बाद उस पर राष्ट्रपति ने हस्ताक्षर किए। यद्यपि संवैधानिक प्रावधान यह है कि मंत्रिमंडल की बैठक के बाद उसकी अनुशंसा पर जब राष्ट्रपति हस्ताक्षर कर देते हैं तब आपातकाल की घोषणा की जा सकती है। आपातकाल की घोषणा के साथ ही सभी नागरिकों के मौलिक अधिकार निलंबित कर दिए गए। 25 जून की रात से ही देश में विपक्ष के नेताओं की गिरफ्तारियों का दौर शुरू हो गया। जयप्रकाश नारायण, लालकृष्ण आडवाणी, अटल बिहारी वाजपेयी, जॉर्ज फर्नांडीस आदि बड़े नेताओं को जेल में डाल दिया गया। जेलों में जगह नहीं बची। आपातकाल के बाद प्रशासन और पुलिस के द्वारा भारी उत्पीड़न की कहानियाँ सामने आईं। प्रेस पर भी सेंसरशिप लगा दी गई। हर अखबार में सेंसर अधिकारी बैठा दिया, उसकी अनुमति के बाद ही कोई समाचार छप सकता था। यह दौर 23 जनवरी 1977 को मार्च महीने में चुनाव की घोषणा हो जाने के साथ ही थमा।

संपर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 09425601264

आलेख

दत्तात्रेय होसबाले

आपातकाल में संविधान

नई दिल्ली. देश के इतिहास में कई लोगों ने उस समय आपातकालीन संघर्ष को एक दृष्टि से द्वितीय स्वतंत्रता संग्राम कहा है। और आज भी कई बार लगता है, ये सही व्याख्या है। विदेशी शासन के खिलाफ एक लंबा संघर्ष हुआ, स्वतंत्रता आन्दोलन हुआ। लेकिन देश के अंदर के ही अपने लोगों ने संविधान के प्रावधान का दुरुपयोग करके, देश के लोगों की आवाज को दमन करने का और जयप्रकाश नारायण जैसे व्यक्ति को भी दमन करने का कार्य किया, और सामान्य लोगों का दमन हुआ, इसलिए एक दृष्टि से द्वितीय स्वतंत्रता संग्राम कहना योग्य है। ये आपातकाल क्यों हुआ? देश में आपातकाल तब होता है, जब देश असुरक्षित है। कोई व्यक्ति या पार्टी असुरक्षित है, अस्थिर है, उसके लिए संविधान के प्रावधान का उपयोग या दुरुपयोग करना यह लोकतंत्र में कभी भी नहीं होना चाहिए।

'आपातकाल में संविधान प्रदत्त नागरिकों के मौलिक अधिकारों को रद्द कर दिया था। यही कारण है कि किसी भी प्रकार-भाषण, लेखन, अभिप्राय के अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य, संगठन स्वातंत्र्य आदि नहीं हो सकते थे।'

लोकतंत्र के इतिहास में काले अध्याय आपातकाल-1975 पर बातचीत के दौरान सरकार्यवाह जी ने कहा कि अभी 48 वर्ष पहले के घटनाक्रमों को याद करना थोड़ा कठिन होता है, लेकिन आपातकाल और उसके विरुद्ध का संघर्ष ऐसा है, उसकी एक-एक घटना याद रखने वाली बात है। मैं उस समय बेंगलूरु विश्वविद्यालय में एमए का विद्यार्थी था। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के प्रदेश स्तर के कार्यकर्ता के नाते मैं भी आंदोलन में सहभागी रहा। भ्रष्टाचार के विरोध में, बेरोजगारी समाप्त करने के लिए, शिक्षा पद्धति में परिवर्तन लाने के लिए एक संघर्ष का बिगुल बजा था तो मई के अंतिम सप्ताह तक देश के अंदर विद्यार्थी युवा संघर्ष समिति बनी थी और देश भर में जनता संघर्ष समिति और विद्यार्थी जन संघर्ष समिति, ऐसे दो आन्दोलन के मंच बने थे।

जून के महीने में तीन महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। इन तीनों का परिणाम आपातकाल लागू करने के रूप में हुआ। एक - जून आते-आते जेपी के नेतृत्व में आंदोलन देशव्यापी हो गया था, वह अत्यंत प्रखरता के चरम पर पहुँच गया था। दूसरा - गुजरात में हुए चुनाव में इंदिरा कांग्रेस की घोर विफलता हुई, वह हार गई। जून 12 को इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश न्यायमूर्ति जगमोहन लाल सिन्हा ने रायबरेली से इंदिरा गाँधी के लोकसभा चुनाव में जीत को निरस्त कर दिया। तीनों मोर्चों पर इंदिरा जी हार गयीं।

एक है - न्यायायिक, दूसरा है - राजनीतिक क्षेत्र में चुनाव में, तीसरा - जनता के बीच। इस कारण उन्होंने इस एक्स्ट्रीम क्रम का उपयोग किया। 25 जून को रात्रि आपातकाल घोषित कर दिया। उन

दिनों न मोबाइल, न टीवी, कुछ नहीं था। आज के जमाने के लोगों को उस समय की परिस्थिति को समझना आसान नहीं है। 50 साल पहले हिन्दुस्तान में टीवी नहीं था और कम्प्यूटर्स नहीं थे। ई-मेल और मोबाइल आज हैं उस समय नहीं था, तो न्यूज कैसे मालूम हुआ? बीबीसी और आकाशवाणी से घोषणा होते ही पता चला। हम लोगों को सुबह 06:00 बजे के न्यूज से समाचार मिला। संघ की शाखा में गांधी नगर, बंगलूर में मैं और बाकी मित्र शाखा में थे, हमें शाखा जाते-जाते समाचार मिल गया। पार्लियामेंट कमेटी के काम के लिए अटल जी, अडवाणी जी, मधु दंडवते जी और एसएन मिश्रा जी बंगलूर आकर रुके थे। शाखा समाप्त होते ही हम लोग वहाँ गए और अटल जी, अडवाणी जी स्नान करके नीचे जलपान के लिए आ रहे थे। तो हमने कहा इमरजेंसी लागू हो गई। शायद उनको तब तक जानकारी भी नहीं थी या जानकारी होगी भी। उन्होंने पूछा, तो हमने कहा रेडियो में सुना। अडवाणी जी ने कहा, यूएनआई, पीटीआई को फोन लगाओ, फोन पर ही स्टेटमेंट देना है, इसका खंडन करने का। अटल जी ने कहा - क्या कर रहे हैं, वे बोले मैं स्टेटमेंट देता हूँ। अपनी तरफ से वक्तव्य दे रहा हूँ। अटल जी ने कहा - कौन छापने वाला है? अटल जी को पता चल गया था कि इमरजेंसी घोषित होते ही प्रेस सेंसर भी साथ-साथ हो गया है तो इसलिए स्टेटमेंट अगले दिन भी कोई छापने वाला नहीं है। थोड़े समय के अंदर पुलिस आ गई और अटल जी, अडवाणी जी, एसएन मिश्रा जी तीनों को पुलिस गिरफ्तार करके हाईग्रान पुलिस स्टेशन पर लेकर गई। उनके ऊपर मीसा लग गया। हम लोग वापिस गए और अंडरग्राउंड हो गए। हम लोग मीसा में वांटेड हैं, यह जानकारी मिलने पर भूमिगत हो गए थे। मैं दिसंबर तक भूमिगत रहा।

कुछ लोगों को डीआईआर और कुछ लोग मीसा एक्ट, ऐसे दो कानूनों में गिरफ्तार किया गया। डिफेंस ऑफ इंडिया रूल में कोर्ट में जाने का और वहाँ आरग्यू कर और शायद छूट भी जाने का प्रावधान था। मीसा में ऐसा कोई प्रावधान नहीं था। आपको चार्ज बताने की जरूरत भी नहीं। क्या गुनाह है और कोर्ट में जाने का तो कोई अधिकार नहीं था। सब प्रकार के फंडामेंटल राइट्स सस्पेंडेड होने के कारण मीसा में रहने वाले व्यक्ति को अंदर उनका क्या हुआ, घर के लोगों को भी पता चलना चाहिए, ऐसा भी कोई प्रावधान नहीं था।

तब न फोन कर सकते थे, संपर्क भी नहीं कर सकते थे। इसलिए जनता के साथ, कार्यकर्ता के साथ संपर्क रखना, इसके लिए संघ और संघ प्रेरित संगठनों का जाल, हमारी घर-घर में संपर्क की पद्धति बहुत काम में आयी। घरेलू संपर्क की पद्धति दशकों से संघ और संघ प्रेरित संगठनों में है, उसका लाभ, आंदोलन में भी हुआ। मेरे पास बहुत ऐसे उदाहरण हैं। जैसे रवीन्द्र वर्मा जी बंगलूर आए थे तो उनको कहाँ रखना और पुलिस को पता ना चले, ऐसे उनको रेलवे स्टेशन से लेकर आना और सुरक्षित वापिस भेजना। ये काम अत्यंत गूढ़ता से हम लोग कर सके, उसका कारण है संघ की कार्यपद्धति के अंदर घर का संपर्क।

दूसरी बात, क्या चल रहा है लोगों को ये पता नहीं चलता था, क्योंकि समाचार पत्र सेंसर के कारण केवल सरकार की अनुमति से छपने वाले समाचार छोड़कर बाकी कोई भी समाचार नहीं छापता था। कौन, कहाँ अरेस्ट हो गया, किसका क्या हुआ, कोई पता नहीं चलता था। तो इसलिए एक भूमिगत साहित्य छापने को पत्रकारिता का एक जाल, अपना नेटवर्क बनाने की बहुत सफल योजना बनी और उसका क्रियान्वयन हुआ। ये दूसरी एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, अपने देश के इमरजेंसी के भूमिगत संघर्ष की।

हो. वे. शेषाद्री जी ने दक्षिण भारत के चार राज्यों में साहित्य प्रकाशन का नेतृत्व किया। उनका केंद्र बंगलूरु था। जगह-जगह पर प्रेस ढूँढ़कर रात को प्रेस में काम करना और प्रेस में काम करना तो आवाज नहीं आनी चाहिए। बहुत सावधानी रखनी पड़ती थी। दो पन्ने के, चार पन्ने के पत्र-पत्रिकाएँ छपवाना, उसमें न्यूज आइटम, देश के अन्यान्य भागों में क्या चल रहा है, इसके बारे में जानकारी इकट्ठा करना। ये जानकारी इकठ्ठा कैसे करना? भूमिगत काम करने वाले अलग-अलग लोगों से, प्रवास करने वाले लोगों से लिखवाकर लाते थे। कुछ कार्यकर्ता इसके लिए ही प्रवास करते थे। वे एक दृष्टि से पत्रकार जैसे ही अंडरग्राऊंड कार्य करते थे। उदाहरण के लिए कर्नाटक के चार जगह पर या महाराष्ट्र में अलग-अलग नाम से अंडरग्राउंड पत्रिकाएँ छपती थीं। मराठी में, कन्नड़ में, तेलुगु में, हिंदी में उस-उस राज्य में नाम भी अलग-अलग थे। दो प्रकार से छपती थीं, एक प्रिंटिंग प्रेस, दूसरा साइक्लोस्टाइल करना। रातों-रात काम करते थे। रात भर काम करके एक-एक हजार प्रति निकालना। उसको सुबह साढ़े तीन-चार बजे से पाँच बजे के बीच जाना और सड़क पर, घर के गेट के पास डाल देना आदि-आदि।

तीसरा है- जिन लोगों को अरेस्ट किया या पुलिस स्टेशन में, जेल में जिनके ऊपर अमानवीय दमन और हिंसा हुई या जेल में भी रहे। या जेल में रहे हिंसा भले ही नहीं हो, जेल में रहने के कारण कई लोगों की आजीविका पर असर हुआ और उनके घरों में, परिवारों में कमाई करने वाला नहीं है और वे जेल में हैं तो इस कारण जो परिस्थिति बच्चों के लिए, परिवार के लिए थी, उसको सँभालने का और उन लोगों के योगक्षेम की व्यवस्था करने के लिए, ये बहुत बड़ा काम था। और चौथा सबसे महत्त्वपूर्ण संघर्ष करते हुए आपातकाल के विरुद्ध लोगों की आवाज खड़ा करने के लिए, सत्याग्रह करने के लिए जो योजना बनी उसको सफल बनाना। तो यह चार प्रमुख काम उन दिनों में बहुत ही अच्छी योजना से सफलता पूर्वक बना सके।

कई बार लगता है कि उस क्रूरता को भी याद करना क्या? संघ के तृतीय पूजनीय सरसंघचालक बालासाहब देवरस जी ने आपातकाल के पश्चात एक बहुत महत्त्वपूर्ण वक्तव्य दिया था। अपने सार्वजनिक भाषण में कहा था- फॉरगिव एंड फॉरगेट। जो हो गया, हो गया। उसको भूल जाओ, उसको क्षमा करो। लेकिन देश के इतिहास में, जिस एक काले अध्याय के दौरान घोर दमन और अत्याचार हुआ वो इतिहास के पन्नों पर है। कई पुस्तकें इस विषय पर आई हैं। व्यक्तिगत तौर पर भी लोगों ने लिखा है और संगठनों ने भी साहित्य प्रकाशित किया है। इसलिए, नहीं भी बताएँगे तो भी वो है ही।

क्रूरता और अमानवीयता बहुत व्यापक प्रमाण में हुई। अपने देश में पुलिस-प्रशासन की व्यवस्था ऐसी बर्बरता दिखा सकती है, इसका एक अनुभव आपातकाल में हुआ। हाथ दोनों बाँधकर ऊपर से खींचना और उस समय उनकी पीठ पर उनके पैर पर लाठी से मारना।

उस समय तीन प्रकार की क्रूरता हुई। एक जो अरेस्ट हुए उनके साथ लॉकअप में, पुलिस स्टेशन में क्रूरता हुई, उनको जेल भेजने से पहले। उस समय आंध्रप्रदेश (आज तेलंगाना) के एक कार्यकर्ता को कैंडल से शरीर पर लगभग सौ जगह जलाया गया, जबरन उनके मुँह से कुछ कहलवाने के लिए। किसी को नारियल के अंदर कीड़े रखकर नाभि के ऊपर बाँध दिया गया। या पुलिस की भाषा में ऐरोप्लेन कहते हैं, गोली कहते हैं, चपाती कहते हैं, ये सब हिंसा के अलग-अलग प्रकार रहे। सीधा बिठाकर उसके ऊपर

रोलिंग करना, इलेक्ट्रिक शॉक दो या पिन अंदर घुसा दो। इस प्रकार के भयानक अत्याचार किए।

लॉकअप में तीन दिन, चार दिन अमानवीय अत्याचार सहन कर जेल में आए लोगों का जेल में आने के बाद 10 दिन, 15 दिन तक उनकी मालिश करना, ये सब मैंने भी किया है। इन अमानवीय अत्याचारों से कुछ लोग जीवनभर विकलांग हो गए, कुछ लोगों को जीवनभर किसी न किसी प्रकार की व्याधि हो गई। ऐसा हमारी आँखों के सामने हुआ। जिनके साथ ऐसा हुआ, उनके मुँह से किसी भी प्रकार के कोई अपशब्द नहीं आए, इस आंदोलन से दूर नहीं गए। या उनके घर के लोगों ने संगठन को नहीं छोड़ा। कर्नाटक में पुलिस स्टेशन के अंदर राजू नाम के एक व्यक्ति की हत्या हो गई। ऐसे लॉकअप में कई प्रकार की हिंसा देश भर में बहुत जगह पर हुई।

ओमप्रकाश कोहली जी दिल्ली में थे, जो राज्य सभा सदस्य रहे, विद्यार्थी परिषद के अखिल भारतीय अध्यक्ष भी रहे, सब जानते हैं कि ओमप्रकाश कोहली जी चलने में थोड़ा- सा दिव्यांग थे। दिल्ली की तिहाड़ जेल में उनको पुलिस ने लात मारी थी। लॉकअप में उनके साथ अत्यंत अपमान का व्यवहार किया। वे कॉलेज के प्रोफेसर थे। खड़े होना मुश्किल था। ऐसे व्यक्ति के साथ ऐसा किया। ऐसा देश भर में हुआ है।

बंगलूर में गायित्री नाम की एक महिला ने आपातकाल के खिलाफ सत्याग्रह किया। सत्याग्रह करने के बाद उनको अरेस्ट किया। जेल में ले गए। वह गर्भवती थी, वह सत्याग्रह करके आई थीं... लॉकअप में लेकर जाने के बाद उन्हें प्रसव वेदना हुई तो हॉस्पिटल लेकर गए। हॉस्पिटल में उनको पलंग पर सुलाया था और उनकी डिलीवरी के समय उनके दोनों पैरों को जंजीर से बाँधा हुआ था। उन बातों को आज याद करने से अपने मन में अनावश्यक यातना होती है। गर्भवती महिला कहीं भाग जाएगी, ऐसा तो नहीं है और डिलीवरी हो गई तो उनको बाँध कर रखने की क्या जरूरत थी?

उत्तर भारत में व्यापक प्रमाण में नसबंदी पकड़-पकड़ कर की गई। उस समय की सरकार प्रशासन को चलाने वाली चौकड़ी थी। उसमें जो भी लोग थे, उन्होंने नसबंदी के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए, देश के अंदर जनसंख्या नियंत्रण करने के लिए, जिस प्रकार आपातकाल का दुरुपयोग किया, वह घोर अमानवीय और मानवाधिकार के विरुद्ध के इतिहास के पन्नों पर एक काला धब्बा है।

जेल में क्रिमिनल कैदी भी रहते हैं, उन लोगों को राजनीतिक कैदियों के खिलाफ उकसा कर झगड़ा करवा दिया, उनसे मारपीट करवाई। जेल के अंदर ऐसा जानबूझकर करवाने का प्रयत्न किया। झगड़े हो गए, बल्लारी जेल में लगभग 25 लोगों की हाथ-पैर की हड्डी टूट गई। महीनों तक उनको अस्पताल में रखना पड़ा।

सामान्यतः जो टॉर्चर हुआ, अधिकतर टॉर्चर पुलिस लॉकअप में हुआ वो स्वयंसेवकों पर ही हुआ। इसके दो कारण हैं। एक- भूमिगत काम में सक्रिय स्वयंसेवक अधिक थे, इसलिए वही पकड़े गए। दूसरा- उनको लगता था कि इनसे बहुत जल्दी हम बुलवाएँगे। उदाहरण के लिए, अंडरग्राउंड लिटरेचर छपता था, पूछते थे- कहाँ छपता है। तो स्वयंसेवक बोलता नहीं था। टॉर्चर करने के बाद भी स्वयंसेवक के मुँह से शब्द नहीं निकलते थे। इसलिए उनका अधिक टॉर्चर हुआ।

लोकतंत्र, प्रजातंत्र के अंतर्गत ही अपने को संघर्ष करना चाहिए। संविधानात्मक ढंग से ही करना

चाहिए। बंदूक उठा कर क्रान्ति नहीं करनी है। शस्त्र उठाकर, संघर्ष करके आपातकाल का विरोध करना गलत है। ऐसा समिति का स्पष्ट अभिप्राय था। लोगों को हिंसा के मार्ग पर नहीं लाना, यह स्पष्ट निर्देशित था। सत्याग्रह यानी कैसे...तो किसी भी सड़क के चौराहे पर या किसी जगह पर, बस स्टैंड पर, रेलवे स्टेशन पर, जितनी संख्या में हो सके उतनी संख्या में लोग आना। आपातकाल के विरोध में नारे लगाना, अपनी डिमांड के नारे लगाना। पुलिस आएगी पकड़ेगी, लेकर जाएँगे। सत्याग्रह करना, और यथा संभव साहित्य पर्चे लोगों को देना, क्योंकि कोई और रास्ता नहीं था। इसलिए सत्याग्रह के लिए जाते समय जेब में, थैली में पर्चे रखो, सबको दो।

इस आपातकाल को जनता ने स्वीकार नहीं किया है, यह लोकतंत्र के विरुद्ध है। लोकतंत्र का दमन हो गया है। इसलिए इसके विरुद्ध आवाज उठाना, समाज मरा नहीं है, ऐसा दिखाना, सत्याग्रह का यह बहुत बड़ा एक उद्देश्य था। जगह जगह पर लगभग 49 हजार से अधिक सत्याग्रही अरेस्ट हुए।

संघ ने सारे संघर्ष में, जयप्रकाश नारायण के आन्दोलन में और बाद में आपातकाल के विरुद्ध संघर्ष में काम किया। इसलिए संघ का दमन करना, यह मुख्य बात होने के कारण अन्य 25 संगठन के साथ संघ को भी बैन कर दिया था। इसलिए संघ पर प्रतिबंध लगाना और संघ का दमन करना, यह सरकार के वरिष्ठों के, नेताओं के, प्रधानमंत्री का स्पष्ट उद्देश्य था। संघ का दमन करने के लिए स्वयंसेवकों की पुरानी-पुरानी सूची उनको मिली और कहीं किसी डायरी में मिल गयी या कार्यालय उन्होंने बंद करवाए। कार्यालय पर छापेमारी की, कार्यालय पर ताला लगाया, कार्यालय के अंदर जो सूची मिली...तो कार्यकर्ताओं की सूची, गुरु दक्षिणा की सूची तो ऐसी सूची पकड़-पकड़ कर उन घरों में गए। घर पर बैठे व्यक्ति को भी ले गए, उनको संघ की व्यवस्था पद्धति का लाभ मिला। संघ के कार्यकर्ता सरकारी या कॉलेज में, बैंक में नौकरी में हैं तो दबाव डालकर उनको वहाँ सस्पेंड किया, व्यापारियों पर दबाव बनाया।

बहुत सारे स्वयंसेवक नित्य की शाखा में नहीं थे। कई वर्ष पहले वो शाखा के नित्य के काम में थे। किसी न किसी व्यक्तिगत कारण से, घर की कुछ कठिनाई के कारण नित्य शाखा के काम में नहीं होंगे। हमारे लिए गर्व का विषय है कि बहुत बड़ी संख्या में ऐसे स्वयंसेवक आपातकाल में भागे नहीं, दूर नहीं गए, उल्टा सक्रिय हो गए। उन्होंने कहा - देखो, हम स्वयंसेवक हैं। पुलिस को पता नहीं है क्योंकि हमारे नाम अभी सूची में नहीं है, इसलिए हमारे घर का उपयोग करिए। हमारे घर में भूमिगत कार्यकर्ता रुकें, भोजन करें, क्योंकि हमारे घर पुलिस के राडार में नहीं है। ये कहने की हिम्मत स्वयंसेवकों ने की, उन्होंने अपनी तरफ से हर प्रकार का सहयोग किया। दूसरे संगठन, दूसरी पार्टी...के लिए भी स्वयंसेवकों ने किया। सर्वोदय के दो कार्यकर्ताओं के घर में कर्नाटक में जब परिस्थिति अच्छी नहीं थी, संघ के स्वयंसेवकों ने उनकी व्यवस्था की। संघर्ष के लिए जो निधि चाहिए, वो भी स्वयंसेवकों ने समाज से इकट्ठा की।

किसी भी देश में लोकतंत्र जहाँ है, वहाँ लोक की आवाज को दमन करने का, कुचलने का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। और कुछ समय के लिए आप दमन कर सकते हैं। जैसे 20 महीने आपातकाल रहा, लेकिन दमन नहीं हो सकता। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की आवाज हमेशा बुलंद रह सकती है, उसको बुलंद रहना चाहिए। आपातकाल के विरुद्ध के संघर्ष क्यों सफल हुआ?

क्योंकि लोगों को जागृत करने और संगठनात्मक नेतृत्व ने उस समय लोगों को योग्य मार्गदर्शन दिया। उस आंदोलन में विशेष कर विद्यार्थियों, युवाओं के आंदोलन से देश भर में एक परिवर्तन के लिए आंदोलन चला। इसलिए देश के नौजवान विद्यार्थी और नौजवान लोग देश समाज के बारे में जागृत रहकर अपनी आवाज उठाना, सही दिशा क्या है इसके बारे में निर्णय करते हुए एक प्रबल जनशक्ति की आवाज बनना, यह हमेशा उनकी ट्रेनिंग रहती है तो समाज के लिए हमेशा एक रक्षाकवच बनता है, आशादीप बनता है।

जेल में सुबह से शाम तक हम कैम्प जैसे चलाते थे। डीआईआर में जिनके केस चलते, वे 15 दिन या एक महीने में कई बार जेल से छूट जाते थे, बेल मिल जाती थी। मीसा में, न कोई चार्जशीट, न ही कोई कोर्ट, ऐसे चलता था। इसलिए मीसा में रहने वाले लोगों की जीवन शैली अलग थी। मीसा में रहने वाले लोग आए तो बाहर जाएँगे, कब जाएँगे कोई पता नहीं। जेल में अंग्रेजों के जमाने के कानून थे। उन दिनों वो कानून ही चलता था। स्वयंसेवकों ने जेल के अंदर उन कानूनों के खिलाफ भी संघर्ष किया, कानून के खिलाफ ज्ञापन देना, उसके खिलाफ सत्याग्रह करना, अंदर अनशन करना, ये सब किया तो इस कारण प्रशासन को कुछ कानून बदलना पड़े।

इसी बीच, सॉलिसिटर जनरल नीरेन डे ने सुप्रीम कोर्ट में आर्गुमेंट किया और उनके आर्गुमेंट को सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार भी कर लिया। उनका आर्गुमेंट था– मीसा के तहत लोगों को देश की सुरक्षा के लिए रखा है, उनके ऊपर कोई चार्जशीट नहीं और कब तक रहना है, इसकी कोई गारंटी नहीं है। They may end their life in jail. दूसरा आर्गुमेंट किया – यदि देश की सुरक्षा के लिए उनको जेल के अंदर ही शूट भी किया तो भी सरकार पर कोई अपराध नहीं है।

लोकसभा के सदस्य कामत ने कमेंट किया – इट इज़ नॉट अमेंडिंग द कांस्टीट्यूशन, इट इज़ नॉट मेंडिंग द कांस्टीट्यूशन, इट इज़ एंडिंग द कांस्टीट्यूशन।

सरकार ने संविधान के साथ क्या किया, इट वाज़ ऑलमोस्ट एंडिंग द कांस्टीट्यूशन। उन्होंने अमेंडमेंट किया, संविधान की प्रस्तावना में सेक्युलरिज्म और सोशलिज्म, दो शब्दों को जोड़ा। जो पहले नहीं थे। वो आज तक हैं। उस समय संविधान के साथ छेड़-छाड़ करने के भरपूर प्रयत्न किए गए। लोकसभा के पाँच वर्ष के कार्यकाल को छः वर्ष किया, एक वर्ष ज्यादा कर दिया था। उन सारी चीजों को जनता सरकार आने के बाद फिर से संशोधन करके ठीक किया गया।

मेरा हमेशा कहना है – लोकतंत्र सुरक्षित है, अपने देश की संसदीय व्यवस्था, संविधान वगैरह के कारण। लेकिन उससे भी बढ़ कर जागृत समाज और उनको जागृत रखने के कार्य करने वाले समाज का गैर राजनीतिक नेतृत्व उनके जीवन की स्वच्छ, नि:स्वार्थ और देश भक्ति की उनकी प्रखरता, यह यदि है तो समाज के लोग भी ऐसे लोगों के समर्थन में खड़े होते हैं। इसलिए हमेशा देश के लिए इस प्रकार का नेतृत्व समाज में हर क्षेत्र में रहना चाहिए, वह देश के लिए भरोसा है।

सम्पर्क : *दिल्ली (भारत)*

कप्तान सिंह सोलंकी

संविधान से खिलवाड़ और लोकतंत्र को चुनौती

25 आपातकाल जून 1975 की वह काली रात्रि, जिसके अँधेरे में देश पर आपातकाल थोपा गया, आज भी एक अजीब तरह की सिहरन पैदा करती है। कष्ट इस बात का नहीं था कि मुझे गिरफ़्तार कर जेल जाना पड़ सकता है, चिंता व्यक्ति की नहीं समष्टि की थी। भारत को स्वतंत्रता एक लम्बे कालखण्ड तक लगातार संघर्ष करने के बाद मिली थी और उस स्वतंत्रता को एक व्यक्ति के लिए समाप्त किया जा रहा था। आसपास के सभी देशों में आज़ादी, तानाशाही के बूटों से कुचली जा चुकी थी फिर चाहे वह पाकिस्तान हो या बंगलादेश, मलेशिया हो या अफगानिस्तान या फिर चाहे रूस, चीन ही क्यों न हो स्वतंत्रता की रेलगाड़ी पटरी से उतर चुकी है अब अगर भारत में लोकतंत्र समाप्त किया गया तो समूची एशिया में उसका नाम लेने वाला नहीं बचेगा, यही सोचकर सारी रात करवटें बदल कर काटी। सुबह 5 बजे से ही भारतीय जनसंघ के साथ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारियों की खबरें आना शुरू हो गई थीं। सभी शुभचिंतक सलाह दे रहे थे कि मैं कुछ दिनों के लिए भूमिगत हो जाऊँ परंतु मेरा मन गवारा नहीं कर रहा था कि मैं मुँह छुपाकर भागता फिरूँ। तत्कालीन संघ के अधिकारियों से चर्चा हुई और तय किया कि मुझे स्वयं गिरफ्तारी दे देना चाहिये।

मैं उस समय पार्वताबाई गोखले स्नातकोत्तर महाविद्यालय में अंग्रेजी का प्राध्यापक था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का दायित्ववान कार्यकर्ता होते हुए तब तक जिला प्रशासन के हत्थे नहीं चढ़ा था और अधिकांश अधिकारी मुझे मीसा में बंद करने के पक्ष में नहीं थे। मेरे से अधिक सक्रिय मेरे ही नाम से मिलते-जुलते बहुचर्चित प्रो. कोमल सिंह सोलंकी थे। हमारे प्रियजनों को लगता था कि यदि प्राध्यापकों में गिरफ्तारी होनी है तो बहुत से ऐसे लोग हैं जो जेल में बंद रहने योग्य हैं। मैं तो सीधा-सादा अध्यावसायी अध्यापक हूँ मुझसे भला समाज और शासन को क्या खतरा? फिर कुछ लोगों ने बताया कि वे मेरा नाम गिरफ्तार होने योग्य लोगों की सूची में देखकर आये हैं। फिर कुछ कहते और शायद वे मुझे धैर्य दिलाने के लिए ही कहते कि उन्होंने प्रोफेसर श्री सोलंकी जैसे शब्द तो सूची में देखे हैं। कह नहीं सकता कि कप्तान सिंह है या कोमल सिंह। इस सब चर्चा को मैं हवा में उड़ा देता और कहता 'पुलिस कोमल को क्यों पकड़ेगी, गिरफ्तार करेगी तो कप्तान को करेगी।'

और सच में ही एक दिन मुझे गिरफ्तार करने पुलिस दरवाजे पर आ गई। मैंने संक्षिप्त-सी तैयारी की और हँसते हुए उनके साथ चल दिया। बच्चे तब बहुत छोटे थे श्रीमती जी की चिंता स्वाभाविक थी परंतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता को उन सबकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं थी। वैसे भी मैं घर में रहता कितना था? कॉलेज या कार्यालय (राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का

ग्वालियर का कार्यालय) के बाद जो समय मिलता वह प्रवास में चला जाता। इस कारण बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी उन्हीं को सँभालना थी। उनके लिए तो मैं उसी तरह था जिस तरह की कहावत अक्सर कही जाती है ''जैसे कंता घर रहें वैसे ही रहें विदेश'' फिर भी गिरफ्तारी और जेल की ख़बर का असर मुझसे ज़्यादा मेरे परिवारजनों पर ही अधिक पड़ा था।

मुझे केन्द्रीय कारागृह ग्वालियर पहुँचाया गया। वहाँ 21 माह तक रहा। जेल के अन्दर की गतिविधियों के सम्बन्ध में अभी तक बहुत कुछ जानकारी सार्वजनिक हो चुकी है। हम सबने जेल में तमाम प्रकार की सामूहिक गतिविधियाँ चला रखी थीं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण 'भावी भारत का स्वरूप' चिंतन रहा जिसमें अधिक तन्मयता से हम इसलिये भी लगे रहे क्योंकि उस समय हमारे पास चिंतन के लिए पर्याप्त समय था। इस संपूर्ण चर्चा का समन्वयक और सूत्रधार मैं ही था। हमने आरंभ में विषय निर्धारित किए, उसके लिए समितियों का गठन किया गया। इन समितियों ने गहन मनन चिंतन करके अपने प्रतिवेदन तैयार किये। संयोजकों ने उन प्रतिवेदनों को प्रस्तुत किया। उन पर संशोधन आये। जमकर चर्चा हुई और अंत में भावी भारत के स्वरूप पर एक दस्तावेज तैयार किया गया। इस चर्चा के अलावा जेल में योग, व्यायाम, खेल, स्वाध्याय, पठन-पाठन, चर्चा परिचर्चा, हास्य परिहास निरंतर चलता रहता था।

मैंने जेल जीवन को गहन चिंतन के लिए चुना, मैं सोचता रहता था कि सभी प्रकार से संसाधनों से परिपूर्ण अपना यह भारत अन्य देशों की तुलना में पिछड़ा क्यों है? वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं कि एक अरब जनसंख्या वाले भारत पर एक व्यक्ति मनमानी करके आपातकाल लाद सकता है? चिंतन की धारा चलती तो कभी महाभारत काल के पतन की ओर चली जाती तो कभी परकीयों के हमलों तक सिमट जाती। एक हजार साल पूर्व की स्थितियों पर ही विचार करें तो हम पाते कि इतने बड़े समर्थ भारत पर मुस्लिम हमलावर आक्रमण करने का दुस्साहस कैसे जुटा सकें? वे तो पहले लुटेरों के रूप में आये थे। जब उन्होंने भारत की आंतरिक स्थिति देखी तो फिर उनकी रुचि शासन सूत्र सँभालने में बढ़ी। धर्मांतरण का उन्होंने सहारा लिया। मुस्लिम हमलावर शासक क्रूरता भी इसलिये करते थे ताकि भारतीय समाज टूट जाये परंतु वे अपने मिशन में सफल नहीं हो सके। उस समय भारत की बाह्य शक्ति कमज़ोर भले ही हों आंतरिक आध्यात्मिक शक्ति और प्रबल हो गई थी। चारों ओर निराशा की स्थिति में भी भारत एक था। देसी राजा आपस में लड़ रहे हों वे मुस्लिम शासकों की भले ही अधीनता स्वीकार कर रहे हों परंतु भारतीय समाज उस समय भी एकजुट बना रहा। भारतीय समाज के तीर्थ, त्यौहार, परंपराएँ, संयुक्त परिवार प्रणाली यथावत चलती रहीं। यही कारण है कि उस समय को 'भक्तिकाल' कहा गया।

मुस्लिम हमलावरों और शासकों के अत्याचार ज्यों-ज्यों बढ़ रहे थे भारत की आध्यात्मिक शक्ति भी बढ़ती जा रही थी। आम निरक्षर भारतीय भी मान रहा था कि यह स्थिति अधिक समय तक नहीं चलने वाली, आम भारतीय भले ही भगवान के सहारे हो गया हो पर उसका धैर्य नहीं टूटा था। उल्टे विदेशों से हमलावर अंदर से टूट रहे थे। मुस्लिम शासक आपस में लड़ने लगे। इसी बीच सन् 1600 के आसपास अंग्रेज व्यापारी व्यापार करने के लिए भारत आये। प्रारंभ में तो भारतीयों ने विदेशी

सामान नहीं खरीदा, तो चालाक व्यापारियों ने दूसरे हथकण्डे अपनाना शुरू किया। यूरोपीय व्यापारियों को तत्कालीन मुस्लिम शासकों ने महत्त्व देना शुरू कर दिया तो फिर ईस्ट इंडिया कम्पनी सक्रिय हो गई। हमारा कच्चा माल यूरोप जाने लगा और उसके बदले में उसी कच्चे माल से बनी सामग्री भारत के बाजारों में आने लगी।

भारत में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का जाल फैल गया जब ब्रिटिश हुकूमत ने राजनीतिक दृष्टि से अपनी सक्रियता बढ़ा दी। उसने प्रत्यक्ष सत्ता की बागडोर सँभाल ली। वायसराय से लगाकर कलेक्टर और सेना के सभी अफसर इंग्लैंड से आने लगे। अंग्रेजों ने अपनी राजनीतिक सत्ता को स्थायी बनाने के लिए भारत की फूट का लाभ तो लिया। उन्होंने इस बात पर भी विचार किया कि सत्ता पर लम्बे समय तक मुस्लिमों का कब्जा होने पर भी मुसलमान शासक भारत पर पूरा नियंत्रण करने में सफल क्यों नहीं हो सके। इसके लिए उन्होंने गहन चिंतन किया। तब उनकी समझ में आया कि जब तक भारतीय समाज को अंदर से नहीं तोड़ा जायेगा हम सफल नहीं होंगे।

जेल में रहते हुए हम चिंतन कर रहे थे। मैंने विचार किया अंग्रेजों ने भारतीयों का मानस बदलने के लिए हमारी शिक्षा पद्धति में बदलाव किया। जिसके कारण अंग्रेज शासकों को सत्ता संचालन के लिए नीचे के कर्मचारी तो मिले ही हम अंदर से भी टूटने लगे। हमारा रहन सहन ही अंग्रेजों जैसा ही हो गया बल्कि हमारी सोच भी वैसी ही होती चली गयी। पहले आम भारतीय भले ही निरक्षर हो परंतु अंदर से पर्याप्त शिक्षित ही नहीं तो परिपूर्ण ज्ञानी होता था। निरक्षर कबीर अपने आध्यात्मिक ज्ञान के बल पर संसार को ललकार सकते थे। तुलसीदास किसी स्कूल कॉलेज में पढ़ने नहीं गये थे परंतु उनकी रामायण जन-जन में लोकप्रिय हो गई। सूरदास जन्मांध थे पर उनकी कविता आँखवालों को भी भक्ति ज्ञान से झकझोरने के लिए पर्याप्त थी और अब अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीयों ने बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ तो हासिल कर ली किन्तु अंदर से वे खोखले होते चले गये।

इसके बाद सन् 1885 में एक अंग्रेज लार्ड एच. ए. ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसकी स्थापना का उद्देश्य भारत में अंग्रेजी शासन को शक्तिशाली बनाना था। सन् 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य आंदोलन से अंग्रेज शासक बुरी तरह डर गये थे। इसलिये उन्होंने एक ऐसी पार्टी का निर्माण किया जिसके कार्यकर्ता नेता अंग्रेजों की मदद करते रहें। प्रारंभ में अनेक दशकों तक ऐसा हुआ कांग्रेसी नेता आपस में बुरी तरह लड़ते हुए स्वयं को अंग्रेज भक्त साबित करने में लगे रहते थे। परिणामस्वरूप भारत का बहुसंख्यक समाज जो मुस्लिमों के अत्याचारों से नहीं टूटा था, अपनों की अंग्रेज परस्ती से टूटने लगा। इस बीच स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानंद, लोकमान्य तिलक, मदन मोहन मालवीय, राजा राममोहन राय आदि महापुरुष अपने अपने ढंग से समाज की पतनावस्था से भारत को उबारने का प्रयास कर रहे थे परंतु सहस्त्रों वर्षों की दुरावस्था से ग्रस्त भारतीय समाज में जागृति इतनी जल्दी नहीं आ सकती थी कि इन तमाम परिस्थितियों का मुकाबला सक्षम ढंग से किया जा सके। इन सामाजिक राजनीतिक सरोकारों के बीच एक युवक ऐसा भी आया जो इन सब बातों का समग्रता से अध्ययन कर रहा था। यह युवक और कोई नहीं डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ही थे। वे कांग्रेस के उग्रवादी दल के साथ काम करते हुए भी नरमवादी नेताओं के सम्पर्क में थे। उन्होंने आज़ादी

के लिए संघर्षरत नेताओं को नज़दीक से देखा था। उन्हें लगा कि यदि भारत को आज़ादी मिल भी गई और नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में आया भी तो भारत का कोई अधिक भला होने वाला नहीं है। इस सबके लिए ज़रूरत है भारत में जागरण का ऐसा वातावरण खड़ा करने, जिसमें से सक्षम नेतृत्व पैदा हो सके। इसके लिए अनुशासन, समर्पण और सेवा भाव आवश्यक है। डॉ. हेडगेवार ने समान विचारों के लोगों को संगठित करना शुरू कर दिया और विजयदशमी सन् 1925 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसा संगठन इस देश को दिया।

दूसरी ओर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता का आंदोलन जारी रहा। इस बीच दुनिया भर में साम्राज्यवाद के खिलाफ़ जबर्दस्त वातावरण बना और ब्रिटिश साम्राज्य का पलायन शुरू हुआ। अंत में भारत को भी स्वतंत्रता मिली किंतु अंग्रेजों की कूटनीति फिर काम कर गई। वे भारत को एक संगठित राष्ट्र के रूप में नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने भारत को द्विराष्ट्र और बहुराष्ट्र कहना शुरू कर दिया और ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दीं कि भारत विभाजन हो गया। कांग्रेस के कथित संघर्षशील नेता भी अंग्रेजों की इस चाल में आ गये। इसका कारण यह भी हो सकता है कि वे लम्बे समय तक आंदोलन चलाने से थक गये थे या फिर वे कुर्सी प्राप्त करने के लिए आतुर थे। मोहम्मद जिन्ना जो जाति से भले ही मुसलमान रहे हों विचारों से अंग्रेज थे, के नेतृत्व में भारत का विभाजन हुआ। इसीलिए 15 अगस्त 1947 को मिली आज़ादी को डॉ. संपूर्णानंद जैसे मनस्वी ने 'अधूरी क्रांति' की संज्ञा दी थी। गाँधी जी जैसे लोग भी तब यह सोचते थे कि आज़ादी मिल जाने के बाद देश में ऐसा वातावरण खड़ा कर दिया जायेगा कि रामराज्य फिर लाया जा सकेगा। इसलिये उन्होंने साफ कहा कि अंग्रेजों के खि़लाफ़ संघर्ष करने वाली कांग्रेस सभी वर्गों और विचारों की जमात है उसे या तो समाप्त कर देना चाहिये या उसका स्वरूप सेवादल जैसा सामाजिक परिवर्तन के अनुरूप बनाना चाहिये।

सत्ता प्राप्त होने के बाद सत्ता मदांध कांग्रेसियों को महात्मा गाँधी का यह सुझाव स्वीकार नहीं था। सत्ता से कांग्रेस को तो दूर नहीं किया जा सका, गया उल्टे महात्मा गाँधी को ही किनारे कर दिया गया। महात्मा गाँधी की नृशंस हत्या के बाद सत्तासीन कांग्रेसी नेताओं ने गाँधी हत्या का सर्वथा आरोप राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर मढ़कर उसे प्रतिबंधित कर दिया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उनके सेवाभावी आदर्श कार्यकर्ता कुछ कांग्रेसियों को खटक रहे थे। प्रतिबंध के खिलाफ़ भारतीय संसद में कोई जब आवाज़ नहीं उठी तो फिर भारतीय जनसंघ की स्थापना की गई। केन्द्र सरकार में मंत्री रहे डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को नई पार्टी का अध्यक्ष बनाया गया। कांग्रेस महात्मा गाँधी की मंशा के विपरीत स्वतंत्रता का संपूर्ण श्रेय स्वयं लेकर मनमानी पर उतर आई तो राम मनोहर लोहिया, आचार्य कृपलानी आदि के नेतृत्व में कांग्रेस से ही अन्य नये दलों का गठन किया गया।

इस सबके बावजूद देश भर में अल्पसंख्यक, वनवासी अनुसूचित समाज के विभिन्न वर्गों को लड़ाकर कांग्रेस का एक छत्र राजनीतिक साम्राज्य कायम हो गया। महात्मा गाँधी का सपना तो दूर कांग्रेस के शासनकाल में आम आदमी की आवाज़ भी दबाई जाती रही। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में गुजरात के युवकों ने जब सत्याग्रह किया, मध्यप्रदेश में संविद के प्रयोगों और इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले से कांग्रेस के खिलाफ़ वातावरण जो बना उसे कांग्रेस की तत्कालीन

नेता एवं प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने आपातकाल लगाकर हजारों नेताओं को जेल में बंद कर तथा अख़बारों पर सेंसरशिप लगा कर अपने अनुकूल करना चाहा जिसके विरोध में सभी दल एकजुट हुए और देश में एक राजनीतिक विकल्प जनता पार्टी के रूप में सामने आया।

जेल में बंद रहते हुए हम लोग राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की निरन्तर शाखाएँ लगा रहे थे और नित्य विचार करते रहते थे कि देश को इस दुरावस्था से कैसे उबारा जाये। हमें जेल में भी साफ लगता था कि यदि सत्ता में जनता पार्टी भी आ गई तो भी कोई ख़ास परिवर्तन होने वाला नहीं है और आज जब हम मध्यप्रदेश में सत्ता में है और केन्द्र में पाँच साल सत्ता में रह आने के बाद भी नहीं लगता कि इससे संपूर्ण परिवर्तन हो जायेगा। परतंत्र भारत में आज़ादी के लिए संघर्ष करते हुए जो आशंकाएँ डॉ. हेडगेवार के मन में थी वैसे ही आशंकाएँ आज हमारे मन में बदस्तूर मौजूद हैं। विभिन्न जाति वर्गों में बँटा यह समाज कई दृष्टियों से आज भी स्वतंत्र नहीं है। आज देश में आपातकाल नहीं है परन्तु राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि बिना किसी घोषणा के आपातकाल लगा हुआ है। इन स्थितियों से हमें देश को उबारना है तो देश में फिर एक बार प्रभावी जनजागरण की आवश्यकता है जो स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना कर सकें।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

श्रीधर पराड़कर

आपातकाल का स्मरण और सबक

महाभारत में वसुदेव-देवकी विवाह का प्रसंग पढ़ते समय लगता था कि क्या कोई व्यक्ति इतना क्रूर हो सकता है कि अपने को बचाने के लिये बहन-बहनोई को कारवास में डाल दे। भांजे-भांजी को पटक-पटक कर मार डाले। अत्याचार, अनाचार की हदें पार कर सके। मन नहीं मानता था। लगता था कि कथा ही है। रचनाकार ने कल्पना की अतिश्योक्ति की है। यदि हुआ भी होगा तो अब संभव नहीं है। तब राजतंत्र था, राजा निरंकुश हो सकता है। अब लोकतंत्र का जमाना है, सत्ता जनता के हाथ है, अत: ऐसी पुनरावृत्ति अब संभव नहीं। लेकिन... कहते हैं न कि इतिहास अपने को दोहराता है। आपातकाल के रूप में पुनरावृत्ति हुई।

सूर्य प्रखर तेजस्वी है। फिर भी राहू-केतु की काली छाया उसे ग्रस ही लेती है। भारतीय लोकतंत्र पर 26 जून 1975 को ग्रहण लगा था, जिसके छटने में 21 माह का समय लगा था। उन 21 माह में देश देशवासियों ने क्या-क्या देखा और क्या-क्या भुगता इसका लेखा जोखा असंभव है। घटना घट जाती है पर अपने पीछे संकेत छोड़ जाती है जो वास्तव में भविष्य बोध के लिये होते हैं। उनसे सबक सीखना होता है।

आपातकाल की बरसी पर रस्म अदायगी मात्र नहीं होनी चाहिए। हम इस ओर दृष्टिपात करें कि 41 वर्ष बाद हमारी स्थिति क्या है। नहीं घटनी चाहिये थी, पर आपातकाल की घटना घट गई। प्रश्न यह है कि आपातकाल की घटना का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर उससे सब सीखने का प्रयास हुआ है क्या? ताकि फिर आपातकाल जैसी स्थिति उत्पन्न न हो। दुर्भाग्य से उस जैसा कोई प्रसंग राष्ट्र जीवन में पुन: उपस्थित हो ही गया तो क्या हम उसका सामना कर सकेंगे। इसके लिये हमें दृष्टिपात करना होगा उन लोगों, संगठनों, संस्थाओं की भूमिका पर जिनकी आपातकाल के समय जैसी भूमिका होनी चाहिये थी वह उस पक्ष ने निभाई क्या? ताकि अपनी कमजोरी को सदैव के लिये दूर कर लोकतंत्र में प्राप्त उत्तरदायित्व को सही ढंग से प्रतिफलित कर सके।

आपातकाल की विषम घड़ी में भारतीय जनमानस के काले और उज्ज्वल दोनों प्रकार के चेहरे उभर कर सामने आये थे। कुछ लोग थे जिन्होंने चुनौती को स्वीकार किया और परिस्थिति का डटकर मुकाबला किया। उसके लिये हरसंभव संकट का सामना किया। प्राप्त कष्टों को सहन किया। हानि की चिन्ता किए बिना डटे रहे। आपातकाल हटने में ऐसे लोगों की भूमिका ही महत्त्वपूर्ण रही।

दूसरी ओर भीरुता, भयग्रस्त मन:स्थिति, चारण प्रवृत्ति, स्वार्थ, स्वजन विद्रोह, सत्तापिपासा,

अत्याचार और दमन में आनन्द की अनुभूति लेने वाली प्रवृत्तियाँ भी सर्वत्र दिखायी दी थीं। एक तीसरी अनुभूति जो सदैव रहती है निश्चित तटस्थता की। जो कहते घूमते हैं - कोऊ नृप होय हमें का हानि...। ऐसे शरणागत व तटस्थ लोगों के सहारे ही निरंकुश सत्ता अपना क्रूर खेल खेली थी। काले और उजले चेहरे समाज में सदैव रहते ही हैं। पर देखने वाली बात यह है कि देश के सम्मुख जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित होने पर कौनसी प्रवृत्ति के लोग हावी रहते हैं। महत्व इस बात का होता है और देश का भविष्य भी इस पर ही निर्भर रहता है।

राजनीतिक दल : आपातकाल के बहाने देश की प्रधानमंत्री लोकतंत्र को खूँटी पर टाँग कर अपनी सत्ता को चुनौतीविहीन करना चाहती थीं। उनके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थे विभिन्न राजनीतिक दल। उन्होंने सर्वप्रथम उन्हीं राजनीतिक दलों और उनके नेताओं को सदासर्वदा के लिए समाप्त करने का प्रयास किया। उनका मानना था कि यदि राजनीतिक दल ही नहीं रहेंगे तो असहमति व विरोध निर्मूल हो जाएँगे। इसी विचार से विरोधी पक्ष के राजनेताओं को जेलों में ठूँस दिया था। उन्हें लगा था कि नेताओं के न रहने पर दल का संचालन संभव नहीं होगा। इस परिस्थिति में अपेक्षा थी कि राजनीतिक दल अपने अस्तित्व को बचाने के लिये प्राणप्रण से संकट का सामना करेंगे। पूरी ताकत के साथ आपातकाल का विरोध करेंगे। पर देश का दुर्भाग्य ही रहा कि राजनीतिक दल समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरे। आपातकाल लगने पर तमिलनाडु के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता और कुछ बड़े राजनेता कांग्रेस अध्यक्ष रहे के. कामराज से मिले और आपातकाल के संदर्भ में मागदर्शन के लिये कहा। तब कामराज ने कहा- 'स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जिस ढंग से हमने अपने राजनीतिक दलों का विकास किया है, वह स्वाधीनता के पूर्व की प्रणाली से पूर्णत: भिन्न है। पद और सम्मान, विधायकों और सांसदों को मिलने वाली सुख-सुविधाएँ, मंत्रिपदों पर लगी हुई दृष्टि, उनके लिये उठापटक और स्पर्धा, यही आज के राजनीतिक दलों की रचना का प्रमुख रूप बन गया है। ऐसे वायुमंडल में पले हुए राजनीतिक दल, उनके नेता और कार्यकर्ता, वर्तमान संघर्ष में खरे उतर सकेंगे, इसमें मेरा कतई विश्वास नहीं है।'

बाद में भारत के प्रधानमंत्री बने अटलबिहारी वाजपेयी ने भी राजनीतिक दलों, उनके नेताओं, सांसदों और विधायकों के संबंध में इसी प्रकार की बात कही थी। बंदी अवस्था में वे दिल्ली के आयुर्विज्ञान संस्थान में उपचार हेतु भर्ती थे। वहाँ से अपने मित्र को 25 सितम्बर 1976 को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था कि, '...यह विचित्र बात है कि भय से भीत या लोभ से ग्रस्त होने वालों में अधिकांश विधायक या संसद सदस्य हैं। साधारण कार्यकर्ता अपने स्थान पर अडिग हैं। ऐसा लगता है कि वर्तमान संसदीय राजनीति एक सुविधावादी वर्ग तैयार करती है जो अपने स्वार्थ पर छोटी सी चोट भी सहन नहीं कर सकता और परीक्षा की पहली आँच लगते ही भाग खड़ा होता है। ऐसे लोग इतिहास नहीं बना सकते। उल्टे इतिहास विकृत करने के प्रयत्नों में सहभागी होकर कलंक बन जाते हैं।'

के. कामराज और अटलबिहारी वाजपेयी के उद्गारों में हमारे राजनीतिक दलों के चरित्र का सही चित्रण होता है। अब गंगा का काफी कचरा (पानी) बह चुका है। आपातकाल के कष्ट भुगतने

वाले युवा कार्यकर्ता अपने-अपने दल के कर्णधार बने हुए हैं। विडंबना यह है कि आपातकाल को सर्वाधिक विस्मृत किया है तो इन्हीं युवा नेताओं ने। आपातकाल के पश्चात् राजनीतिक दलों ने अपनी चाल तो सही दिशा में तो बदली ही नहीं, इसके विपरीत ऊपर बताये अवगुण अधिकाधिक मात्रा में उनमें व उनके दल में घर करते जा रहे हैं। असहमति की बात तो दूर 'विरोध के लिये विरोध' करना राजनीति का ध्रुव ध्येय बन चुका है। 'राजनीति' में से 'नीति' का लोप लगभग हो चुका है। केवल 'राज' ही शेष बचा है। सारे प्रयत्न उसी के लिये चलते दिखायी देते हैं। सिद्धान्तों का तो किसी को स्मरण ही नहीं है। सिद्धान्त शब्द का उच्चारण भी तभी किया जाता है, जब उन्हें अपना दल अलग बनाना होता है या मुख्य दल से अलग होना होता है। राजनीति में पहले कम से कम राजनेता तो होते थे। अब तो अपराधी, व्यवसायी और उद्योगपतियों का बोलबाला है। राज्यसभा, लोकसभा से अधिक प्रतिष्ठित सदन माना जाता है। पर अब राजनीतिक गोटी बैठाने के लिये उसका उपयोग किया जा रहा है। राज्यसभा का निर्वाचन नीलाम बोली ही हो गया है। ऐसे विधायक और संसद सदस्य आपातकाल जैसी स्थिति में क्या कर सकेंगे?

स्वतंत्रता सेनानी : देश में स्वतंत्रता सेनानियों की बहुत बड़ी संख्या है। उन्होंने अपने जीवनकाल में देश के लिये भरपूर त्याग किया होगा। पेंशन व अन्य सुविधाओं को देकर देश ने उनकी देशभक्ति की भावना को सम्मानित भी किया। इन लोगों से तो अपेक्षा थी कि उनकी देशप्रेम की भावना देश पर आई आँच को सहन नहीं करेगी। शारीरिक अवस्था के अनुरूप तो विरोध कर ही सकते थे। परन्तु आपातकाल के समय स्वतंत्रता सेनानियों का मुखर विरोध देखने में नहीं आया। क्या ये लोग भी राजनेताओं की तरह सुविधाभोगी बन कर रह गए हैं। क्या एक बार देश के लिए देशभक्ति का प्रदर्शन करने मात्र से इति कर्तव्यता हो जाती है। उनके प्रति लोगों में सम्मान की भावना होती है, उनके आह्वान को जनमानस टाल नहीं सकता।

साहित्यकार व मीडिया : साहित्यकार तथा समाचार पत्र जगत (जिसमें अब इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी शामिल है) लोकतंत्र के आधारभूत स्तंभ हैं। निष्पक्षता से सही बात कहना दोनों से अपेक्षित है। देश की स्वतंत्रता का आह्वान साहित्यकारों व भारतीय समाचार पत्रों ने जिस साहस से किया था वह स्तुत्य है। ब्रिटिश सरकार भी उन्हें झुका नहीं सकी थी। लेकिन आपातकाल में कतिपय साहित्यकारों तथा समाचार पत्रों को छोड़ कर शेष की भूमिका घुटने टेकनेवाली ही सिद्ध हुई थी। अब जब मीडिया बहुतांश में व्यावसायिक हो चुका है। समय आने पर कसौटी पर किस प्रकार खरा उतरेगा यक्ष प्रश्न ही है।

हालाँकि भ्रष्टाचार के भंडाफोड़ में मीडिया ने उल्लेखनीय कार्य किया। लेकिन अब उसका भंडाफोड़ ही संदेह के घेरे में आता जा रहा है। मीडिया भंडाफोड कर रहा है, पर भंडाफोड़ करते समय ध्यान रखा जाता है कि कब, किसका और कितना भंडाफोड़ करना है। मेरी दृष्टि में मीडिया का दृष्टिकोण निष्पक्ष व सकारात्मक होना चाहिये। दूरदर्शन की अनेक वाहिनियाँ हो जाने से यह स्पष्ट हो गया है कि मीडिया का पक्ष पहले से तय रहता है और वह घटना को उसी तरह प्रस्तुत करता है। एक अन्य समस्या यह भी है कि कि मीडिया नकारात्मक भूमिका अपनाये हुए है। प्रत्येक घटना

को नकारात्मक शैली में प्रस्तुत कर रहा है। यह भी स्पष्ट दिखायी दे रहा है कि जनहित, देशहित के स्थान पर मीडिया स्वामी का हित अधिक प्रभावी है।

पत्रकारों के समान ही साहित्यकारों और चिंतकों के लिये भी विचार व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राणवायु है। इनके बिना विचार व चिंतन जीवित होने पर भी मृतक समान होता है। आपातकाल के बाद तो आपातकालीन साहित्य की बाढ़ आ गयी थी। लिखने वाले अधिकांश वे लोग थे जो आपातकाल का समर्थन करते रहे थे अथवा मौन साधे बैठे थे। जिन लोगों ने आपातकाल के कष्टों को प्रत्यक्ष भुगता था, वे काम में लग गए और उन्होंने आपातकाल पर कभी कुछ लिखा नहीं। उनका लेखन अधिक वास्तविक व बोधप्रद होता। आज साहित्य के प्रति प्रतिबद्धता के स्थान पर विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता व खेमे अधिक महत्व के हो गए हैं। ऐसी स्थिति देश व अच्छे साहित्य के लिये खतरे की घंटी हैं।

न्यायपालिका : वकीलों से समाज को अपेक्षा रहती है कि वह अन्याय से उसे बचायेगा। वकील उसके लिये गैरकानूनी कृत्यों के विरुद्ध सरकार तक से लड़ सकता है। लड़ता भी रहा है। जहाँ सरकार से प्रत्यक्ष टकराव नहीं था, वकीलों ने साहस किया भी। पर दुखद पहलू यह भी रहा कि अधिकांश अधिवक्ता सत्याग्रहियों तथा अन्य अन्यायग्रस्त लोगों के पक्ष समर्थन हेतु न्यायालयों में खड़े होकर उनकी पैरवी करने के लिये तैयार नहीं हुए। यह कहने में संकोच नहीं है कि अधिवक्ताओं से अधिक साहस प्रत्येक स्तर के न्यायाधीशों ने दिखाया था।

साधु-संन्यासी : साधु संन्यासी और मठाधिपतियों की भूमिका प्राचीन काल से ही बहुत तेजस्वी रही है। जब जब राज्यकर्ताओं ने उन्मत्त होकर जनता पर अत्याचार ढाये हैं, तब तब उन पर नैतिक अंकुश लगाने और जनता को जगाने व सत्य के मार्ग पर अडिग रहने की प्रेरणा इन्होंने ही दी। पर आज का दृश्य बहुत ही चिंताजनक है। संसार त्यागी ही धन-संपत्ति के मोहजाल में फँसे हुए दिखाई दे रहे हैं। समय आने पर इन्हें समाज की अपेक्षा संपत्ति बचाने की चिन्ता ही अधिक रहेगी। सरकार की कृपादृष्टि के बिना संपत्ति की रक्षा हो नहीं सकेगी। भारतीय संस्कृति व परंपरा को पोष रहे साधु-संन्यासियों की यह प्रवृत्ति स्वयं उनके लिये तो घातक है ही, देश व समाज के भविष्य के लिये भी संकट का आह्वान ही है।

शिक्षा जगत : ज्ञान, संस्कार, चरित्र, नैतिकता, आदर्श प्राप्ति का सबसे महत्वपूर्ण और बड़ा केन्द्र शिक्षण संस्थान ही होते हैं। आधुनिक काल में अर्थात् स्वतंत्रता आंदोलन के समय लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द जैसे पुरोधाओं ने राष्ट्रीय विद्यालयों के माध्यम से युवाओं को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया था। स्वामी दयानन्द सरस्वती और स्वामी विवेकानन्द की शिक्षण संस्थाएँ भी पीछे नहीं रहीं थीं। भगतसिंह, डॉ. हेडगेवार जैसे देशभक्त इन्हीं राष्ट्रीय विद्यालयों की देन थे। परिणामस्वरूप स्वतंत्रता आंदोलन विशेषकर सशस्त्र आंदोलन में युवाओं की सक्रिय भागीदारी रही। इतना ही नहीं स्वयं का आदर्श उपस्थित करते हुए शिक्षकों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। लेकिन आज जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय और हैदराबाद विश्वविद्यालय की घटनाएँ माथे पर चिंता के बल लाने वाली हैं। जहाँ पाकिस्तान जिन्दाबाद और भारत के टुकड़े

करने के नारे बेहिचक लगाये जा रहे हैं। इतना ही नहीं उनका समर्थन करने वाले बेशर्म प्राध्यापक व बुद्धिजीवी भी देश में पर्याप्त संख्या में खड़े हो जाते हैं। उनके समर्थन में देश भर में घूम-घूम कर प्रचार करने भी संकोच नहीं कर रहे।

दूसरी ओर व्यावसायिक शिक्षा और शिक्षा का व्यावसायीकरण कोढ़ में खाज का काम करने में पीछे नहीं है। पाठ्यक्रमों से नैतिक शिक्षा, देश की समझ रखने वाले महापुरुषों के जीवन चरित्र विलुप्त किए जा रहे हैं। परिणामस्वरूप बड़े से बड़ा पैकेज प्राप्त करना व विदेश जाकर बसना ही युवाओं का जीवन लक्ष्य बन गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् पुलिस व प्रशासन का ढर्रा वही, आम जनता के काम में अड़ंगे लगाना व शासकों की चरणवन्दना करते हुए प्रत्येक सही-गलत आदेश का पालन करने वाला रहा है। आपातकाल में इसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हुई थी। पढ़े-लिखे, ऊँचे वेतन पाने वाले आला अधिकारियों का असंवैधानिक कामों में सहयोगी बनना चिन्ता की बात है। आपातकाल के भुक्तभोगी नेताओं के हाथ में सत्ता आ जाने के बाद प्रशासनिक ढाँचे में सुधार की अपेक्षा थी। लेकिन अभी तक कुछ हुआ नहीं है।

कुल मिलाकर एक दृष्टि में यही दिखायी देता है कि आपातकाल की दुर्भाग्यपूर्ण घटना से देश ने सबक सीखने का गंभीर प्रयत्न नहीं किया। ऐसी उदासी नए संकटों को आह्वान देती है। यह स्थिति किसी भी देश के लिये उचित नहीं कही जा सकती। फिर भी निराशा का कोई कारण नहीं है। सबक कभी भी सीखा जा सकता है। आपातकाल का स्मरण है और उसको अनुचित मानना भी कम सबक नहीं है। परिवर्तन की प्रक्रिया अब भी 'देर आये दुरुस्त आये' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए शुरू की जा सकती है।

संपर्क : ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 9425407471

लक्ष्मीनारायण भाला

आपातकालीन भूमिगत आंदोलन : एक झाँकी

प्रशासन भ्रष्टाचार में लिप्त है, देश की आर्थिक स्थिति चरमरा चुकी है, न्याय व्यवस्था सत्ताधारियों के अनुकूल काम नहीं कर रही है, छात्र और जननेता अराजकता फैला रहे हैं, सभी प्रचार माध्यम सरकार को कोस रहे हैं और विरोधी दल इन सभी स्थितियों का लाभ उठाकर एकजुट हो रहे हैं, ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? इन प्रश्नों का समाधान खोजने की प्रकिया में इन्दिरा गाँधी के अंतर्मन की एक-एक परत हटती जा रही थी। परिणामत: अंतर्मन में आवृत्त हुई तानाशाही प्रवृत्ति अनावृत्त होकर इन्दिरा गाँधी के मन-मस्तिष्क पर छा गई। लोकतंत्र नहीं तानाशाही। बस! यही एकमात्र उपाय है। यह निर्णय ''आत्मा की आवाज'' के नाम पर ले लिया गया। किसी प्रकार की आपदा के न होते हुए भी देश की आर्थिक स्थिति को ठीक करने के नाम पर ''आपातकाल'' घोषित हुआ। रातों-रात समाचार पत्रों पर पाबंदी, इकठ्ठा होने पर पाबंदी, विरोध जताने पर पाबंदी और ऐसा करने वाले संभावित जननेताओं की गिरफ्तारी के फरमान जारी हुए। 25 जून 1975 की उस काली रात ने 26 जून के समाचार पत्रों के संपादकीय लेखों को निगल लिया। रातों-रात सैकड़ों जननेताओं एवं प्रमुख राजनेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। देश में सन्नाटा छा गया। समाजसेवी, देशप्रेमी और लोकतंत्र के विश्वासी बुद्धिजीवी किंकर्तव्यविमूढ़ हुए। दिगभ्रमित हुए। अगले ही कुछ दिनों में इन्दिरा गाँधी के इस कदम की सराहना करते हुए प्रमुख समाजसेवी महात्मा गाँधी के अनुयायी आचार्य विनोबा भावे ने इसे ''अनुशासन पर्व'' का प्रमाणपत्र देकर आम जनता को भी दिगभ्रमित कर दिया। कुछ ही दिनों बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को प्रमुख लक्ष्य मानकर कुछ संगठनों को अवैध घोषित कर उनकी गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी गई। खुलेआम की जा रही लोकतंत्र की इस हत्या का खुलेआम विरोध न हो पाए ऐसी चाक-चौबंद व्यवस्था कर दी गई।

जब खुलेआम कुछ करने की स्थिति न हो तो भूमिगत काम प्रारंभ होने लगते हैं। यही मानवीय प्रवृत्ति है। इस मानवीय प्रवृत्ति को संगठन का सहारा मिला और भूमिगत आंदोलन की रूपरेखा बनी। संगठन शास्त्र के जानकार एवं संगठन कुशल संघ के सैंकड़ों स्वयंसेवक, कार्यकर्ता एवं अधिकारी भूमिगत हो गए। अपनी वेशभूषा, अपना नाम एवं अपने रहन-सहन के तरीके को बदलने का ही अर्थ था भूमिगत होना। देशभर में सैकड़ों लोग भूमिगत हुए। लेखक स्वयं ''अनिमेष गुप्त'' कहलाने लगे तो गोविंदाचार्य ''रामभरोसे तिवारी'' बने। सूर्यकांत केलकर ''चंद्रकांत गोड़बोले'' बनकर प्रवास करने लगे। दत्तोपंत ठेंगडी, मोरोपंत पिंगले, माधवराव बनहट्टी, भाऊराव देवरस, प्रो. राजेन्द्र सिंह उपाख्य रज्जु भैया आदि सैकड़ों लोग भूमिगत होकर खुलेआम प्रवास करते रहे, बैठकें लेते रहे, रणनीति बनाते रहे। विवेकानंद केन्द्र के संस्थापक एकनाथ रानडे सरकार और संगठन के बीच मध्यस्थता का दायित्व निभाते रहे। इसी

भूमिगत व्यवस्था के द्वारा कारागार में बंद लोगों के परिवारों की चिंता करने के साथ-साथ लोकनायक जयप्रकाश नारायण की चिकित्सा एवं देखभाल के लिए अर्थ संग्रह भी होता रहा। कोलकाता से गोविंदभाई श्राफ के एक्सेल ग्रुप से मासिक 10 हजार रुपये प्राप्त कर पटना में रामभरोसे तिवारी के माध्यम से लोकनायक तक पहुँचाने का कार्य प्राय: 10 मास तक स्वयं लेखक ने निभाया था। इसी भूमिगत व्यवस्था से संघ पर लगे प्रतिबंध को हटाने एवं कारागार में बंद निर्दोष लोगों को छुड़वाने की माँग को लेकर सत्याग्रह का दौर चला। 14 नवंबर 1975 से 26 जनवरी 1976 तक चलने वाला यह महा सत्याग्रह लोकतंत्र की बहाली के लिए किया गया दुनिया का सबसे बड़ा अहिंसात्मक सत्याग्रह कहलाएगा। भूमिगत रहते हुए खुला सत्याग्रह करवाना अपने आप में एक रोमांचक कार्य था। इस रोमांचक कसरत में कई भूमिगत कार्यकर्ता अपनी असली पहचान उजागर होने के कारण पकड़े भी गए। प्रताड़ित होकर कई प्रकार की यातनाओं के शिकार भी हुए। केलकर से गोड़बोले बने सूर्यकांत केलकर के नेतृत्व में हुए गोरिल्ला सत्याग्रह से पुलिस को दिग्भ्रमित कर इधर से उधर दौड़ाने की बात, नोटों पर हाथ से नारे लिखकर उसे बाजार में चलवाने की बात, चलते-फिरते भद्रजनों के कपड़ों, किताबों या हाथ की किसी चीज पर चुपके से कागज की परचियाँ चिपकाने की बात और इस प्रकार ''लोकतंत्र के दुश्मन तीन, इन्दिरा-बरुआ-फखरुददीन'' जैसे नारों को घर-घर तक पहुँचाने की करतूतों की बात उनके मुख से सुनना अपने आप में एक रोमांचक एवं आनन्ददायी अनुभव है। भोपाल, ग्वालियर, इन्दौर जैसे बड़े स्थानों पर छोटे-छोटे बच्चों द्वारा किए गए सत्याग्रहों में ''जेल के ताले टूटेंगे, हमारे पापा छूटेंगे'' इन नारों को सुनकर केवल जन समर्थन ही नहीं तो प्रशासन को भी अपना समर्थन देने पर कैसे मजबूर होना पड़ता था, यह अपने आप में एक अद्भुत बात थी। हालाँकि इसका परिणाम भी उन्हें भुगतना पड़ा। उनकी पहचान उजागर हुई और वे गिरफ्तारी कर लिए गए। कड़वे हो और गोड़बोले (मीठा बोलने वाला) बनकर मीठा होने का नाटक कर रहे हो यह कहकर पुलिस की मार भी सहनी पड़ी।

बंगाल में एक अनोखा प्रयोग हुआ। अनिमेष गुप्त के छद्म नाम से इस लेख के लेखक ने भाषा, खानपान, वेशभूषा एवं चाल-चलन से अपने आप को पूरा ''बंगाली-मोशाए'' बना लिया। ''वंदेमातरम् शतवर्ष पूर्ति उत्सव समिति'' का गठन कर स्थान-स्थान पर विचार गोष्ठियों के आयोजन का सिलसिला प्रारंभ हुआ। कोलकाता हाईकोर्ट के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री शंकर प्रसाद मित्र जिस संगठन के अध्यक्ष हों एवं आनंद बाजार पत्रिका के सह संपादक श्री रथिन्द्र मोहन बंदोपाध्याय जिसके महामंत्री हों उस संगठन के संगठन मंत्री बनकर अपने आप को कानून का छात्र कहलाकर ''अनिमेष गुप्त'' ने खुलकर प्रवास किया। मंच चाहे जो भी हो विषय ''लोकतंत्र की हत्या'' के इर्द-गिर्द ही होता था। यह रणनीति बहुत कारगर सिद्ध हुई और यह मंच बंगाल में जनप्रबोधन, जनजागरण एवं जनसहभाग का यह एक प्रमुख माध्यम बना।

ऐसे ही नए-नए तरीकों से देश भर में स्थान-स्थान पर हो रहे भूमिगत आंदोलन का ही परिणाम था कि विनोबा भावे को अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ा और लोकतंत्र की बहाली के महत्व को समझकर इस सत्याग्रह का सर्मथन करना पड़ा। इन्दिरा गाँधी को भी 26 जनवरी 1976 के प्रजातंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर दिये गए अपने भाषण में यह स्वीकार करना पड़ा कि "The Purpose of emergency was not

economic but to meet the Political challenge" आपातकाल घोषित करने का उद्देश्य आर्थिक समस्या नहीं बल्कि राजनैतिक चुनौती का सामना करना ही था।'' सच्चाई को स्वीकार करने के लिए बाध्य करना ही सत्याग्रह का उद्देश्य होता है। इन्दिरा गाँधी से सच्चाई स्वीकार करवाना एवं उन्हें तानाशाही प्रवृत्ति से हटाकर पुनः लोकतंत्र की पटरी पर लाना, यही भूमिगत आंदोलन की अंतिम परिणति थी। सत्याग्रह का उद्देश्य सफल हुआ। कारागार में यातनाएँ सहने वालों को उससे छुटकारा दिलाने का यह एक सशक्त माध्यम बना। लोकनायक के नेतृत्व में लोकतंत्र की बहाली का प्रमुख हथियार था यह भूमिगत आंदोलन।

कैदी कविराय श्री अटल बिहारी वाजपेयी देश में हो रहे इन भूमिगत आंदोलनों से अवगत होते रहते थे। उसी का परिणाम था कि उनकी कलम से उनके मन का विश्वास इन शब्दों में प्रकट हुआ-

अनुशासन के नाम पर अनुशासन का खून,
भंग कर दिया संघ को कैसा चढ़ा जुनून।
कैसा चढ़ा जुनून, मातृ-पूजा प्रतिबंधित,
कुलटा करती केशव-कुल की कीर्ति कलंकित।
कह कैदी कविराय, तोड़ कानूनी कारा,
गूँजेगा भारत माता की जय का नारा।।

संपर्क : दिल्ली (भारत)
मो. 09818400713

कैलाशचन्द्र पन्त

वे पदचाप जो प्रजातंत्र को लील गए थे
(आपातकाल की याद क्यों?)

तब से अब तक दो पीढ़ियाँ जन्म ले चुकी हैं। आपातकाल जब घोषित हुआ था तब किसी को कानों-कान खबर नहीं लगी। अधिकारियों को भी नहीं थी। प्रधानमंत्री के संयुक्त सचिव श्री बिशन टंडन ने डायरी में 26 जून को दर्ज किया था कि गृह सचिव तक को आपातकाल लगाये जाने की सूचना नहीं थी। उन्हीं के शब्दों में कल रात दस बजे प्रधानमंत्री ने प्रो. धर और शारदा (प्रमुख प्रचार अधिकारी) को अपने निवास स्थल पर बुलाया। वहाँ बरुआ और सिद्धार्थ पहले से उपस्थित थे।...प्रधानमंत्री ने कहा, आई हैवडिसाइडेड टु डिक्लेअर इमर्जेंसी। प्रेसिडेंट हैज एग्रीड। आई विल इन्फार्म द कैबिनेट टु मारो।' उस समय के राजनीतिक माहौल की इस बानगी से समझा जा सकता है कि प्रजातंत्र का कैसा मजाक बनाया गया। जिस अध्यादेश को राष्ट्रपति ने बिना कैबिनेट के अनुमोदन के स्वीकार कर लिया और जिस देश की कैबिनेट की हैसियत इतनी थी कि उसे दूसरे दिन सूचना देना प्रधानमंत्री पर्याप्त समझते थे। संविधान और जनतंत्र का कैसा भद्दा मजाक था?

इकतालीस वर्ष बाद जब हम आपातकाल के बारे में बात करते हैं तो उस समय के दमन, अविश्वास और असुरक्षा की चर्चा ही ज्यादा की जाती है। वह सब एक काला अध्याय था। नई पीढ़ी को उसकी जानकारी भी नहीं है। लेकिन अध्ययन का विषय यह होना चाहिये कि प्रजातंत्र का नकाब पहन कर तानाशाही किस तरह अपना शिकंजा जकड़ती है? यह भी विश्लेषण करना जरूरी है कि प्रजातंत्र को किस तरह विकृत किया जा सकता है? हमारे राजनीतिक दलों की कमजोरी क्या थी? क्या उन्होंने आपातकाल से सबक सीख कर अपने आचरण में कुछ सुधार किया या नहीं? जो लोग सचमुच जनतंत्र के हिमायती बनने का दावा करते हैं उन्होंने क्या अपने दलों में असहमति के स्वर को सहन करने की प्रवृत्ति दिखाई है? राजनीतिक दलों से भी ज्यादा भारतीय जनता को, विशेषकर प्रबुद्ध वर्ग को, उत्तरदायी तरीके से वस्तुस्थिति का विश्लेषण करना सीखना होगा। यदि हम सचमुच देश में जनतंत्र को फलते-फूलते देखना चाहते हैं तो निरन्तर जागरूकता ही जरूरी होगी। उन सारे कंटकों को ढूँढ़ कर अलग करना होगा जो जनतंत्र को ध्वस्त कर सकते हैं। जनतांत्रिक जीवन राष्ट्रीय चरित्र की अपेक्षा करता है। हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिये कि चरित्र-निर्माण की दिशा में हम कितने प्रयत्नशील हैं।

इसलिये इस आलेख में उन परिस्थितियों और घटनाओं की बात की जा रही है जो 25 जून 1975 के पूर्व बनना प्रारंभ हो गई थीं। इसके लिये प्रधानमंत्री कार्यालय के संयुक्त सचिव की जानकारी से ज्यादा अधिकृत साक्ष्य क्या हो सकता है? उस व्यक्ति ने हर दिन की घटनाओं को अपनी डायरी में दर्ज किया था।

उस साक्ष्य की पृष्ठभूमि में जनतंत्र की कमजोरियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

24 जून 1975 को बिशन टंडन ने (जो उस समय प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के कार्यालय में संयुक्त सचिव थे) अपनी डायरी में दर्ज किया था– प्रधानमंत्री की छवि गिरी है और सत्ता पर संकट आया है। प्रधानमंत्री को सबसे अधिक बल मिला है उनकी ही पार्टी के सदस्यों, विशेषकर वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं की कायरता से। वरिष्ठ नेताओं को प्रधानमंत्री ने जिस तरह मूर्ख और नपुंसक बनाया है, वैसा अन्य उदाहरण कम मिलेगा। प्रधानमंत्री आगे आने वाले दौर में इसका पूरा लाभ उठायेंगी। प्रधानमंत्री का ध्येय स्पष्ट है : चाहे कुछ भी हो, मेरी कुर्सी नहीं जानी चाहिये। वरिष्ठ नेता ताली बजाते रहेंगे और प्रधानमंत्री को मनमानी करने देंगे, हमारे आदर्श, मूल्य, मापदण्ड जाएँ भाड़ में। मुझे लग रहा है कि इस देश में प्रजातंत्र का अंत समीप आता जा रहा है। ('आपातकाल की डायरी' : पृष्ठ 394)

यह किसी राजनेता का निष्कर्ष नहीं था। उस 'ब्यूरोक्रेट' का था जो प्रधानमंत्री निवास और कार्यालय में चल रही गतिविधियों को निकट से देख और समझ रहा था। तानाशाही के आने का अनुमान श्री चन्द्रशेखर को भी था। वे कांग्रेस के एक कद्दावर नेता थे। प्रधानमंत्री की नीतियों और कांग्रेस नेताओं के आचरण से वे दुखी थे। आपातकाल की घोषणा के बाद उन्हें भी बन्दी बना लिया गया था। अपनी 'जेल की डायरी' में उन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काशी दरबार पर लिखे व्यंग्य का स्मरण करते हुए लिखा– कांग्रेस कार्यसमिति की बैठकों में ये सब दृश्य एक साथ देखने को मिलते हैं। बन्दर-बन्दरियों का नाच, बगमटेरों की कवायद, कठपुतली का तमाशा। ये देखकर तो मनोरंजन होता है। कुछ लोग तो इसी के लिये हैं ही। पर जो दूसरा अनुभव है वह हृदयद्रावक है। कुछ लोग जिस प्रकार मौन रह जाते हैं, सब टीस को पीकर सबकुछ सहन कर लेते हैं, उनको देखकर यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि वे किसी पाप का फल भुगत रहे हैं या 'फौजदारी की सजा' काट रहे हैं। पर जब ये फौजदारी करते ही नहीं तो सजा क्यों काटेंगे? कौन सा पाप किया है इन्होंने? क्यों नहीं प्रायश्चित कर पाते? तरस आता है इनकी स्थिति पर। फौजदारी करके सजा काटना अच्छा है अपेक्षाकृत तिल तिल कर अनजाने पाप का फल भुगतने में।

एक और उल्लेख चन्द्रशेखर की डायरी से ही करना उपयोगी होगा। बीजू पटनायक ने इन्दिरा जी के व्यक्तित्व का सटीक विश्लेषण करते हुए कहा था वे वही अधिकार लेना चाहती हैं जो टीटो और नासिर के थे। इन्दिरा जी सुनियोजित ढंग से उस दिशा में जा रही हैं। विरोधी पक्ष अपनी आपसी लड़ाई के कारण इस वृत्ति को रोकने में असमर्थ रहे। दमन की शक्तियों के सहारे जनता को चुप कर दिया जाएगा। कांग्रेस के अधिकतर लोग मौन सहकारी रह जायेंगे। सत्ता में थोड़ा बहुत भागीदार बनकर अपने को प्रधानमंत्री के चरणों में डाल देंगे। उनकी कृपा पर सब कांग्रेसियों का राजनीतिक अस्तित्व निर्भर रह गया है। यदि आज नहीं चेते तो कल के लिये उनकी सार्थकता नहीं। क्योंकि उनकी सारी शक्ति और क्षमता खत्म कर दी जाएगी। (जेल की डायरी : पृष्ठ 10) यहाँ यह उल्लेख करना जरूरी है कि बीजू पटनायक किसी समय इन्दिरा जी के अत्यन्त विश्वस्त नेता थे।

जिन स्थितियों का जिक्र चन्द्रशेखर जी अपनी डायरी में कर रहे हैं उसके परिणामों का अनुमान प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. धर्मवीर भारती ने उस समय लगा लिया था जब बाबू जयप्रकाश नारायण ने बिहार के छात्र आंदोलन का नेतृत्व कर पटना में विशाल प्रदर्शन किया था। 'मुनादी' शीर्षक कविता, कल्पना

और नवनीत में प्रकाशित उनकी कविता ने बुद्धिजीवियों का ध्यान आकृष्ट किया था। उसकी पंक्तियाँ हैं:-

खलक खुदा का, मुलुक बाश्शा का/ हुकुम शहर कोतवाल का/ हर खास और आम को आगाह किया जाता है/ कि खबरदार रहें/ कुंडी चढ़ा कर बन्द कर लें/ गिरा लें खिड़कियों के परदे/ और बच्चों को बाहर सड़क पर न भेजें/ क्योंकि/ एक बहत्तर बरस का बूढ़ा आदमी/ अपनी काँपती कमजोर आवाज में/ सड़कों पर सच बोलता हुआ/ निकल पड़ा है।

12 जून 1975 को इलाहाबाद हाई कोर्ट के जस्टिस जगमोहन लाल सिन्हा ने इन्दिरा गाँधी के निर्वाचन को रद्द करने का ऐतिहासिक फैसला सुना दिया। उसी दिन गुजरात विधानसभा के चुनाव परिणाम भी आना शुरू हो गए और शाम तक साफ हो गया कि कांग्रेस पराजित हो गई। दोनों घटनाओं ने इंदिरा गाँधी के समक्ष अस्तित्व का संकट पैदा कर दिया। सत्ता से हट जाने का एक गंभीर परिणाम उन सारे घोटालों का पर्दाफाश भी हो सकता था जो उन दिनों बहस का विषय बने हुए थे। तत्कालीन रेलमंत्री ललितनारायण मिश्र भ्रष्टाचार के आरोपों में घिरे हुए थे और कांग्रेस विपक्ष के आरोपों को झेल नहीं पा रही थी। इसी प्रकार रजनी पटेल पर कांग्रेस के लिये रुपये जमा करने के आरोप लग रहे थे। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने तो 12 मार्च 1975 को साफ कहा था कि रजनी पटेल ने ललित बाबू की जगह ले ली है। हरियाणा के उद्योगपति जिन्दल भी भ्रष्टाचार के आरोपों में घिरे थे। इसके अलावा कुछ उच्च पदों पर मनमानी नियुक्तियाँ भी सन्देह के घेरे में थीं। सबसे ऊपर मारूति कांड था, जिसमें प्रधानमंत्री के पुत्र संजय गाँधी पर आरोप लग रहे थे। इन सब बातों ने इन्दिरा जी में असुरक्षा की भावना पैदा कर दी थी। वे ऊपर से स्वयं को साहसी दिखाने की कोशिश करती रहीं, लेकिन भीतर से बहुत डरी हुई थीं। इस मानसिक स्थिति में व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वह बयान था जिसमें उन्होंने जयप्रकाश जी के एक बयान को गलत सन्दर्भ में पेश करते हुए उन पर पुलिस और सेना को भड़काने की कोशिश का आरोप जड़ दिया था। देश के प्रबुद्ध नागरिकों में इस बयान से काफी क्षोभ और गुस्सा जन्म ले रहा था। लेकिन नागरिक मौन धारण किए रहे।

सत्ता पर पूर्ण नियंत्रण जमा लेने की इन्दिरा जी की महत्वाकांक्षा अचानक ही सामने नहीं आई। इसके लिये वे काफी समय से कदम उठाती जा रही थीं। जब लालबहादुर शास्त्री की ताशकन्द में रहस्यमयी मौत हो गई तो कांग्रेस संसदीय दल नेता पद का चुनाव लड़ीं। मोरारजी देसाई ने स्वयं अपनी उम्मीदवारी आगे बढ़ा दी। संसद सदस्यों का एक बड़ा वर्ग मोरारजी भाई के समर्थन में था। तभी दिल्ली सहित अनेक शहरों में इंदिरा गाँधी के समर्थन में रैलियाँ आयोजित की जाने लगीं। इसका मनौवैज्ञानिक प्रभाव कांग्रेस सांसदों पर पड़ा। इन रैलियों को इन्दिरा जी के पक्ष में व्यापक जन समर्थन के रूप में प्रचारित किया गया। मोरार जी पराजित हुए। इन्दिरा जी प्रधानमंत्री बन गईं। लेकिन भारतीय राजनीति में रैली-युग की शुरुआत हो गई। जनतंत्र को भीड़तंत्र में बदलने की योजना का वह पहला चरण था। बाद में आपातकाल लगाने से पूर्व तक श्रीमती इन्दिरा गाँधी कामराज, चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, रामधन जैसे अपने समर्थक और दिग्गज कांग्रेसी नेताओं को भी किनारे कर चुकी थीं जो कांग्रेस कार्यकारिणी में और संसद में भी अपनी स्वतंत्र राय खुलकर रखने का साहस रखते थे। इसका साफ अर्थ था कि उन्हें असहमति का स्वर बिल्कुल पसन्द नहीं था। जबकि जनतंत्र का प्राणतत्व ही असहमति का अधिकार होता है। कहा गया है कि सत्ता शासक को भ्रष्ट करती है पर संपूर्ण सत्ता समग्र रूप में भ्रष्ट कर देती है।

संपूर्ण सत्ता की चाह में उन नेताओं को निष्प्रभावी करने की कोशिशें की जाने लगीं जो पार्टी संगठन में उनकी सत्ता को चुनौती दे सकते थे। कांग्रेस के केन्द्रीय नेतृत्व में उन लोगों को स्थान मिलने लगा जिनका अपना कोई वजूद नहीं था। न राजनीतिक पृष्ठभूमि थी और न ही सार्वजनिक छवि थी। हेमकान्त बरुआ के मुख से जब यह ब्रह्मवाक्य निकला था 'इन्दिरा ही इंडिया है और इंडिया ही इन्दिरा' तो वह अकेले बरुआ की अभिव्यक्ति नहीं थी, उन तमाम नेताओं की आत्मा की आवाज थी जो चापलूसी के जरिये पद हासिल करते जा रह थे और पद के माध्यम से धन बटोर कर पीढ़ियों का इंतजाम कर रहे थे। कांग्रेस पर वंशवादी राजनीति की शुरुआत की पक्की नींव उसी समय से रखी गई। एक ऐसा 'तालकूट' संप्रदाय बनाया गया जिसका काम ताली बजाना और नेतृत्व की जयकार करना रह गया था। इस वृत्ति को अपनाने वाले नेताओं को अपनी जेबें भरने का पर्याप्त अवसर मिला। वे आत्म मुग्ध थे। उनकी नजर जनता पर नहीं अपने आकाओं पर रहती थी।

आज राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार की बहुत बातें की जाती हैं। इस बात पर कम ही ध्यान दिया जाता है कि रैलियों की परम्परा ने भ्रष्टाचार को व्यापक पंख दिये हैं। इन्दिरा गाँधी की सत्ता में पकड़ मजबूत करने के लिये जरूरी था कि जनता का विशाल समर्थन बार-बार प्रदर्शित किया जाय। दिल्ली से फरमान जारी होता था। अधिकांश राज्यों में कांग्रेस की सरकारें थीं। सबको भीड़ बढ़ाने का कोटा दिया जाता था। राज्य सरकारों के मंत्री कलेक्टरों को, विभाग-प्रमुखों को भीड़ जमा करने और आर्थिक साधन जुटाने के आदेश मौखिक रूप से देते थे। अधिकारी अपने अधीनस्थों को हुक्म जारी कर देते थे। वे मजबूर थे। भीड़, पैसा और साधन सभी जुटा देते। जायज या नाजायज तरीकों पर सोचने की कोई जरूरत ही नहीं थी। पैसा देने वाले परोपकार नहीं करते थे। उसके बदले नाजायज लाभ का अवसर आने पर भरपूर दबाब बनाते थे। अधिकारियों और प्रशासन तंत्र सीधे भागीदारी नहीं कर सकता था। उनसे समन्वय बनाने के लिये कांग्रेस संगठन को भी एक तंत्र विकसित करना पड़ा। यह तंत्र ब्लाक स्तर तक संगठन में बहुत जल्दी खड़ा हो गया। इसमें भीड़ जमा करने और प्राप्त संसाधनों का उपयोग करने की क्षमता देखी गई। भीड़ के लिये झुग्गी झोपड़ी वासी, दैनिक काम पर जाने वाले मजदूर और गाँवों के खेतिहर श्रमिक सबसे आसान टारगेट होते हैं। लक्ष्य प्राप्त करने के लिये ठेकेदारी प्रथा शुरू हो गई। ऐसे ठेकेदारों को सरल आय का स्रोत मिल गया और भविष्य में कुछ बड़े काम पा जाने की संभावना बन गई। कांग्रेस संगठन में ऐसे ठेकेदारों की घुसपैठ हो गई। भले लोग दर-किनार कर दिये गए। ठेकेदारी प्रथा चाहे जिस क्षेत्र में हो भ्रष्टाचार उसका अभिन्न अंग होता है। प्रशासन भी भ्रष्ट हुआ और संगठन भी। भीड़ तंत्र ने किस प्रकार एक भ्रष्टतंत्र को जन्म दे दिया इसे समझने के लिये भी आपातकाल की पृष्ठभूमि का गहराई से अध्ययन जरूरी होगा। आपातकाल की पृष्ठभूमि में यह भ्रष्टाचार का वर्तुल इन्दिरा गाँधी की सत्ता के लिये चुनौती बना। बिहार का छात्र आंदोलन और जयप्रकाश का आह्वान उसकी परिणति थे। ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी लोकसभा में लगभग हर रोज लगने वाले भ्रष्टाचार के आरोपों से उत्तेजित हो रही थीं। पर वे यह कभी नहीं समझ सकीं कि इनकी बुनियाद स्वयं उन्हीं ने रखी है।

प्रश्न उठता है कि आखिर श्रीमती इन्दिरा गाँधी की इस नई रणनीति को बनाने तथा अंजाम देने का काम कौन कर रहा था? भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था लागू है। वह आपातकाल लगाने के पूर्व तक

सफलतापूर्वक काम भी कर रही थी। पच्चीस वर्षों की अवधि में जन-मानस में प्रजातांत्रिक जीवन मूल्यों के प्रति आस्था भी पैदा हो चुकी थी। इस व्यवस्था को एक झटके में समाप्त कर देना किसी भी शक्तिशाली सत्ताधीश के लिये संभव नहीं था। वैश्विक परिस्थितियों का दबाव भी था और तानाशाही को अंतरराष्ट्रीय भर्त्सना का भय तो रहता ही है। श्रीमती गाँधी और उनके तथाकथित सलाहकार इस तथ्य को समझते थे। परन्तु संपूर्ण सत्ता पर एकाधिकार की महत्वाकांक्षा भीतर से जोर मार रही थी। इसलिये उसकी पूर्ति के लिये श्रीमती गाँधी ने आंतरिक समूह बनाया। अपने विश्वस्त अधिकारियों-पी.एन. हक्सर, डी.पी. धर से हटकर इस आंतरिक समूह का नेतृत्व संजय गाँधी को दिया गया। इसके सूत्रधार थे आर.के. धवन और हरियाणा के बंसीलाल। तीनों के स्वभाव का विश्लेषण करने पर अद्‌भुत साम्य दिखाई दिया। तीनों ही स्व-केन्द्रित निर्मम और अधिकारों का मर्यादाहीन दुरुपयोग करने वाले थे। वह दौर था जब प्रधानमंत्री कार्यालय के इस सामान्य अधिकारी के दरवाजे पर कांग्रेस के केन्दीय मंत्री और राज्यों के मुख्यमंत्री पंक्तिबद्ध खड़े रहते थे। इस समूह ने ही चुन-चुन कर प्रभावशाली नेताओं को पदों से हट जाने की मजबूरी पैदा कर दी या निरंकुश तरीके से उन्हें हटा दिया। इसके बाद महत्वपूर्ण संस्थानों, आयोगों में अपने चहेतों को नियुक्तियाँ दी गईं। राज्यपालों की नियुक्ति में भी रीढ़ विहीन नेताओं की भर्ती की गई। प्रशासनिक तंत्र को भी 'कमिटेड ब्यूरोक्रेसी' के नाम पर नाकारा बना दिया गया। अंतिम प्रहार न्यायपालिका पर किया गया। जब जस्टिस ए.एन. राय को वरिष्ठता के क्रम से हट कर भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया। यह सारी व्यूह-रचना भावी रणनीति को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से ही गई थी। उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए श्री बिशन टंडन ने अपनी डायरी 21 दिसंबर 2014 को दर्ज किया था :-

जिस दिन प्रधानमंत्री ने किशनचन्द से मिलने की इच्छा व्यक्त की थी, उसी दिन गोपी अरोरा को भी बुलाया था। वह उस समय डी.पी. का विशेष सहायक था। गोपी से बात करने पर वह उससे प्रभावित हुईं। वे उसे डिप्टी कमिश्नर बनाना चाहती थीं। मैंने प्रधानमंत्री को यह सुझाया कि गोपी पहले भी दिल्ली का डिप्टी कमिश्नर रह चुका है, फिर उस पद पर नियुक्ति ठीक नहीं रहेगी। उसे मुख्यसचिव बना दिया जाये। प्रधानमंत्री मान गईं। गृह सचिव से कह दिया गया। डी.पी. को भी तैयार करा लिया गया। गृह मंत्रालय से औपचारिक प्रस्ताव भी आ गया। पर इस बीच में धवन ने (अवश्य ही किसी के सिखलाने पर) प्रधानमंत्री के कान भर दिये कि गोपी इस पद के लिये बिलकुल अनुपयुक्त होंगे। प्रधानमंत्री ने गृहमंत्री को फटकारा कि उनका प्रस्ताव बिना सोचे समझे किया गया है (प्रस्ताव तो प्रधानमंत्री के कहने पर किया गया था) और किसी अन्य अधिकारी का नाम सोचना होगा।

उसके बाद एक-एक करके धवन ने अपने मित्रों और परिचितों को मुख्य सचिव, डिप्टी कमिश्नर, एस.पी. आदि के पदों पर नियुक्त करवाया। इन सबकी मीटिंग पर यदि धवन अध्यक्षता नहीं करेगा तो कौन करेगा? दिल्ली प्रशासन पर धवन का पूरा आधिपत्य है।... एक बात और भी लिख दूँ कि यह जो नया स्टाइल दिल्ली से आरंभ हुआ है, वह अब फैलता ही जाएगा, यहीं रुकेगा नहीं। (आपातकाल की डायरी पृष्ठ 141)

उस समय की राजनीतिक परिस्थिति में आपातकाल लगा और उस स्थिति का व्यंग्यात्मक चित्र विख्यात कवि भावनीप्रसाद मिश्र ने बड़ी खूबसूरती से प्रस्तुत किया है।

बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले/ उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले/ उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खायें और गायें/ वे जिसको त्यौहार कहें सब उसे मनायें।/ कभी कभी जादू हो जाता है दुनिया में/ दुनिया भर के गुन दिखते हैं अवगुनिया में/ ये औगुनिए चार बड़े सरताज हो गए/ इनके नौकर चील, गरुड़ और बाज हो गए।

अप्रैल 1973 में सुप्रीम कोर्ट में तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों की वरिष्ठता की उपेक्षा कर ए.एन. राय को मुख्य न्यायाधीश के पद पर बैठाया जा चुका था। तब जयप्रकाश जी ने पत्र लिखकर कहा था– न्यायपालिका की स्वाधीनता की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है। यह कैसे हो इसके लिये सरकार, विपक्ष और जनमत में एक निश्चित राय बननी चाहिये। मैं नहीं सोच पाता कि इससे किसी को असहमति हो सकती है। यह तुम पर या किसी अन्य पर शंका की बात नहीं है। हमें हमेशा अपने को ही सत्ता में रखकर इस प्रश्नों पर विचार नहीं करना चाहिये। लोकतंत्र, समाजवाद आदि के बारे में कोई भिन्न दृष्टिकोण रखने वाली सरकार यदि सत्तारूढ़ हो जाये तो क्या वह भी सन्तुलन रख सकेगी? इन मूलभूत बातों के लिये संवैधानिक/ वैधानिक व्यवस्था ही अधिक उपयुक्त होती है।

इस सारी पृष्ठभूमि की विस्तार से चर्चा करना इसलिये जरूरी है क्योंकि तानाशाही के पदचाप सुनने में जो देश असमर्थ हो जाता है तो वहाँ जनतंत्र को नष्ट होने से कोई रोक नहीं सकता। जनतंत्र के भविष्य पर विचार करते हुए यह ध्यान में रखा जाना चाहिये कि बहुमत प्राप्त करने वाला दल भी बहुमत के अहंकार से यदि कार्यपालिका या न्यायपालिका की स्वतंत्रता को चुनौती देता है तो यह भी तानाशाही की दिशा में बढ़ा हुआ कदम हो सकता है। संविधान ने विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कर रखी है। तीनों की स्वायत्तता– 'अधिकारों के पृथक्करण' में समाहित है। इस स्वायत्तता की रक्षा का दायित्व भी तीनों पर है। किसी विवेकहीन व्यक्ति को विधायिका का नेतृत्व मिल जाय तो वह कार्यपालिका पर अपनी प्रभुता के बहाने उसे गलत काम करने पर मजबूर कर ही सकता है और न्यायपालिका में अपने वफादारों की नियुक्ति कर जनतंत्र का स्वाँग तो पूरा कर ही सकता है, पर वस्तुत: वह अपनी तानाशाही स्थापित करेगा। कार्यपालिका के अधिकारों को इसीलिये वैधानिक संरक्षण देने और न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने का प्रावधान किया जाता है।

यह विचार करने का समय आ गया है (खासतौर से आपातकाल के पूर्व की घटनाओं की पृष्ठभूमि में) कि विधायिका में कैसे लोग चुनकर जाएँ? जो लोग निर्वाचित होंगे वह इसी देश के नागरिक होंगे। तो देश के नागरिकों का राष्ट्रीय चरित्र सुधारना आवश्यक होगा। आज तो स्थिति यह है कि कुछ नागरिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की संवैधनिक गारंटी का सहारा लेकर देश को तोड़ने की बात करते हैं। न्यायपालिका के निर्णयों का विरोध करने वाले अभिव्यक्ति के अधिकार की रक्षा करने की गुहार लगाते हुए न्यायपालिका की शरण में ही तो जाते हैं! राजनीति का जो स्तर दिखाई देने लगा है उससे राजनीति के प्रति आक्रोश बढ़ रहा है। लेकिन यह भी नहीं भूला जा सकता कि जनतंत्र में राजनीति और राजनीतिक दल दोनो आवश्यक तत्व हैं। इसलिये राजनीति से ही शुरुआत करने का दायित्व राजनीतिक दलों का है। जिससे भविष्य में कभी कोई प्रधानमंत्री आपातकाल थोपकर तानाशाही स्थापित न कर दे।

संपर्क : भेपाल (म.प्र.)
मो. 9826046792

कमल किशोर गोयनका

आपातकाल में हस्तलिखित समाचार-पत्र
(गाँधी दर्शन का पुनर्जीवन)

महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर 'नवजीवन', 'यंग इंडिया', 'हरिजन' आदि समाचार-पत्रों का सम्पादन किया और उनके पत्रकार ने देश के स्वाधीनता-संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान किया, परन्तु भारत में गाँधी की पत्रकारिता का समय एक प्रकार से आपातकाल का ही समय था। यह आपातकाल भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी द्वारा 26 जून, 1975 में लगाए गए आपातकाल से कुछ भिन्न था। इन्दिरा गाँधी ने लोकतन्त्र में आपातकाल लगाया था। यह आपातकाल कुल अठारह महीने रहा, फिर चुनाव हुए और पुनः लोकतन्त्र की स्थापना हुई। गाँधी का समय अंग्रेजों की गुलामी का समय था और एक प्रकार से पूरा कालखण्ड ही देश के लिए आपातकाल था। उस समय अंग्रेजी सरकार ने प्रेस कानूनों में संशोधन करके उन्हें और भी दमनकारी तथा घातक बना दिया था। यह वास्तव में आपातकाल ही था जब भाषण, प्रकाशन तथा सभा करने पर प्रतिबन्ध था और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं थी। जब कोई विदेशी सरकार, देश का शासक अथवा लोकतन्त्र में चुने गए प्रतिनिधियों की सरकार अभिव्यक्ति पर अंकुश लगाती है और नागरिकों की संविधान प्रदत्त स्वन्त्रता को छीन लेती है तो वह आपातकाल ही होता है। गाँधी ने ऐसे आपातकाल में दक्षिण अफ्रीका में भी काम किया था, जब उन्हें जेल की सजा हुई थी और भारत में तो उन्हें कई बार ऐसे आपातकाल का सामना करना पड़ा और दण्डित भी होना पड़ा। गाँधी को अपनी सम्पूर्ण पत्रकारिता ऐसी ही आपातकालीन परिस्थितियों में करनी पड़ी और दमन, आतंक एवं अन्याय के बीच अपने समाचार पत्रों को निकाला और उचित समझा तो उनका प्रकाशन ही बन्द कर दिया। गाँधी का दर्शन था कि जब सरकार प्रेस की स्वतन्त्रता कर अंकुश लगाए, और प्रेस से ज़मानत माँगे अथवा सम्पादक को जेल में बन्द कर दे तो मालिक को समाचार-पत्र का प्रकाशन तथा प्रेस बन्द कर देना चाहिए। वे जमानत जमा करके तथा सम्पादक मालिक द्वारा माफ़ी माँगकर समाचार-पत्र निकालने के बिलकुल पक्ष में नहीं थे, लेकिन इन दमन एवं आतंकवादी स्थितियों में गाँधी एक और विकल्प का प्रस्ताव करते हैं और वह है हस्तलिखित समाचार-पत्र का प्रकाशन। सरकार समाचार-पत्र, प्रेस और सम्पादक को बन्द कर सकती है, लेकिन वह हाथ से लिखे समाचार-पत्र और उनके वितरण को कैसे रोक सकती है?

गाँधी के जीवन में तथा एक पत्रकार के रूप में 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' के सम्पादक- काल में ऐसे कुछ प्रसंग घटित होते हैं जब अंग्रेजी सरकार प्रेस की स्वतन्त्रता का हरण

करती है और जमानत ज़ब्त करके, प्रेस बन्द करके, सम्पादक को गिरफ़्तार करके तथा अदालत से सजा दिलाकर बन्दी-गृह में बन्द कर देती है। लोकमान्य तिलक तो कई वर्षों तक अपने लेखों के कारण जेल में रहे थे, गाँधी को भी ऐसी ही अपराध में सजा हुई थी। गाँधी के सामने 'इंडिपेंडेंट' समाचार-पत्र के जॉर्ज जोजफ की गिरफ़्तारी, फिर महादेव देसाई के दो हज़ार की जमानत देने और तेरह दिन बाद 20 दिसम्बर, 1921 को ज़ब्त होने का प्रसंग आया तो उन्होंने 'यंग इंडिया' के 22 दिसम्बर, 1921 को 'इंडिपेंडेट का दमन' से अपने सम्पादकीय में लिखा, 'इंडिपेंडेंट' मर सकता है, लेकिन जनता में जो भावना उसने जाग्रत कर दी है वह कभी मर नहीं सकती। 'इंडिपेंडेंट' भले ही न छपे, उसे लिखा तो जा ही सकता है। सम्पादक को जहाँ मालिकों के हितों की रक्षा करनी पड़ती है, वहीं अपने व्यक्तित्व को भी अक्षुण रखना पड़ता है। महादेव देसाई... मुझे आशा है अब वे छापने के स्थान पर अपना अख़बार लिखना शुरू कर देंगे। ख़बरों और सम्पादकीय टिप्पणियों को मजबूरी के कारण और भी सार-रूप में प्रस्तुत करने से पाठकों का भी लाभ होगा। अधिक संख्या में प्रतियाँ तैयार करने के लिए मेरा सुझाव है कि रोनियो, साइक्लोस्टाइल अथवा क्रोमोग्राफ से काम लेना चाहिए और यदि कानून और उसकी मनमानी व्याख्या सरकार को साइक्लोस्टाइल अथवा रोनियो मशीन तक ज़ब्त कर लेने की अनुमति देती हो, तब भी श्री देसाई की लेखनी तब तक देश की सेवा करती रह सकती है, जब तक खुद उनको पकड़कर इलाहाबादी सेंट्रल जेल में न डाल दिया जाए। राष्ट्रवादी अख़बारों के मालिक ख़बरदार रहें।'

गाँधी की इस टिप्पणी के आस-पास ही महादेव देसाई ने दो हज़ार की ज़मानत के जब्त हो जाने के बाद 'इंडिपेंडेंट' का हस्तलिखित संस्करण निकालना आरम्भ कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाएँ निकालने की परम्परा शुरू हो गई थी, लेकिन सरकारी अंकुश और सेंसरशिप के दबाव में हस्तलिखित समाचार-पत्र निकालने के सम्भवत: ये आरम्भिक प्रयोग थे। गाँधी इस नए प्रयोग की उपयोगी और महत्त्वपूर्ण मान रहे थे। 'इंडिपेंडेंट' के अब तक चार सम्पादक-सी.एस. रंगा अय्यर, जॉर्ज जोजेफ कबाड़ी और महादेव देसाई गिरफ़्तार हो गए थे और फिर भी उसका हस्तलिखित संस्करण निकल रहा था। गाँधी ने 'यंग इंडिया' के 5 जनवरी 1922 के अंक में लिखा, ''यह एक साहसपूर्ण प्रयोग है और उसमें महत्त्वपूर्ण सम्भावनाएँ निहित हैं। मुमकिन है कि सरकार पत्र के खिलाफ़ अपनी कार्यवाही की कोई हद ही न बाँधे और प्रत्येक नए सम्पादक को गिरफ्तार करती चली जाए। इस नए प्रयोग का उद्देश्य यह दिखाना है कि जब सजा भुगतने के लिए काफ़ी आदमी मौजूद हों तो कोई भी सरकार अपनी मर्जी के खिलाफ़ जबरदस्ती अपनी इच्छा नहीं लाद सकती।'' गाँधी तो ऐसे हस्तलिखित समाचार पत्र की प्रतिलिपियाँ तैयार करने, वितरण एवं एजेन्टों की व्यवस्था करने, ग्राहकों की सूची बनाने तथा कर्मचारियों एवं पाठकों के बीच निकट और सजीव सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं और उसकी रूपरेखा इसी टिप्पणी में प्रस्तुत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गाँधी ही हस्तलिखित समाचार-पत्र निकाल रहे हों और उसकी व्यवस्था पूरे सोच-विचार के साथ निश्चित कर ली हो।

गाँधी के सम्मुख 'इंडिपेंडेंट' समाचार-पत्र का ही मामला नहीं है। 'डेमोक्रेट' सरकार सेंसरशिप से बन्द हो गया है तथा तिलक के 'केसरी' तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' पर भी तलवारें उठ चुकी हैं तथा 'वन्देमारतम' को दो हजार रुपये ज़मानत के रूप में जमा कर अपनी जान बचानी पड़ी है। स्थिति विकट है और 'केसरी' एवं 'प्रताप' से दस-दस हज़ार रुपये की ज़मानतें माँग ली गई हैं। गाँधी इस आपातकाल में इनके सम्पादकों को यह सलाह देते हैं कि ये 'इंडिपेंडेंट' की तरह अपने विचार हाथ से लिखकर ही प्रकाशित करते रहें, क्योंकि जब तक वे जेल से बाहर हैं तब तक उनका मुँह आसानी से बन्द नहीं हो सकता। गाँधी आगे लिखते हैं, ''इसलिए पहले तो सीसे के टाइप और यन्त्र-रूपी मूर्ति को हमें तोड़-फोड़ डालना चाहिए। हमारी कलम ही टाइप बनाने वाली फाउण्डरी का काम देगी और खुशी-खुशी नकल करके प्रतियाँ तैयार करने वालों के हाथ छापने के यन्त्र का काम देंगे। इसलिए जब तक हम अपने विचारों का प्रकाशन स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकें तब तक अवश्य यन्त्र और टाइप का उपयोग करें, किन्तु जब तक 'प्रजावत्सल' सरकार, जो बड़ी चिन्ताकुल होकर मुद्रण-यन्त्र और टाइपों की अक्षर योजना पर बड़े गौर से निगाह गड़ाए बैठी हो और उस पर अंकुश रखे हुए हो, हमारे हाथ से मुद्रण-यन्त्र छीन ले, तो हमें लाचार और दीन नहीं हो जाना चाहिए, तथापि मैं मानता हूँ कि हस्तलिखित समाचार पत्र एक असाधारण समय के लिए एक असाधारण वीरोचित उपाय ही है। भाषण स्वातन्त्र्य, सभा सम्मेलन की स्वतन्त्रता और मुद्रण- स्वातन्त्र्य इन तीनों अधिकारों की पुनः स्थापना लगभग पूर्ण स्वराज्य के समान है।'' गाँधी प्रयाग के 'स्वराज्य' के ज़मानत जब्त होने पर उसके हस्तलिखित रूप में निकलने पर उसका स्वागत करते हैं। वे इसी प्रकार बिहार के 'मदरलैंड' समाचार-पत्र के सम्पादक द्वारा ज़मानत जमा न करके उसे हस्तलिखित रूप में निकालने की घोषणा का यह कहकर स्वागत करते हैं कि मुद्रित 'गीता' के स्थान पर हस्तलिखित 'गीता' का महत्त्व अधिक होता है। गाँधी मानते हैं कि हस्तलिखित समाचार-पत्रों के उत्तरोत्तर विकास से इस कला का पुनरुत्थान होगा, समाचारों और विचारों को संक्षिप्त करने की क्षमता का विकास होगा। स्वराज्य' (प्रयाग), 'कांग्रेस' (गोहाटी) आदि हस्तलिखित समाचार-पत्र इस कला को विकसित कर रहे हैं।

गाँधी दासता एवं दमन के आपातकाल में हस्तलिखित समाचार पत्रों को एक शक्ति के रूप में देखते थे। वे चाहते थे कि लोगों में देश हित के लिए मेहनत करने का भाव एवं शक्ति उत्पन्न हो जाए तो असंख्य हस्तलिखित अख़बार रोज निकल सकते हैं तथा इस प्रकार के अख़बारों को लिखने और प्रकाशित करने का साहस करने वाले लोग जब तक मौजूद हैं तब तक कोई भी सरकार उन पर नियन्त्रण नहीं कर सकती। वे बस इतना चाहते हैं कि ये हस्तलिखित समाचार-पत्र समाचारों के चयन में सावधानी बरतें, अहिंसा का पालन करें तथा संयत भाषा का प्रयोग करें। गाँधी इस प्रकार पराधीनता के दमनकारी चक्र और प्रेस नियन्त्रण के अधिनियमों के विरुद्ध स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के लिए समाचार-पत्रों के हस्तलिखित संस्करणों के प्रकाशन एवं वितरण का दिल खोलकर समर्थन करते हैं और आपातकाल में उसे वीरोचित कार्य मानते हैं। गाँधी की दृष्टि में स्वराज्य के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता आवश्यक है। वे तो यहाँ तक कहते हैं कि भाषण, सभा-

सम्मेलन और मुद्रण की स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वराज्य, 'नव जीवन' भी उनके पवित्र तथा नैतिक साधनों में आते हैं। यह गाँधी की सनिवय अवज्ञा तथा सत्याग्रह दर्शन का ही अंग हैं कि अलोकतान्त्रिक एवं अमानवीय कानूनों को भंग किया जाए और पत्रकारिता में एक नए स्वरूप के विकास और उसे कलात्मक ऊँचाइयों तक पहुँचाने में मदद करते हैं। मॉरिशस में भी गुलामी के समय प्रवासी भारतीयों ने 'दुर्गा' हस्तलिखित पत्रिका (1935-38) निकाली थी और हिन्दी, भारतीयता एवं स्वतन्त्रता की चेतना को उत्पन्न करने का ऐतिहासिक प्रयास किया था। विदेशी गुलामी या स्वदेशी गुलामी हो अथवा इन्दिरा गाँधी जैसा लोकतान्त्रिक आपातकाल हो, यह हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं वितरण जनता को अपना प्रतिरोध व्यक्त करने तथा अन्याय के विरुद्ध जन-चेतना को बनाए रखने का अहिंसक प्रयास होता है और मैं भी जब गिरफ्तार हुआ और तिहाड़ जेल, नई दिल्ली में रहा तो जेल तक में ऐसे समाचार-पत्र, फोल्डर, पत्रादि हमें मिलते रहे जिनसे वहाँ बन्दी दो सौ प्रोफेसरों में साहस बना रहा और बाहर के प्रतिरोध की जानकारी मिलती रही। गाँधी भी हस्तलिखित पत्र-पत्रिकाओं का समर्थन भी इसीलिए करते हैं क्योंकि वे दमन के विरुद्ध जनता को जाग्रत रखना चाहते हैं। अत: किसी भी आपातकाल में यह हस्तलिखित पत्रकारिता बड़ी महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली बन जाती हैं और दमन एवं क्रूरता के राज्य में स्वत: पनपने लगती है।

सम्पर्क : दिल्ली (भारत)

शैवाल सत्यार्थी

महाकवि बच्चन और आपातकाल

आपातकाल की एक काली सुबह! आकाशवाणी ने एक समाचार प्रसारित किया - ''हिन्दी-उर्दू के पाँच शीर्ष साहित्यकारों ने आपातकाल का समर्थन किया है।'' इसमें पहला नाम सुनकर मैं हैरान रह गया, परेशान भी! यह नाम था- मेरे धर्म-पिता महाकवि श्री हरिवंशराय बच्चन का।

तभी, इसके तीन दिन बाद ही सोनीपत (हरियाणा) से मेरे अभिन्न प्रख्यात कवि मित्र प्रो. शैलेन्द्र गोयल का 13 जुलाई, 75 का पत्र आ पहुँचा। लिखा था - ''तुम्हारे परम प्रिय बच्चन जी ने इन्दिरा जी के आपातकाल का समर्थन किया है। तुम तो इन्दिरा जी की नीतियों और आपातकाल के प्रबल विरोधी हो, तुम्हें यह समर्थन कैसा लगा?''

मैंने शैलेन्द्र से पूछा कि तुमने यह प्रश्न मुझसे ही क्यों किया? 22 जुलाई, 75 के पत्र में उन्होंने उत्तर दिया ''बच्चन जी से तुम्हारे आत्मीय संबंध हैं, अतः तुमसे पूछना ही था, यदि यह बच्चन जी की अन्तरात्मा का आलेख है, तब उससे असहमति या सहमति विचार के स्तर पर होनी चाहिए, और यदि यह उनकी दुर्बलता और सुविधापरस्ती का दस्तावेज है - तब उसका अस्वीकार आत्मा के स्तर पर!'

अपने उत्तर में मैंने लिखा - ''बच्चन परिवार और नेहरू-परिवार के आत्मीय संबंध जग-जाहिर हैं। इस दृष्टि से, मेरी विनम्र सम्मति में यह समर्थन अत्यन्त स्वाभाविक ही है। कभी-कभी हमें अपने विचारों के विपरीत भी, निर्णय लेने पड़ते हैं। न जाने क्यों, हमें यह उनकी अन्तरात्मा की बात ही लगती है। उनके लिए किसी दुर्बलता या सुविधापरस्ती की बात सोच पाना भी मेरे लिए मुश्किल है।'' फिर भी, अपनी बात की पुष्टि के लिए मैंने 18 जुलाई, 1977 को पापा (बच्चन जी) के लिए एक पत्र भेज दिया - ''पापा, इधर कुछ समय से आप अपने पत्र में पत्र के लिए ध. (धन्यवाद) लिखते हैं, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। क्या अमित-अजित (अमिताभ-अजिताभ) के पत्रों में भी आप ऐसा ही लिखते हैं? आपातकाल - संबंधी शंका समाधान की आपने स्वीकृति दी, तो मुझे लगा मेरे सिर से एक पहाड़ उतर गया है। कवि-मित्र से आपके संबंध में यह शंका सुनकर मन व्यथित हुआ, तो पूछना आवश्यक हो गया।

पापा, आपको स्मरण होगा, कुछ वर्ष पूर्व भी एक ऐसी ही उलझन आ गई थी, जब एक अन्य कवि-मित्र प्राचार्य जगदीश तोमर ने 'धर्मयुग' में प्रकाशित 'ईट्स को श्रद्धांजलि' वाली आपकी कविता की भावना पर शंका की थी कि आपने इसमें ईट्स की तुलना में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की उपेक्षा की है। तब आपने अत्यन्त समाधानपूर्ण उत्तर दिया था। अब फिर एक बार आपके वैसे ही उत्तर की आतुर प्रतीक्षा है।''

तुरत ही, ठीक पाँचवें दिन मुझे पापा का 21 जुलाई, 77 का लिखा, मुझे उनके लिखे अनगिनत पत्रों में, अब तक का सबसे बड़ा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पत्र मिला। इसे मैं आपातकाल का 'ऐतिहासिक दस्तावेज' कहूँगा। लिखा था –

13 विलिंगडन क्रिसेन्ट
नई दिल्ली- 11
21.7.77

प्रिय शै. पत्र के लिए ध.।

'सर्वदेव नमस्कार: केशवं प्रति गच्छति' किसी देवता को नमस्कार करो, वह भगवान को नमस्कार हो जाता है। धन्यवाद तुम्हारे लिए नहीं है। भगवान के लिए है।

द्वापर में एक राजा कंस हुआ। उसकी बहन का नाम देवकी था। देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ। जब कंस अपनी बहन देवकी को विदा कर रहा था, आकाशवाणी हुई।

'तेरी इसी बहन की आठवीं सन्तान तेरा संहार करेगी!'

कंस ने तलवार खींच ली – 'देवकी को ही ख़त्म कर देता हूँ। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी!'

वसुदेव ने प्रार्थना की – 'प्राणदान दीजिए। उसकी आठवीं सन्तान होते ही मैं सादर आपको समर्पित कर दूँगा।'

कंस ने वसुदेव को, देवकी को अपने साथ ले जाने की अनुमति दे दी।

नारद जी कंस के पास पहुँचे। उससे बोले- 'तुमने बड़ी भारी गलती कर दी। वसुदेव ने आठवीं सन्तान तुम्हें, वध करने के लिए देने को कहा है। क्योंकि आकाशवाणी के अनुसार उनकी आठवीं सन्तान तुम्हारी क्षारक होगी। पर आठवीं सन्तान कौन होगी, उसको भी समझने की कोशिश तुमने की?'

नारद ने चक्राकार आठ लकीरें खींचीं और क्रमश: एक-एक से आरम्भ करके, हर लकीर को आठवीं सिद्ध कर दिया।

कंस ने पूछा- 'तो क्या मैं आठों सन्तानों को मार डालूँ?'

नारद ने उत्तर दिया- 'निश्चय!'

नारद चले जा रहे थे। रास्ते में श्री शुकदेव जी उनको मिले। अपने तप-बल से उनको पता लग गया कि नारद क्या करके लौटे हैं। बोले 'हे महामुने, यह आपने क्या किया? कंस तो केवल आठवीं सन्तान को मारना चाहता था, आपने सात और मरवा दिए!'

नारद जी बोले – 'सात सन्तानें और मारने की उसकी इच्छा का समर्थन मैंने इसलिए किया कि पाप का घड़ा जल्दी भरे और भगवान जल्दी अवतार लें!'

कलियुग में भी नारद अपना काम कराने के लिए अपने उपकरण खोज लिया करते हैं।

सम्पर्क : ग्वालियर (म.प्र.)

इंदुशेखर तत्पुरुष

क्रूरकाल की करतूतों का काला चिट्ठा

समग्र क्रान्ति के महानायक की महारैली से उठी जनता की हुंकार महारानी के सिंहासन की चूलें हिला कर रख देती है एक दिन। आक्रोशित जनता के सुलगते हृदयों का धुँआ राजमहल के कँगूरों की स्वर्णाभा पर कालिख पोत ही देता अन्ततः।

मंच से उठती ललकार एक राष्ट्रकवि का सिंहनाद- 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'... और दहल जाती है निरंकुश सत्ता की गर्वाच्छादित छाती।

गरज रही थी देशभर में देशभक्त विद्यार्थियों की युवाशक्ति अंधकार युग में सुनकर जिसको डोलने लगी थी दिल्ली की दंभभरी सत्ता।

इतना दोलन, इतनी हलचल, इतना विचलन, इतनी हताशा, इतना कोप- कि जनता की जय पताका के चीथड़े तार-तार हवा में उड़ा दिए गए। जनसभा समाप्त होने के कुछ ही घंटों के बाद लोगों के घर पहुँचने के पहले ही पहुँच चुकी थी पुलिस उनके घरों को हेरती-घेरती। सभास्थल पर बिछाई गईं कुर्सियों, दरियों, शामियाने के उठने से पहले ही उठ चुकी थी, लोकतंत्र की चादर। कि, अकस्मात वज्रपात हुआ दिल्ली के आकाश में जैसे फट पड़ता बादल किसी बस्ती पर। कड़क कर टूटटी बिजली किसी वृक्ष पर झुलसाती निष्पत्र करती उसको। पक्षियों के घोंसलों को राख करती।

पलक झपकते ही घेर लेतीं संगीनें सारी दिशाओं को, हवाओं को, उनमें बहने वाली साँसों को, उनमें रहने वाली प्यासों को, स्वप्नों को, नींद को, जाग को।

आधी रात का अँधेरा घोड़े पर सवार होकर जन-जन को सूँघता, फुसफुसाता, डोलता। विधि को विधवा कर विधान से बलात्कार करता। जिसके चरमराते बूटों की लयबद्ध आवाज़ें और संविधान का चीत्कार गूँजने लगता था कानों में रातभर। सड़कें सुबह रक्त से धुली हुई मिलतीं। काराएँ क्रांतिकारियों से भरी हुईं।

हिटलरी बेगम के फरमान से सींखचों में धर लिए गए लोकतंत्र के अहिंसक प्रहरी बहत्तर वर्षीय लोकनायक और उनके कदमों से कदम मिलाते देशभक्त बलिदानी नौजवान गहरे अँधेरे में। भारतीय जनता की अन्यायमुक्ति के स्वप्नदृष्टा कुचल दिये गए, लोकतंत्र के हत्यारों द्वारा।

कुचला संविधान भी गया था उस क्रूरकाल में सौंदर्यीकरण के नाम पर। अपनी कुत्सित करतूतों के लिए, कुख्यात एक दंभभरे राजकुमार ने सत्ता छिन जाने से भयभीत हुई महारानी को बाध्य कर दिया, उसे कुचल देने को।

सत्ता की शक्ति में पलती-मचलती-मदमाती, कुर्सी की अतृप्त प्यास से नाभिनालबद्ध, भयभीत

महारानी ने संविधान के मन्दिर को घेरकर कब्जा कर लिया आधी रात को। उसके लठैतों ने दिन-दहाड़े शासन के हाथ-पैर बाँध दिए ताकि उसकी तीनों कन्याओं का वे निर्विरोध अपहरण कर सकें, अपने युवराज के लिए जिसकी इन जवान कन्याओं पर पहले से नज़र थी।

उसी घर में एक चौथी लड़की 'प्रेस' भी थी जो तन्त्र की औरस पुत्री तो नहीं पर कोखजायी कन्याओं से कुछ कम भी नहीं थी। जिसके सम्मुख आने में कार्यपालिका, न्यायपालिका, व्यस्थापिका नामक तीनों कन्याएँ भी सकुचाती थीं। और अब ये चारों युवराज के कब्जे में थीं, इसलिए युवराज खुश थे। युवराज खुश तो महारानी बहुत खुश थी। महारानी बहुत खुश थी तो चाटुकार नाचते थे। चापलूस पुंगी बजाते थे।

इसी खुशी के बीच एक खतरनाक इरादे से ग्रस्त, उन्होंने अपहृत संविधान को खुश करने के इरादे से उसके गले में बयालीसवीं माला डालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उनके पुरखे भी जब मर्जी होती क्रीड़ा कर लेते थे, संविधान के कण्ठ में संशोधन की माला डालकर। और इस तरह इकतालीस बार किया जा चुका था संशोधन-संस्कार इससे पूर्व।

सन् 1976 के एक ऐसे ही उद्विग्न दिवस जब धर्मचक्र को कुचल रहा दमनचक्र देश में, प्रतिपक्ष सारा था कारागार में, बाकी सब बचे हुए करबद्ध मस्तकनत खड़े कतार में, 'इन्दिरा इज इण्डिया; इण्डिया इज इन्दिरा' का मंत्रजाप मुखरित करते फिरते थे चाटुकार, सफेद साड़ी पहने काली आँधी ने संसद को ढँक रखा ऐसे में अंधकार की ओट में घोंप दिया संविधान में अपना धारदार एजेंडा।

घोर अन्धकार युग में सम्पन्न हुए संविधान के इस शल्य-श्रृंगार में टाँक दिए गए उसकी माला में खास दो विदेशी प्रजाति के लोकलुभावन फूल। जिनकी गन्ध भीनी-भीनी आकर्षक किन्तु रस विषैला था। दिखने में रंगीन और उत्तेजक किन्तु आत्मघाती वे फूल थे भारत की अन्तरात्मा के प्रतिकूल।

राजेन्द्र प्रसाद, नेहरू, अंबेडकर, पटेल जैसे दिग्गजों ने 'सेक्यूलर', 'सोशलिज्म' के जिन विदेशी फूलों को भारत की जयमाल में पिरोना अनुचित समझा था उन्हीं वर्ज्य पुष्पों को ठूँस दिया संशोधन की इस बयालीसवीं माला में। भारतीय जलवायु के प्रतिकूल इन विदेशी पुष्पों को संविधान के निर्माताओं ने सन् 1949 में ही ठुकरा दिया था। अन्यथा इनको शामिल करने के प्रस्तावक तो तब भी कम नहीं थे।

अनुच्छेद के आरम्भ में जबरन घुसेड़ दिए गए कुछ अवांछित शब्द। धर्म के बिना राजनीति को पाप समझता था जो कहता था 'धर्म से पृथक् राजनीति तो मृत्यु का जाल है' वह गाँधी अब टप-टप रोता होगा देखता किसी लोक से। गाँधी के नाम पर धंधा करने वालों ने उसकी आत्मा को कुचल कर घोंप दिया उसमें 'सेक्यूलर', ठूँस दिया 'सोशलिज्म'। संविधान पर धर्मनिरपेक्षता का चोला चढ़ता हुआ देखकर 'धम्मं सरणम् गच्छामि' कहने वाला बाबा अंबेडकर भी सिर पीटता होगा धूर्तों की धूर्तता पर, मूढ़ों की मूढ़ता पर। क्रूर काल के काले इतिहास पर लोक को रौंदते तन्त्र के आपात प्रत्याघात पर।

सम्पर्क : जयपुर (राज.)
मो. 8387062611

हृदयनारायण दीक्षित

संविधान के रास्ते तानाशाही

भारत में संविधान का शासन है। संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका में खूबसूरत अधिकार विभाजन किए हैं। लेकिन आपातकाल आधुनिक इतिहास में संविधान को तहस-नहस करने की भयावह त्रासदी है। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने आज से 48 वर्ष पूर्व (25 जून 1975) पूरे देश को कैदखाना बना दिया था। संविधान (अनुच्छेद 352) में बाह्य आक्रमणों और देश के भीतर गंभीर आंतरिक अशांति के आधार पर आपातकाल घोषित करने की व्यवस्था थी। लेकिन तब देश में कोई आंतरिक अशांति नहीं थी। प्रधानमंत्री स्वयं आंतरिक अशांति से पीड़ित थीं। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 12 जून 1975 को उनका संसदीय चुनाव अवैध घोषित कर दिया था। न्यायालय के अनुसार वे अनुचित साधनों द्वारा चुनाव जीती थीं। रायबरेली (उत्तर प्रदेश) की उनकी संसदीय सीट रिक्त घोषित कर दी गई थी। सत्ता पक्ष का एक धड़ा और संपूर्ण विपक्ष त्यागपत्र माँग रहा था। उन्होंने पद से न हटने का निश्चय किया। आपातकालीन प्राविधान का दुरुपयोग किया और आपातकाल थोप दिया।

संविधान के रास्ते तानाशाही थोपने का ऐसा ही कृत्य एडोल्फ हिटलर ने 28 फरवरी 1933 को जर्मनी में किया था। हिटलर जर्मनी के चांसलर (सत्ता प्रमुख) थे। आपातकाल पर जर्मनी की संसद में मतदान हुआ। संसद का बहुमत हिटलर के पक्ष में था। 444 मत आपातकाल के पक्ष में पड़े। विपक्ष में 94 वोट पड़े। 109 लोगों ने मतदान में हिस्सा नहीं लिया। इसी तरह भारत में भी सत्ता पक्ष प्रधानमंत्री के पक्ष में था। जान पड़ता है कि श्रीमती इंदिरा गाँधी हिटलर से प्रेरित थीं। यहाँ पूरा विपक्ष जेल में डाल दिया गया था। जर्मनी की तर्ज पर यहाँ कांग्रेस संसदीय दल और पार्टी ने इस तानाशाही का समर्थन किया। कांग्रेस अध्यक्ष ने इंदिरा को इंडिया बताया और इंडिया को इंदिरा। स्वाधीनता आंदोलन के महान नेता जयप्रकाश नारायण को भी गिरफ्तार किया गया। अटल बिहारी वाजपेयी सहित सभी राष्ट्रवादी नेता भी जेल में थे। मानवता कुचली गई। पुलिस अंग्रेजी शासन की पुलिस की भूमिका में थी। विचार अभिव्यक्ति का गला घोंट दिया गया। प्रतिष्ठित पत्रकार पीड़ित किए गए। प्रधानमंत्री न्यायालयों की शक्ति पर आक्रामक थीं।

श्रीमती गाँधी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अपील की थी। लेकिन उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं की। संविधान में हास्यास्पद संशोधन हुआ। प्रधानमंत्री के संसदीय चुनाव को न्यायिक निर्वचन से मुक्त कराने का संशोधन कराया गया और इस संविधान संशोधन को पिछली तारीखों से लागू कराया गया। आपातकाल का बयालीसवाँ संशोधन

ध्यान देने योग्य है। संविधान में संसदीय अधिनियम पर भी न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था है। लेकिन आपातकाल में संविधान के उल्लंघन के आधार पर चुनौती देने के लिए संघ और राज्यों के कानूनों में भेद किया गया। यह व्यवस्था की गई कि सर्वोच्च न्यायपीठ अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी अधिकारिता में किसी राज्य के कानून को तब तक असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता जब तक ऐसी कार्यवाहियों में केन्द्रीय विधि भी प्रश्नवाचक न हो। व्यवस्था की गई कि नीति निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए अधिनियमित कानूनों को मौलिक अधिकारों के आधार पर चुनौती नहीं दी जाएगी। इसी तरह उच्च न्यायालयों को केन्द्रीय विधि की असंवैधानिकता के विरुद्ध सुनवाई से रोक दिया गया। किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के लिए न्यायमूर्तियों के विशेष बहुमत की अपेक्षा के प्राविधान किए गए। ऐसे सारे संशोधन न्यायपालिका का गला घोंटने वाले थे।

न्यायालय के पास संविधान संशोधनों को भी संविधान की मूल भावना के विपरीत होने अथवा अन्य कारणों से असंवैधानिक घोषित करने की शक्ति है। आपातकाल में संविधान संशोधन के अनुच्छेद 368 का भी संशोधन किया गया। व्यवस्था की गई कि संविधान संशोधन विधि के नाम से घोषित विधि को किसी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। सामाजिक राजनैतिक कार्यकर्ताओं को अकारण जेल भेजा गया। लाखों कार्यकर्ता जेल में थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ विशेष निशाने पर था। न्याय का नैसर्गिक सिद्धांत कुचला गया। किसी भी व्यक्ति को किसी भी आरोप में जेल भेजने के बाद अदालत उसका पक्ष सुनती है। लेकिन आपातकाल में कुख्यात 'मेंटेनेंस ऑफ इंटर्नल सिक्योरिटी एक्ट' (मीसा) में नैसर्गिक कानून का यह सूत्र नहीं था। मीसा में जिला प्रशासन द्वारा व्यक्ति को उठाकर जेल भेज दिया जाता था। न्यायालय में उसका मुकदमा नहीं चलता था। ऐसा कानून दुनिया के किसी भी सभ्य देश में नहीं है। लेकिन भारत में पुलिस राज था। पुलिस अनावश्यक रूप से पीटती थी। हजारों सामाजिक कार्यकर्ताओं के अंग-भंग किए गए। संविधान संशोधनों की झड़ी लग गई। 53 अनुच्छेद एक साथ बदले गए। सातवीं अनुसूची बदली गई। प्रेस का मुँह कुचल दिया गया था। सब तरफ उत्पीड़न व सरकार प्रायोजित हिंसा का चीत्कार था।

मौलिक अधिकार भारत की संवैधानिक व्यवस्था के प्राण हैं। वे स्थापित सरकार के अत्याचारों से रक्षा करने के उपकरण हैं। राजव्यवस्था की निरंकुशता से संरक्षण देने के लिए मौलिक अधिकार अधिनियमित किए गए थे। श्रीमती इंदिरा गाँधी मौलिक अधिकारों में भी काट-छाँट कर रहीं थीं। संविधान (भाग 4) में उल्लिखित राज्य के नीति निदेशक तत्वों को क्रियान्वित करने के बहाने बनाई गई विधियों को न्यायायिक निर्वचन से अलग रख दिया गया था। सरकारी अत्याचारों से देश उबल रहा था। मुझे मीसा बंदी के रूप में उत्पीड़न का अनुभव है। उस समय लागू 'डिफेन्स ऑफ इंडिया रूल' (डी.आई.आर.) का भी अनुभव है। डी.आई.आर. के मुकदमे में मुझे कचहरी लाया गया था। कचहरी में भारत माता की जय बोलने वाले 10-12 कार्यकर्ताओं को पुलिस ने पीटा। सभी कार्यकर्ता खून से लथपथ थे। यह हृदय विदारक था। देश के अनेक हिस्सों में ऐसी ही घटनाएँ थीं। जनरोष बढ़ रहा था। जनता में उद्वेलन था। पुलिस राज बर्दाश्त के बाहर था। सत्ताधीशों को जनरोष की जानकारियाँ मिल रहीं थीं। आम चुनाव प्रस्तावित थे। जनता से डरी सरकार ने आम चुनाव की तारीखें बढ़ाईं। जो

चुनाव 1976 में प्रस्तावित थे वे 1977 में कराए गए। जनता ने कांग्रेस को स्वयं हराया। श्रीमती इंदिरा गाँधी स्वयं रायबरेली से चुनाव हार गईं। कांग्रेस साफ हो गई। यह सब तब हुआ जब संपूर्ण विपक्ष जेल में था। देश ने आपातकाल के अत्याचारों का बदला लिया। श्रीमती इंदिरा गाँधी के हारते ही आपातकाल हटा।

आज 48 वर्ष हो गए हैं। लेकिन आपातकाल की याद अभी भी सिहरन पैदा करती है। नई पीढ़ी आपातकाल के सरकारी अत्याचारों के बारे में कम जानती है। यह एक दु:स्वप्न था। जन उत्पीड़न था। निर्दोशों पर पुलिस के हमले थे। सारी लोकतंत्री संस्थाएँ तहस-नहस की गई थीं। स्वाधीनता संग्राम सेनानियों ने भारी संघर्ष के बाद आजादी पाई थी। यहाँ लोकतंत्र और संविधान की गरिमा महिमा में राष्ट्र का विकास हो रहा था। संविधान आधारित संसदीय लोकतंत्र फल-फूल रहा था। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इस खूबसूरत व्यवस्था को रौंदा। यद्यपि आपातकाल का स्मरण दुखदायी है लेकिन संविधान और लोकतंत्र की रक्षा के लिए इसका पुनर्स्मरण बहुत जरूरी है। ऐसी प्रवृत्ति के विरुद्ध सजगता और भी जरूरी है। सम्प्रति कांग्रेस जब कब लोकतंत्र के खात्मे की बात करती है। उसे आपातकाल का पुराना पाठ याद रखना चाहिए। सम्यक आत्मनिरीक्षण भी करना चाहिए और देश से माफी माँगनी चाहिए।

रामबहादुर राय

आपातकाल के कागजात

आपातकाल लगने के चार दिन बाद मैं गिरफ्तार हुआ था। मेरे बारे में कांग्रेसी सांसद ने पुलिस के कान भरे थे। उन दिनों पुलिस कांग्रेसी नेताओं के इशारे पर काम कर रही थी। 25 जून की रात में आपातकाल लगा, लेकिन इसकी घोषणा 26 जून की सुबह हुई थी। संवैधानिक घोषणा के लिए राष्ट्रपति और कैबिनेट की भी मंजूरी जरूरी थी। राष्ट्रपति की मंजूरी जबरदस्ती 25 जून की रात को ले ली गई थी। मंत्रिमंडल के लोगों को सुबह चार-पांच बजे जगाकर 6 बजे की बैठक में बुलाया गया।

प्रधानमंत्री का कार्यालय, जो आजकल इंदिरा गांधी संग्रहालय बना हुआ है, वहीं पर मंत्रिमंडल की बैठक बुलाई गई थी। उस कैबिनेट में इंदिरा गांधी ने सूचना दी कि देश में आपातकाल लगाना जरूरी है और हम इसकी घोषणा करने जा रहे हैं। किसी ने कोई सवाल नहीं उठाया। सिर्फ स्वर्ण सिंह, जो कि उस समय विदेश मंत्री थे, ने पूछा कि मैडम इसकी जरूरत क्या थी? खैर, कैबिनेट ने प्रस्ताव मंजूर कर दिया। सुबह आठ बजे अंततः इंदिरा गांधी ने रेडियो के माध्यम से देश में आपातकाल की घोषणा की। आपातकाल किन परिस्थितियों में लगाना पड़ा, यह झूठ भी बोला। आपातकाल क्यों लगाया गया, इसे आज की पीढ़ी को बताना जरूरी है। 12 जून, 1975 को इंदिरा गांधी के लिए तीन गंभीर घटनाएँ हुई। सुबह 6 बजे डीपी धर का देहांत हुआ था।

10 बजे इंदिरा गांधी की हाईकोर्ट से लोकसभा की सदस्यता समाप्त हो गयी और शाम को गुजरात चुनाव में जनता मोर्चा विजयी हो गया। जब इंदिरा गांधी का चुनाव अवैध घोषित हो गया तो उनके पास सिर्फ दो ही रास्ते थे। सर्वोच्च न्यायालय में जाएँ या लोकतांत्रिक मर्यादा का पालन करते हुए संसदीय समिति को रिपोर्ट करें और बताएँ कि मेरी सदस्यता समाप्त हो गयी है, लिहाजा आप अपना नेता चुन लीजिए। ये दोनों तरीके लोकतांत्रिक होते। इंदिरा गांधी को सर्वोच्च न्यायालय से भी राहत नहीं मिली। अगर उनको सर्वोच्च न्यायालय से राहत मिल जाती तो वह प्रधानमंत्री रह जातीं। परंतु राहत न मिलने के कारण उनके सामने खतरे की घंटी बजनी शुरू हो गयी थी।

अब उनके सामने दो रास्ते बचे, या तो कांग्रेस नया नेता ने या लोकतंत्र का गला घोंटकर तानाशाही करें। इसलिए उन्होंने 12 जून से ही सिद्धार्थ शंकर रे को पश्चिम बंगाल से बुला लिया था। शाह कमीशन में सिद्धार्थ शंकर रे ने जो बात कही है, वह प्रामाणिक बात है। उन्होंने कहा कि 'इंदिरा गांधी के कहने पर मैं राष्ट्रपति से मिलने जा रहा था। रास्ते में इंदिरा गांधी ने मुझसे पूछा, सिद्धार्थ ये बताओ कि कैबिनेट की बैठक बुलाए बिना आपातकाल कैसे लगाया जा सकता है?' इसका मतलब यह था कि इंदिरा गांधी के दिमाग में आपातकाल लगाने की बात घूम रही थी। सिद्धार्थ रे ने कहा कि 'मुझे कुछ समय दें,

देखकर बताता हूँ, इसमें क्या हो सकता है।'

सिद्धार्थ शंकर ने फार्मूला दिया कि 'आपातकाल के कागजात पर राष्ट्रपति से रात में हस्ताक्षर करवा लीजिए। सुबह कैबिनेट में पारित कर इसकी घोषणा कर सकते हैं।' यही फार्मूला इंदिरा ने अपनाया। इंदिरा गांधी ने सिर्फ अपनी प्रधानमंत्री की कुर्सी बचाने के लिए इस देश पर तानाशाही थोपी। देश के लिए ये बहुत बड़ी त्रासदी है। उस समय की परिस्थितियों को देखें तो किसी को इसकी उम्मीद नहीं थी। जयप्रकाश नारायण या विपक्ष के बड़े नेता सोच भी नहीं सकते थे कि इंदिरा इस हद तक जाएँगी। आज जो लोग कहते हैं कि लोकतंत्र की हत्या हो रही है तो वे लोग सिर्फ राजनीतिक जुमले की तरह इसे इस्तेमाल करते हैं। उन लोगों को मालूम नहीं है कि आपातकाल क्या होता है।

आपातकाल 21 महीने के लिए लगाया गया, जिसे तीन चरणों में बाँट सकते हैं। पहला, हर व्यक्ति सदमे चला गया, क्योंकि उस समय इस तरह का कोई लक्षण नहीं था। समाचार पत्र के कार्यालयों पर ताला जड़ा जाने लगा। बिजली काटी जाने लगी। मदरलैंड के संपादक के. आर. मलकानी को जेल में बंद कर दिया। 25 तारीख को रैली के बाद जेपी दिल्ली में ठहरे हुए थे। उसी रात को 12:30 बजे पुलिस पहुँचती है और गांधी फाउंडेशन के सचिव से कहती है कि हमें जेपी को गिरफ्तार करना है। तो सचिव कहते हैं कि वह देर से सोये हैं। उनके शरीर में कई तकलीफें भी हैं।

कम से कम सुबह तक इंतजार करिए। लेकिन पुलिस ने कहा कि नहीं, हमें तुरंत गिरफ्तार करना है। अंततः उन्हें जगाकर गिरफ्तार किया और थाने ले गए। उस समय के विधि सचिव ने चन्द्रशेखर जी को चुपके से सूचना करवायी कि जेपी गिरफ्तार हो गये हैं। चंद्रशेखर जी तुरंत पार्लियामेंट स्ट्रीट थाने गये। जब वह जेपी से मिलकर बाहर निकल रहे थे, तब वहाँ के डीएसपी ने कहा कि सर, आप गिरफ्तार हो चुके हैं। कुछ कपड़े वगैरह लेना है तो आपके घर साथ चलता हूँ। इसी तरह से बड़े-बड़े नेताओं की पूरे देशभर में गिरफ्तारियाँ हुईं। इंदिरा गांधी के संकेत पर जिस तरह से कांग्रेस की सरकारों ने पुलिस प्रशासन के साथ अंधेरगर्दी मचाई, उसे शब्दों में बयाँ करना मुश्किल है।

यह सिलसिला कई महीने तक चला। पाँच-छः महीने बाद दूसरा चरण आया, जिसमें लोगों ने हिम्मत बटोरी और लगने लगा कि हमको तानाशाही से लड़ना है। लोग सत्याग्रह करने के लिए सड़क पर उतर आए। यह संघर्ष साल भर तक चलता रहा। उस समय चंडीगढ़ में जेपी की हत्या करने तक की कोशिश की गयी। जेपी 24 दिन तक सदमे में थे। 23 जुलाई को जेपी अपनी पहली जेल डायरी लिखते हैं- मेरी जो दुनिया बिखर गयी। मुझे इंदिरा गांधी से ये आशा नहीं थी। यानी दूसरा चरण संघर्ष का रहा और तीसरा चरण सफलता का रहा। 18 जनवरी, 1977 को प्रयागराज में कुंभ चल रहा था। रेडियो से सूचना आई कि लोकसभा का चुनाव होने जा रहा है।

इंदिरा गांधी चाहती थीं कि आपातकाल में चुनाव कराएँगे और जनता से अपने पक्ष में मुहर लगवा लेंगे। हमारी तानाशाही को जनता का समर्थन मिल जाएगा। 3 फरवरी, 1977 का दिन देश का स्वर्णिम दिन है, जब बाबू जगजीवन राम के साथ दो और वरिष्ठ नेताओं ने कांग्रेस छोड़ दी। इस सूचना मात्र से पूरे देश में एक लहर फैल गयी। इसके बाद जनता ने मान लिया कि हमको लड़ना है। उस समय पन्द्रह मिनट की सूचना पर पचास हजार की जनसभा होती थी। भारत के लोग चाहे जैसे भी हों परंतु दिमाग से लोकतांत्रिक

होते हैं। इसका प्रमाण 1977 में भारत के लोगों ने दिया।

उस समय लोगों ने पैसा भी दिया और वोट भी दिया, अंतत: जनता पार्टी को सत्ता में बैठा दिया। इंदिरा गांधी को भी अपनी सीट पर पराजय का सामना करना पड़ा। इंदिरा गांधी लोकतांत्रिक नहीं थीं। इंदिरा गांधी और जवाहरलाल नेहरू तानाशाह थे, इसके सैकड़ों उदाहरण हैं। इंदिरा गांधी ने चुनाव की घोषणा इसलिए नहीं कि वह लोकतांत्रिक थीं, बल्कि हर तानाशाह अंदर से बहुत कमजोर होता है। इंदिरा अंदर से बहुत डरी हुई थीं। हकीकत में देखें तो इंदिरा गाधी के आने के बाद कांग्रेस पार्टी परिवार की पार्टी बनी।

जवाहरलाल नेहरू तक तो चुनाव होते रहे हैं। 1971 में इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद चुनाव नहीं हुआ।

लोकतांत्रिक होने के कुछ पैमाने होते हैं। नरेन्द्र मोदी को कोई भी तानाशाह नहीं कहेगा। आज देखें तो नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री और भाजपा का अध्यक्ष भी हो सकते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। भाजपा में चुना हुआ एक अध्यक्ष है। यही लोकतंत्र का पैमाना है। इंदिरा गांधी के जमाने में संवाद नहीं होता था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं थी। जबकि यही एक स्वस्थ लोकतंत्र की खूबी है।

जिन महात्मा गाँधी एवं अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने भारत को लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए बलिदान दिया, अध्याय को इंदिरा गांधी ने आगे बढ़ाने के बजाय इतिहास में एक काला अध्याय जोड़ा। आपातकाल लगाया। तानाशाही थोपने की कोशिश की और जनता ने उसे नकारा। इंदिरा गांधी और उनका पूरा खानदान दिमागी तौर पर तानाशाह है, इसमें कोई संशय नहीं है।

सम्पर्क : दिल्ली (भारत)

सुरेश बाबू मिश्रा

आपातकाल लोकतंत्र के इतिहास का काला अध्याय

पच्चीस जून 1975 का दिन आम दिनों की तरह ही था, मगर उस दिन की रात लोकतन्त्र के इतिहास की काली रात होगी उस समय इसका किसी को गुमान तक नहीं था। तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी द्वारा सत्ता पर काबिज रहने के लिए रात के बारह बजे पूरे देश में आपातकाल लगाने की घोषणा कर दी गई थी।

गुरुवार 26 जून 1975 की सुबह जब देशवासियों ने देखा कि अधिकांश दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित ही नहीं हुए हैं, तब कहीं जाकर उन्हें पता चला कि देश में आपातकाल लगा दिया गया है।

सरकार द्वारा सबको बताया गया कि प्रतिपक्ष अन्दरूनी उपद्रव की व्यूह रचना कर रहा है और इससे सरकारी कामकाज में गम्भीर संकट उत्पन्न होने वाला है इसलिए इस स्थिति से बचने के लिए देशहित में इमर्जेन्सी लगानी पड़ी है।

वर्तमान की नई पीढ़ी को लोकतन्त्र पर आई इस अमावस्या की शायद ही कोई जानकारी होगी मगर उस समय जो लोग किशोर, नौजवान या प्रौढ़ रहे होंगे उनके मन में इमर्जेन्सी की यादें आज भी सिहरन पैदा कर देती हैं। बहुत कठिन दौर था। पूरे देश में दमघोंटू माहौल था। कब किसे आकर पुलिस वाले गिरफ्तार कर लें किसी को कुछ पता नहीं था। अभिव्यक्ति की आजादी पर पाबन्दी लगी हुई थी।

पच्चीस जून की आधी रात इमरर्जेन्सी के नाम पर संवैधानिक अधिकारों का गला घोंट दिया गया था। संत-महन्त, राजनेता, समाजसेवी, छात्र नेता, पत्रकार सभी को मुल्जिम बनाकर जेलों में ठूँस दिया गया। इमरर्जेन्सी में किशोरों तक को नहीं बख्शा गया। उस समय के प्रतिपक्ष के नेता जेलों में ठूँस दिए गये। लोकनायक जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी बाजपेई, लालकृष्ण आडवाणी, मोरारजी देसाई, मुरली मनोहर जोशी, जार्ज फर्नांडीज, चौधरी चरण सिंह, राजनारायण सहित सभी प्रमुख नेताओं को जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया गया।

सरकार ने इन लोगों के विरुद्ध सरकार के खिलाफ साजिश रचने और सरकार को अस्थिर करने का आरोप लगाया। सभी को मीसा या डी.आई.आर. के अन्तर्गत बन्दी बनाया गया। इन धाराओं में उन्हें जमानत पर छूटने का भी अधिकार नहीं था।

12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा दिए गये फैसले के बाद देश में राजनैतिक घटना चक्र बहुत तेजी से घूमने लगा था। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने राजनारायण बनाम श्रीमती इन्दिरा गाँधी केस की सुनवाई करने के बाद अपने ऐतिहासिक फैसले में रायबरेली संसदीय क्षेत्र से श्रीमती इन्दिरा गाँधी का निर्वाचन भ्रष्ट साधनों के उपयोग के कारण रद्द कर दिया था। इस अभूतपूर्व फैसले से देश की राजनीति में

भूचाल आ गया था।

इसे एक सुखद संयोग ही कहा जाएगा कि इस साहसिक फैसले को सुनाने वाले इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज माननीय जगमोहन लाल सिन्हा का बरेली से गहरा नाता था। उन्होंने बरेली कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने सन् 1943 से 1955 तक बरेली में अधिवक्ता के रूप में कार्य किया। आज वे हमारे मध्य नहीं हैं मगर अपने इस ऐतिहासिक और निष्पक्ष फैसले के लिए वे हमेशा याद किए जायेंगे।

इस फैसले के बाद सभी को यह उम्मीद थी कि श्रीमती इन्दिरा गाँधी नैतिकता के आधार पर प्रधानमन्त्री पद से इस्तीफा दे देंगी, मगर अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण उन्होंने ऐसा नहीं किया। जिससे विपक्ष हमलावार हो गया। उनके इस्तीफे की माँग करते हुए पूरे विपक्ष ने देशभर में धरना, प्रदर्शन एवं रैलियाँ करना शुरू कर दीं। पूरे देश में इन्दिरा जी के खिलाफ आन्दोलन तेज होता गया। विपक्ष द्वारा चलाए जा रहे इस आन्दोलन की अगुआई लोकनायक जयप्रकाश नारायण कर रहे थे। आन्दोलन को मिल रहे अपार जनसमर्थन को देखकर सत्ता का सिंहासन डोलने लगा।

25 जून 1975 को दिल्ली के रामलीला मैदान में विपक्ष ने एक विशाल रैली का आयोजन किया। इस रैली में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा। लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने अपार जनसमूह को सम्बोधित करते हुए दिल को झकझोर देने वाला भाषण दिया।

इस सबसे बौखलाकर श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने अपनी कुर्सी बचाने की खातिर संविधान के अनुच्छेद 352 का दुरुपयोग करते हुए पूरे देश में आपातकाल लगाने की घोषणा कर दी। आपातकाल लगाने के लिए सारे आवश्यक प्रावधानों को दरकिनार करते हुए यह घोषणा की गई थी। प्रावधानों के तहत देश के आधे से अधिक प्रान्त जब माँग करें, नोट भेजें कि कानून व्यवस्था संकट में है और केन्द्रीय कैबिनेट सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित करे तब आपातकाल लगता है। इन सबका उल्लंघन करते हुए इन्दिरा गाँधी ने आपातकाल लगाने का प्रस्ताव मंजूरी हेतु राष्ट्रपति के पास भेजा। तत्कालीन राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने भी संवैधानिक औपचारिकताओं के निर्वाह न होने के बावजूद आपातकाल की घोषणा पर यंत्रवत् हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार चन्द घन्टों में ही सारी कार्यवाही निपटाकर देश पर आपातकाल थोप दिया गया।

पूरे देश में गिरफ्तारियों का दौर शुरू हो गया। कोई अपील नहीं, कोई न्यायिक व्यवस्था नहीं, न्यायालयों के सारे अधिकार समाप्त। लाखों लोगों की गिरफ्तारी की गई। प्रेस पर सेंसरशिप लगा दी गई। 250 से अधिक पत्रकार जेल में डाल दिए गये। निरपराध नागरिकों के साथ उत्पीड़न का ऐसा तांडव जनता ने कभी नहीं देखा था। देश के लाखों लोग जेल में सलाखों के पीछे कैद कर दिए गये। चारों तरफ भय और दहशत का माहौल था।

प्रेस की स्वतंत्रता का गला घोंट दिया गया। छापेखानों की बिजली काट दी गई। समाचार पत्रों, पत्रिकाओं में छापने वाली सामग्री का प्रकाशन से पूर्व परीक्षण होने लगा। यदि किसी अखबार की सामग्री में आपातकाल की नीतियों की आलोचना शामिल पाई जाती तो उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जाता था। आपातकाल लगाते समय श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने रेडियो पर भाषण देते हुए कहा था कि आपातकाल बहुत

कम समय के लिए होगा। इसलिए देश की जनता को यह उम्मीद थी कि दो-तीन महीने में आपातकाल समाप्त हो जायेगा और लोगों को जेलों से रिहा कर दिया जायेगा, मगर जब ऐसा नहीं हुआ तो लोगों के सब्र का बाँध टूटने लगा। देश में अन्दर ही अन्दर आपातकाल हटाने के लिए संघर्ष चलने लगा।

अक्टूबर 1975 से देश भर में लोकतंत्र की बहाली की माँग को लेकर सत्याग्रह करते हुए गिरफ्तारियाँ देने का दौर शुरू हो गया। ऐसी स्थिति में कठोर यातनाओं का खौफ भी लोकतंत्र सेनानियों के साहस को डिगा नहीं सका। यह जानते हुए कि उन्हें अपनी बात रखने का मौका दिए बिना अनन्तकाल के लिए जेलों में निरुद्ध कर दिया जायेगा, सड़कों पर सत्याग्रहियों के जत्थे के जत्थे निकल आए। लोग लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए अपने कैरियर की चिन्ता किए बिना गिरफ्तारियाँ देते रहे। इमर्जेन्सी के खिलाफ लोकतन्त्र की आवाज बुलन्द करते हुए पूरे देश में लगभग पैंतालीस हजार लोगों ने अपनी गिरफ्तारियाँ दीं। सत्याग्रहों के दौरान यह नारा बहुत लोकप्रिय हुआ- सच कहना अगर बगावत है। तो समझो हम भी बागी हैं।

लोकतंत्र की बहाली की लिए लड़ा गया यह लोक समर किसी मायने में स्वतंत्रता समर से कमतर नहीं रहा। अगर स्वतंत्रता समर में फिरंगियों को भगाने का जुनून था तो इस समर में लोकतंत्र को तानाशाही के चंगुल से बाहर निकालने का जज्बा था। जिस तरह स्वतंत्रता समर में सहस्त्रों स्वतंत्रता सेनानी एवं क्रान्तिकारियों ने आजादी के लिए अपनी आहुतियाँ दीं उसी तरह इस लोक समर में भी लोकतांत्रिक मूल्यों की बहाली के लिए सहस्त्रों लोकतन्त्र सेनानियों ने पुलिस की बर्बरता झेली और जेल की कालकोठरियों में कठोर यातना और कष्ट झेले।

आपातकाल के दौरान देश के एक लाख दस हजार आठ सौ छः लोग देश के विभिन्न कारागारों में निरुद्ध रहे। इनमें से चौंतीस हजार नौ सौ अठासी लोग मीसा के अन्तर्गत और पचहत्तर हजार आठ सौ अठारह लोग डी.आई.आर. के तहत जेलों में बन्द रहे थे।

हजारों लोगों को गिरफ्तारी के दौरान कठोर यातनाएँ झेलनी पड़ीं। हजारों लोगों के परिवारों का पुलिस की नादिरशाही का शिकार होना पड़ा। पुलिस के अत्याचार अपनी चरम सीमा पर थे। बरेली के नौजवान वीरेन्द्र अटल को गिरफ्तारी के दौरान पुलिस कोतवाली में उल्टा लटकाकर डन्डों से पीटा गया। उनके हाथों की अँगुलियों के नाखूनों को प्लास से खींचकर उखाड़ लिया गया। उस दर्द की कल्पना करके ही शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस समय वीरेन्द्र अटल बी.ए. के छात्र थे। मुरादाबाद के शिवचरन लाल प्रजापति पर पुलिस ने इतने डंडे बरसाए कि उनकी दाँई टाँग में दो जगह फ्रैक्चर हो गए थे। बदायूँ के लोकप्रिय चिकित्सक राजेन्द्र कुमार शर्मा को पुलिस ने इतना टार्चर किया कि उनकी आवाज हमेशा के लिए अवरुद्ध हो गई। उस समय के बदायूँ के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नगर प्रचारक स्वदेश जी को पुलिस ने इतनी यातनाएँ दीं कि वे कई साल तक मानसिक रूप से अस्वस्थ रहे और उन्हें इससे उबरने में लम्बा समय लगा। ऐसे हजारों लोगों को पुलिस की बर्बरता का शिकार होना पड़ा।

लोकतंत्र बहाली के इस समर में देश के 90 लोग पुलिस और जेल की यातनाओं को झेलते हुए शहीद हो गए। शहीद होने वालों में सबसे अधिक संख्या उत्तर प्रदेश के लोगों की थी। उत्तर प्रदेश के 30 लोग शहीद हुए। शहीद होने वालों में बरेली के चेतराम लोधी भी शामिल थे। आपातकाल के दौरान जेलों

और जेल से बाहर आकर जान गँवाने वाले लोगों के हर सूबे, हर भाषा और हर धर्म के लोग शामिल थे। इन सबका धर्म एक था और वह था अभिव्यक्ति की आजादी, लोकतंत्र की बहाली।

आपातकाल के 19 महीनों तक देश में एक अजीब सी खामोशी रही जिससे श्रीमती इन्दिरा गाँधी को लगा कि विपक्ष एक फिजूल का गुब्बारा था, जिसे अखबारों और आन्दोलनकारियों ने हवा भरकर फुला दिया है। इससे उत्साहित होकर उन्होंने 18 जनवरी 1977 को चुनाव की घोषणा कर दी।

21 जनवरी 1977 के बाद राजनैतिक घटना चक्र बहुत तेजी से घूमा। विपक्ष के चार दलों के विलय के बाद जनता पार्टी बनी। जनता पार्टी का असर एक आँधी की तरह प्रबल हो गया। इस चुनाव में जनता पार्टी को अभूतपूर्व विजय मिली। 22 मार्च 1977 में मोरारजी देसाई की अगुआई में देश में जनता पार्टी की सरकार बनी और लोकतंत्र की बहाली हुई।

स्वतंत्र भारत के इतिहास में आपातकाल के दौरान लोकतंत्र की बहाली के लिए लड़ा गया, यह पहला महासंग्राम था जिसमें सम्पूर्ण देश ने अपनी भूमिका निभाई थी, परन्तु यह कैसा दुर्भाग्य है कि देश की नई पीढ़ी को इसकी कोई जानकारी नहीं है। आज केन्द्र और देश की सरकारों की यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे वर्तमान पीढ़ी को लोकतन्त्र रक्षक सेनानियों के बलिदानों एवं संघर्ष से अवगत कराएँ।

आपातकालीन नौजवानों द्वारा दी गई शहादत और कुर्बानियों को छात्रों के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए तथा लोकतंत्र सेनानियों को स्वतंत्रता सेनानियों का दर्जा दिया जाये। जिससे हमारी पीढ़ी लोकतंत्र में आस्था और दृढ़ हो सके।

सम्पर्क : बरेली (उ.प्र.)
मो. 9411422735

डॉ. रामकिशोर उपाध्याय

आपातकाल : लोकतंत्र का काल

'गरीबी हटाओ' का नारा देने वाली इंदिरा जी ने गरीब देश से लोकतंत्र को ही हटा लिया! ऐसा क्यों हुआ? बात यहाँ से आरम्भ हुई कि, सन 1971 के लोकसभा चुनाव में इंदिरा गाँधी ने 'गरीबी हटाओ' का नारा दिया और जनता ने उन्हें भरपूर आशीर्वाद देकर देश का प्रधानमंत्री बना दिया। पर इंदिरा जी न तो गरीबी कम कर पाईं और न हीं गरीब! महँगाई, बेरोजगारी, और भ्रष्टाचार अपने चरम पर था। हाजी मस्तान आदि स्मगलर बड़े-बड़े राजनेताओं के साथ मिलकर देश के व्यापार और अर्थव्यवस्था को दीमक की भाँति चाट रहे थे। संसद में भले ही कांग्रेस का बहुमत था किन्तु पांडिचेरी लाइसेंस घोटाला (जिसे तुल मोहन काण्ड भी कहते हैं) और हरियाणा के रिवासा काण्ड आदि मुद्दों पर विपक्ष ने सरकार की हालत पतली कर रखी थी। इन परिस्थितियों में 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट में जस्टिस जगमोहन लाल सिन्हा ने जन प्रतिनिधित्व कानून के उल्लंघन पर इंदिरा गाँधी के चुनाव को रद्द करते हुए छह वर्ष तक चुनाव लड़ने पर रोक लगा दी। हाईकोर्ट ने दो आरोपों के सिद्ध हो जाने के आधार पर चुनाव रद्द किया, प्रथम था चुनाव में शासकीय कर्मचारी का उपयोग (यशपाल कपूर जो कि शासकीय कर्मचारी होने के पश्चात् भी इंदिरा जी के चुनाव एजेंट/ मैनेजर बने थे) और दूसरा था शासकीय धन और मशीनरी का उपयोग (उ.प्र. प्रशासन ने चुनाव में मंच, माइक आदि की व्यवस्था की थी)। विपक्ष के भारी दबाव के बाद भी इंदिरा जी पद छोड़ने को तैयार न थीं। पूरे देश में विरोध प्रदर्शन आरंभ हुए उधर जयप्रकाश नारायण ने सम्पूर्ण क्रांति का बिगुल फूँक दिया। चारों ओर से घिरी इंदिरा गाँधी ने अपनी गद्दी बचाने के लिए अश्वत्थामा की भाँति महाविनाशक अस्त्र का सहारा लिया और देश को आपातकाल की भट्टी में झोंक दिया। जो आज भी उनके और उनकी पार्टी के माथे पर कलंक माना जाता है।

आपातकाल (इंटरनल इमरजेंसी) : कहते हैं कि जब इंदिरा जी ने इमरजेंसी लगाने का भयानक निर्णय लिया तब सिद्धार्थ शंकर रे ने इस क्रूरता को कानूनी रूप देने की रूप रेखा बनाई। 25 जून रात को 11:45 पर भारत के राष्ट्रपति ने इमरजेंसी की घोषणा पर हस्ताक्षर किए और ठीक 15 मिनट बाद आधी रात को पूरे देश में आंतरिक इमरजेंसी लागू कर दी गई। जयप्रकाश नारायण, मोरारजी, अटल बिहारी बाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, चंद्रशेखर सहित सभी विपक्षी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। छब्बीस राजनीतिक संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सरकार के विरोध में बोलना, लिखना पूर्णत: प्रतिबंधित कर दिया गया प्रेस पर सेंसरशिप लागू कर दी गई। स्वतंत्र भारत में पहली बार आम नागरिकों से बोलने की स्वतंत्रता, सभा संगठन की स्वतंत्रता, देश में कहीं भी रहने और आने-जाने की स्वतंत्रता आदि मूल अधिकारों को स्थगति कर दिया गया जिनकी गारंटी संविधान की धारा -19 में दी गई थी। यही नहीं धारा उन्नीस को लागू करने के लिए न्यायालय में अपील करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया

गया। पुलिस जब जिसे चाहती पकड़ कर जेल में डाल देती। न अखबार में समाचार छपता न थाने में रिपोर्ट लिखी जाती। न न्यायालय में सुनवाई हो सकती थी। खुली जेलें भी खुले नरक से कम नहीं थीं।

संविधान के साथ छेड़-छाड़ : आपातकाल गद्दी बचाने का गैर कानूनी मार्ग था अत: इंदिरा जी ने आपातकाल को न्यायालय में चुनौती देने और भविष्य में उन्हें इसके लिए दण्डित किये जाने के सभी मार्ग बंद कर दिए। 22 जुलाई 1975 को राज्यसभा में और फिर लोकसभा में 39वाँ संविधान संशोधन बिल पास किया गया। इससे आपातकाल के लिए राष्ट्रपति द्वारा बताये गए कारणों को न्यायालय में चुनौती देने का मार्ग भी बंद कर दिया। बहुत ही शीघ्रता से पंद्रह राज्यों की विधान सभाओं ने भी इस पर मुहर लगा दी। इंदिरा जी को भय था कि यदि सुप्रीप कोर्ट ने उनके पक्ष में निर्णय नहीं दिया (जिसकी संभावना कम ही थी क्योंकि सुप्रीम कोर्ट में मुख्य न्यायाधीश जी वरिष्ठता क्रम तोड़ कर प्रमोट किये जा चुके थे) तो क्या होगा? सुप्रीम कोर्ट में भले ही मुख्य न्यायाधीश महोदय से सहानुभूति की अपेक्षा थी किन्तु निर्णय देने के लिए भी तो विधि सम्मत आधार की आवश्यकता होती है। तब नया संवैधानिक आधार तैयार करने के लिए या कहें कि स्वयं को सजा से बचाने और इलाहाबाद हाईकोर्ट का निर्णय बदलवाने के लिए। अगस्त माह में संविधान में चालीस वाँ संशोधन किया गया। इसके बाद भी कुर्सी जाने की थोड़ी बहुत आशंका थी तो उसे 9 अगस्त को संविधान में इकतालीसवाँ परिवर्तन/संशोधन कर पूरा कर दिया गया। 11 अगस्त 1975 को सुप्रीम कोर्ट की पाँच जजों की बैंच बैठी। इंदिरा जी की ओर से वकील अशोक सेन (पूर्व कानून मंत्री) ने इलाहाबाद हाईकोर्ट के निर्णय को पलटने का निवेदन किया। राजनारायण की ओर से वकील शांति भूषण ने पुराने नियमों के आधार पर ही निर्णय देने का आग्रह किया। अंतत: इंदिरा जी पर छ: वर्ष का प्रतिबन्ध समाप्त हो गया।

कुलदीप नैयर ने अपनी पुस्तक फैसला में लिखा है कि शिक्षा कला और साहित्य से जुड़े 300 लोगों ने इंदिरा जी को पत्र लिख कर कहा कि 'मौजूदा संसद को संविधान में बुनियादी परिवर्तन करने का न तो राजनीतिक अधिकार है और न ही नैतिक अधिकार।' इंदिरा जी ने किसी की एक न सुनी और 2 नवम्बर को 42वाँ संशोधन बिल पास कर संविधान की आत्मा को कुचलने का कार्य किया। संविधान परिवर्तनों के बारे में नैयर जी ने लिखा है 'इसमें संसद और राज्यों की विधान सभाओं की अवधि पाँच साल से बढ़ाकर छ: साल कर दी गई। राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल की सलाह मानने पर विवश कर दिया गया। यह भी तय कर दिया कि संविधान के किसी भी संशोधन के खिलाफ किसी भी अदालत में कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। संविधान की प्रस्तावना को बदल दिया गया। सार्वभौम लोकतान्त्रिक गणराज्य को बदलकर सार्वभौम समाजवादी लोकतान्त्रिक गणराज्य कर दिया गया। राष्ट्र की एकता की जगह राष्ट्र की एकता और अखंडता कर दिया गया।' विडंबना की बात यह है कि जो लोग आज लोकतंत्र और संविधान को बचाने की दुहाई देते फिरते हैं उन्होंने अर्थात् भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने लोकतंत्र की निर्मम हत्या और संविधान की आत्मा को कुचलने वाले आपातकाल में कांग्रेस का भरपूर साथ दिया और रूस ने इसे जनतंत्र के हित की कार्यवाही कहा और हाँ जामिया मिलिया इस्लामिया ने भी इसका समर्थन किया क्योंकि इसमें जनसंघ और दक्षिण पंथियों पर भी अत्याचार हो रहे थे।

सम्पर्क : ग्वालियर (म.प्र.)
मो. 9425456639

संदीप अवस्थी

हम आपातकाल के समर्थन में हैं

जी हाँ, ऐसे लोग, फिल्म, बुद्धिजीवी,पत्रकार, साहित्यकार से लेकर अफसरशाह तक बहुत थे जो यह कहते थे कि हम आपातकाल के समर्थन में हैं। और आज वह रंगे सियार की तरह उधर से इधर आने की कोशिश में हैं और कुछ तो आ भी गए। एक शर्मनाक, स्वार्थपरक राजनीति की पराकाष्ठा का वह काला दौर, जिसकी घोर निन्दा की जानी चाहिए? यह उसके समर्थन में थे। उनके बारे में आगे जानेगी भावी पीढ़ी। क्योंकि उन्हीं के चमचे आदि और वह भी आज सोशल साइट्स पर अधिक ही सक्रिय हैं। और युवाओं को गुमराह कर रहे, देश की संस्कृति और प्रकृति के खिलाफ। यह वह दौर था जब राजनैतिक उठापटक चरम पर थी। कांग्रेस के दो टुकड़े हो चुके थे और वंशवाद को आगे बढ़ाने के लिए इंदिरा गाँधी थीं तो वहीं कुछ पुराने कांग्रेसी, गाँधी युगीन सोच रखते थे कि जो अच्छा, बेहतर जननेता हो वही आगे आए, के साथ अलग-थलग पड़े थे। इस सबके बीच लोहिया और उनकी जनवादी सोच से उनके अपार समर्थक खासकर युवा लोग लालू, नितीश से लेकर मुलायम सिंह, तो जॉर्ज फर्नांडिस से लेकर मधु दंडवते तक उनके साथ थे।

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति के आह्वान पर पटना के गाँधी चौक पर हुई ऐतिहासिक रैली कौन भूल सकता है। बीजेपी तब जनसंघ थी और अपने अस्तित्व को बना रही थी, वह भी अपने कार्यकर्ताओं और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के साथ कांग्रेस के कुशासन के विरोध में थी। तो सब तरफ से ऐसे हालात थे और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी और उनके सलाहकार विद्याचरण शुक्ल, श्यामचरण शुक्ल, मोतीलाल वोरा, केसरी, कामराज, माधवराव, अर्जुन सिंह, शरद पंवार, अंबिका सोनी और संजय गाँधी आदि ने न जाने क्या देखा, क्या सोचा और सबने मिलकर आपातकाल की सोच को बढ़ाया। विपक्ष था, लोकसभा राज्यसभा थी परंतु किसी को भी विश्वास में नहीं लिया गया। तानाशाही तरीके से पच्चीस जून उन्नीस सौ पछत्तर को आपातकाल लगा दिया गया। जो इक्कीस मार्च उन्नीस सौ सतत्तर (25 जून 75, 21मार्च 1977) तक अनवरत जारी रहा। आजादी के मात्र अट्ठाइस वर्षों बाद ही देश के इतिहास में यह काला अध्याय लिख दिया गया। कांग्रेस पार्टी और उसके समर्थक वाम दलों के द्वारा, जो मार्क्स, लेनिन के समर्थक होते हुए भी आपातकाल के समर्थन में थे। कब, क्यों होता है आपातकाल?

संविधान में प्रावधान है कि जब देश पर आक्रमण हो, देश में दंगे फसाद हों, प्राकृतिक आपदा आदि हो तब आपातकाल लगाया जा सकता है। लेकिन यह कहीं नहीं था जब देश के प्रधानमंत्री, उसके पुत्र और मंत्रियों की तानाशाही से त्रस्त लोग एकजुट हो आवाज उठाएँ तो अपने विरोध की बात सुनने की

जगह आपातकाल लगा दो। पर यह हुआ और वह भी अधिकतम छः महीने की जगह लगभग दो वर्ष तक। और ऐसा आपातकाल जिसमें आप कल्पना करें कि प्रेस, टीवी, फिल्म से लेकर सभी अभिव्यक्ति के माध्यमों पर बैन, सेंसर। चिट्ठी-पत्री, डाक, अखबार बिना सरकारी अनुमति के कुछ भी नहीं लिख सकता। और जो लिखा सरकार के खिलाफ तो वहीं आप पर मुकदमा और जेल। सारे विरोधी नेता अटल बिहारी वाजपेयी, आडवाणी से लेकर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, जॉर्ज फर्नांडिस जिन्होंने उन्नीस सौ चौहत्तर की रेल स्ट्राइक का सफल नेतृत्व किया था, सभी जेल में भर दिए गए। ज्यादातर अखबार कागज कोटा (तब न्यूज प्रिंट सरकारी अनुमति से मिलता था), सरकारी विज्ञापनों के मोहताज से चुप्पी साधे रहे। इंडियन एक्सप्रेस के रामनाथ गोयनका, माथुर मध्य प्रदेश के, आदि ने विरोध किया और खुलकर प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के इस काले कानून का विरोध किया। पूरा फ्रंट पेज अगले ही दिन खाली रखकर देश भर में विरोध किया इंडियन एक्सप्रेस ग्रुप ने। हम समर्थन में हैं।

किस तरह एक बड़ा बुद्धिजीवी, प्रैस और फिल्म वालों का तबका 'इंदिरा जी' के समर्थन में आकर खड़ा हो गया। बाकायदा लिखित बयान जारी किया वामपंथी लेखक संगठनों, फिल्मकारों ने कि हम इस आपातकाल का स्वागत करते हैं। लंबी फेहरिस्त है, गिनें और याद रखें, सारे प्रगतिशील संगठनों के पदाधिकारी लेखक धर्मवीर भारती से कमलेश्वर, राही मासूम रजा, नामवर सिंह, कृष्णा सोबती, शिवमंगल सिंह सुमन, श्रीकांत वर्मा, अजेय, जैनेंद्र, परसाई, राजकपूर से लेकर दिलीप कुमार, तमाम उर्दू मंच, लेखक, आज के अग्रवाल से लेकर तमाम जनवादी इसके पक्ष में खड़े थे। अफसरशाही, कांग्रेस कैडर तो था ही साथ। इन पौने दो सालों में देश में क्या हुआ? यह इस बात से समझा जा सकता है कि सभी इंदिरा विरोधी जेल में बंद। लोहिया, जेपी, जॉर्ज, अटल बिहारी वाजपेयी आदि को जेल में प्रताड़ित किया गया। लोहिया, राजनारायण के साथ तो मारपीट भी हुई। इन्हीं ने इंदिरा गाँधी की, जीत को हाई कोर्ट में चुनौती दी थी की यह जीत गड़बड़ी करके हुई है। और कोर्ट के ऑर्डर से जाँच हुई और सिटिंग प्रधानमंत्री, जो इसी फर्जी चुनावी जीत से बनी थी, वह राजनारायण से चुनाव हार गईं।

प्रधानमंत्री ने ही सरकार गठन किया और सरकार चलाई पर वही अवैध निकला और चुनाव हारी हुई थीं। तो कायदे से इस्तीफा देकर अपनी गलती माननी चाहिए थी। न्यायपालिका में कांग्रेस की आस्था कभी नहीं रही और उसी के परिणामस्वरूप यह आपातकाल लगा। हजारों आम नागरिक जेल में बन्द। सब तरफ मनमानी और गुंडागर्दी, लूटपाट । संजय गाँधी और उसकी टीम निरंकुश। देवानंद, मनोजकुमार फिल्म वालों का एक शिष्ट मंडल लेकर, जिसमें सारे बड़े स्टार शामिल नहीं थे, विद्याचरण शुक्ल, मंत्री सूचना और प्रसारण से मिलकर विरोध दर्ज कराए। परंतु उल्टे यही बैन हो गए। किशोर कुमार को संजय गाँधी ने यूथ कांग्रेस के सम्मेलन में गाने से इंकार करने पर बैन कर दिया। कई वर्षों तक किशोर के गाने आकाशवाणी पर नहीं आए। परंतु विडंबना कहें या अवसरवाद का उद्धरण कि सारे प्रगतिशील, जिनके अनुयायी आज सोशल साइट्स पर देश के खिलाफ युवाओं को भड़काते रहते हैं, वह सभी आपातकाल का जोरशोर से समर्थन और इंदिरा गाँधी की चापलूसी कर रहे थे। जिनमें से कइयों को आगे राज्यसभा, दूरदर्शन के महानिदेशक आदि पदों से नवाजा गया। पर कुछ रीढ़ की हड्डी वाले भी थे जो विरोध में खुलकर सामने रहे जिनमें राजेंद्र यादव, मन्नू, भीमसेन, विजेंद्र, दिनकर, अश्क और आरएसएस, जनसंघ

के सभी कार्यकर्ता। आरएसएस की भूमिका वास्तव में यह ऐसा काला अध्याय रहा भारतीय लोकतंत्र और कांग्रेस का कि इसकी जितनी निंदा की जाए कम है और आज जब सभी तथ्य और रिपोर्ट पब्लिक डोमेन में हैं तो यह स्पष्ट है कि सामाजिक, गैर राजनैतिक संगठन आरएसएस ने अपना पूर्ण योगदान इस देश में लोकतंत्र की रक्षा हेतु पूरे देश में दिया। युवा पीढ़ी ही नहीं असंख्य लेखकों और संघ ने बिना किसी स्वार्थ के देश भर में गिरफ्तारियाँ दीं और सम्पूर्ण क्रांति के अग्रदूत जयप्रकाश जी ने अपनी गिरफ्तारी के बाद संघ कार्यकर्ता नानाजी देशमुख को नेतृत्व का दायित्व दिया। उनके बाद सुंदर सिंह भंडारी ने लोकतंत्र की बहाली और तत्कालीन कांग्रेस सरकार के खिलाफ नेतृत्व सँभाला। समझ सकते हैं कि तानाशाह इंदिरा गाँधी, उनके पुत्र संजय गाँधी और टीम के खिलाफ लोहा लेना कितना मुश्किल रहा होगा। पर देश और उसकी परंपरा को बचाने के लिए संघ के स्वयंसेवक सदैव जान न्यौछावर करते हैं। यही वजह है कि कांग्रेस आज तक आरएसएस से मिली वह कड़ी चुनौती और हार नहीं भूली है और हर मौके पर झूठ फैलाकर संघ को बदनाम करने की असफल कोशिश करती है। उसी वक्त सभी प्रगतिशील लेखक, विचारक और संगठन आपातकाल का बेशर्मी से समर्थन ही नही बल्कि अपने लिए कई सुविधाएँ भी ले रहे थे। आरएसएस के तत्कालीन सर संघचालक बाला साहेब देवरस को नागपुर स्टेशन से गिरफ्तार किया गया तब सह कार्यवाहक माधवराव मुले ने मोर्चा लिया।

अच्युत पटवर्धन लिखते हैं कि, 'देश भर में लगभग सवा लाख लोग आंदोलन से जुड़े उनमें से एक लाख संघ के स्वयंसेवक थे। मीसा के तहत चालीस हजार गिरफ्तार हुए उनमें से तीस हजार संघ के लोग थे। सौ से अधिक स्वयंसेवक की जानें गईं। शिवसेना के बाला साहेब ठाकरे भी विरोध कर रहे थे हालाँकि तब यह बहुत ही छोटा संगठन था। रज्जू भैया, कुशाभाऊ ठाकरे, मोरारजी भाई, चरणसिंह, भैरों सिंह शेखावत, सुंदरलाल पटवा आदि अनेक नेता रहे जिन्होंने पुरजोर विरोध किया। यह काला अध्याय जिसने न्यायपालिका के अधिकार भी फ्रीज कर दिए थे, आखिरकार इंदिरा गाँधी की हठधर्मिता और जिद के साथ इक्कीस मार्च उन्नीस सौ सत्तर को खत्म हुआ और चुनाव की घोषणा हुई। जिसमें देश की जनता ने अपना मत दिया और आजादी के बाद पहली बार जनसंघ और जनता पार्टी की सरकार बनी। लोकतंत्र की जीत हुई और काला अध्याय हमेशा के लिए इतिहास में दर्ज होकर बंद हुआ। उसे भावी पीढ़ी और बाकी तथ्यों से बेखबर लोगों को बताने का उद्देश्य यह है कि हम यह याद रखें की लोकतंत्र और राष्ट्र सर्वोपरि है। राष्ट्र है तो हम, परिवार, नौकरी सब हैं। राष्ट्र और स्वाभिमान नहीं तो कुछ भी नहीं। साथ ही लगातार सोशल साइट्स पर जहर उगल रहे वाम और अन्य लोग जो देश की सभ्यता, संस्कृति का मजाक उड़ा रहे, मिथ्या प्रचार कर रहे, उन्हीं लोगों के वंशज हैं जो आपातकाल के पक्ष में खड़े थे। तो इनसे सावधान रहने की जरूरत तो है ही साथ ही निर्भीकता से सवाल भी पूछना है कि क्या आप आपातकाल के समर्थन में हो?

सम्पर्क : राजस्थान
मो 7737407061

मोनिका जायसवाल

डायरियों में अभिव्यक्त आपातकालीन यथार्थ-चित्रण

संविधान एक ऐसे भारत का निर्माण करता है जहाँ प्रेम, सौहार्द और सामंजस्य स्थापित है। लोकतंत्र की अवधारणा राष्ट्र को प्रगतिशील बनाती है, परन्तु आपातकाल ने लोकतांत्रिक देश में जनतंत्र की हत्या कर दी। न्यायालय की अवधारणा से खिलाफ और तानाशाही का आधिपत्य हुआ। इस परिस्थिति के विपरीत साहित्य के माध्यम से इसका घोर विरोध हुआ। साहित्य मनोदशाओं तथा सामाजिक अभिव्यंजना की अभिव्यक्ति है। साहित्य से समाज तथा सामाजिक विषमताओं को संज्ञान में लाया जाता है। साहित्य में उद्देश्यपूर्ण आधुनिक हिन्दी गद्य का विकास हुआ जिसका प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना गया है। इस युग में नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि का विकास होने लगा। सामाजिक अभिव्यंजना का घोष इन विधाओं के माध्यम से होने लगा। वहीं दूसरी तरफ कुछ कथेतर गद्य विधाओं का जन्म हुआ जिनमें आत्मकथा, यात्रा-साहित्य, जीवनी, संस्मरण डायरी आदि है। डायरी एक विशेष विधा के रूप में विकसित हुई। यह व्यक्ति का आत्मसाक्षात्कार है। डायरी पूर्णत: व्यक्तिगत विधा है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को आत्मसात करके जीवंत होता है। यहाँ व्यक्ति के बाह्य तथा आंतरिक मन:स्थितियों का पूर्ण वर्णन बिना किसी दिखावे या कल्पना के होता है। डायरी स्वघटित घटनाओं का विवरण है।

हिन्दी साहित्य में डायरी का विकास 1920 ई. के बाद प्राप्त होता है। सन् 1946 ई. में श्रीराम शर्मा कृत 'सेवाग्राम की डायरी' से डायरी विधा का प्रवर्तन हुआ। यह स्वतन्त्र तथा नियमित रूप से लिखी जाने वाली गद्य विधा है। यह विधा प्रत्येक रूपों में सशक्त होने का सामर्थ्य रखती है। हिन्दी गद्य साहित्य में आपातकालीन व्यवस्था से इस युग की डायरियाँ विशेष महत्व रखती हैं। इस दृष्टिकोण से आपातकाल का प्रश्न और भी गम्भीर हो जाता है। आपातकाल के दौरान प्रत्येक साहित्यिक विधाओं का आर्विभाव हुआ परन्तु जब प्रश्न डायरियों का हो तो यह मन को जिज्ञासा और व्याकुलता से भर देता है। ''27 जून 1975 सूचना पर नियंत्रण लग गया। पर आई.बी. की रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि स्थिति सामान्य नहीं है जितना सरकार चिल्ला-चिल्ला कर कह रही है।''

1971 ई. में पाकिस्तान की आक्रामक गतिविधियों तथा गरीबी-हटाओ नारे से श्रीमती गाँधी की लोकप्रियता बढ़ चुकी थी और आगामी चुनाव में वह भारी बहुमत से विजयी घोषित हुईं। इस चुनाव के विरोध में श्रीमती गाँधी के खिलाफ राजनारायण द्वारा हाई कोर्ट में एक याचिका दायर की गई। अत: 12 जून 1975 को इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश श्री जगमोहन लाल सिन्हा ने श्रीमती गाँधी के चुनाव को अवैध घोषित कर दिया। इसी के बाद 26 जून 1975 ई. में श्रीमती गाँधी जो कांग्रेस सरकार का नेतृत्व कर रही थी उन्होंने रेडियो पर आपातकाल की घोषणा प्रसारित की। अत: प्रसारण के उपरांत तत्काल प्रभाव

से उन सभी को बंदी बना लिया गया जिनसे इन्दिरा गाँधी को भय था। मूल अधिकार निरस्त हो चुके थे। बिना किसी वैध वारंट के लोगों को बंदी बनाया गया। आपातकाल तानाशाही का प्रतीक बन गया और लोकतंत्र की हत्या हो गई। जे.पी. के शब्दों में ''25 जून 1975 तक भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र था। 26 जून 1975 से वह एक अधिनायक लोकतंत्र में परिवर्तित कर दिया गया है और लोकशाही के स्थान पर एक व्यक्ति की तानाशाही कायम हो गई।''

डायरियों के माध्यम से आपातकाल जैसे काले अध्याय का यथार्थ-चित्रण देखने को मिला। आपातकाल के दौरान व्यक्ति की मनोदशा, जेल परिस्थितियाँ, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, सामाजिक द्वेष प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से डायरियों में देखने को मिलता है। डायरी जेल में रह रहे बंदियों की व्यथा का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। आपातकाल के दौरान रचनाकारों की डायरियों का प्रत्येक पृष्ठ अंधकार युक्त मनोवैज्ञानिक रहस्य को उजागर करने में सहायक होगी। चंडीगढ़ की जेल में जे.पी. द्वारा लिखी डायरी 'जेल में' उनके अकेलेपन की प्रत्यक्षदर्शी है। सत्ता की मनमर्जी के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले लोकनेता जिन्हें चौहत्तर वर्ष की आयु में बंदी बनाकर नजरबंद कर दिया गया। तत्कालीन शासन की चौकसी उस अधेड़ उम्र के व्यक्ति से पूरी तरह भयभीत हो चुकी थी। चंडीगढ़ के मेडिकल भवन में अपने गृहराज्य से दूर जे.पी. अकेलापन अनुभव कर रहे थे और जेल का अकेलापन उनके बिगड़ते स्वास्थ्य का प्रमाण है।

भुखमरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार की नीतियों के विरोध में पूरे भारत राष्ट्र में फैलने वाला आन्दोलन स्वयं जे.पी. को चिंतित व व्यथित कर रहा था कि ''इन्दिरा की सरकार में बैठे वे चाटुकार मंत्री इस घुटन भरी घोषणा से खुश हैं! इसके कितने भयानक परिणाम हो सकते हैं।'' आपातकाल के दौरान तानाशाही बड़ गई कानूनी प्रक्रियायें परिवर्तित होने लगी इसका एक उदाहरण मीसा का कानून है। मीसा के तहत की गई गिरफ्तारियों में एक वर्ष सजा के प्रावधान को बढ़ाकर अनिश्चित काल कर दिया गया। शांता कुमार डायरी में लिखते हैं- ''मैं यह अनुभव करता हूँ कि भारत की आजादी की दूसरी लड़ाई में न जाने कौन कहाँ कितना काम कर रहा होगा।'' इन सभी घटनाओं या आन्दोलनों की चर्चा जयप्रकाश नारायण ने अपनी जेल डायरी में की है।

मीसा कानून के तहत बंदी बनाये गये उन सभी व्यक्तियों के लिए कड़े नियम-कानून बनाये गये। पहला प्रसंग जे.पी. की डायरी में मिलता है जो पैरोल पर रिहा होने के लिए चंडीगढ़ के डिप्टी कमिश्नर को बार-बार पत्र भेजते हैं ताकि वह ये पत्र प्रधानमंत्री तक पहुँचा दें। दूसरा प्रसंग शांताकुमार की डायरी से प्राप्त हुआ। ''जेल अधीक्षक ने कहा कि हम सरकार की आज्ञा के बिना कोई पुस्तक नहीं लिख सकते। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि यदि मैं कोई पुस्तक लिखना चाहता हूँ तो मुझे सरकार को एक प्रार्थना-पत्र देना होगा। उसमें अपनी पुस्तक के विषय का सारा विवरण देना होगा।'' मीसा बंदियों को एक माह में सिर्फ चार पत्र लिखने की अनुमति थी जिसका फार्म उन्हें जेल अधीक्षक की तरफ से प्राप्त होता था। और खर्च के लिए मीसा बंदी एक माह में चालीस रुपये से अधिक नहीं खर्च कर सकता था।

आपातकाल के दौरान कुछ विचारकों और राजनेताओं ने जेल में रहकर उस दशा और दिशा का वर्णन किया जिससे वह स्वयं पीड़ित थे। वे जनता के भागीदार नहीं बन सकते थे और न ही जेल की इक्कीस महीनों की यातनाओं से छुटकारा ले सकते थे। ''26 जून 1976 जेल जिन्दगी का एक साल पूरा हो गया है।

कितनी तेजी से समय बीतता है। देखते-देखते साल समाप्त हो गया। इस बीच कितना समय बदल गया। आज हमारे दोस्त हमारे जेल में रखे जाने का पर्व मना रहे हैं। दीप जला रहे हैं, खुशियों से झूम रहे हैं।'' जेल में भ्रष्टाचार और अश्लीलता ने चरम पार कर लिया है। शराब और व्यभिचार ने पैर पसार लिया है।

बिहार और पूरे भारत में फैली अराजकता, भ्रष्टाचार, शिक्षा, बेरोजगारी आदि ऐसे विभिन्न मुद्दें जयप्रकाश नारायण की डायरी में संघर्ष से उपजे और स्पष्ट हुए। इस विषय में चन्द्रशेखर के द्वारा पूछे गये प्रश्न पर जयप्रकाश का उत्तर भी डायरी में स्पष्ट है। ''चन्द्रशेखर को मैं उत्तर दिया करता था कि संघर्ष का उद्देश्य न केवल बिहार में सरकार को बदलना है, बल्कि इससे बहुत बड़ा है। यह संघर्ष लगातार जारी रहेगा, जिसके कारण विरोधी सरकार के लगातार सचेत रहने की शक्तिशाली गारंटी होगी।''

आपातकालीन जेल बंदियों की स्थिति कालेपानी की सजा से भी दयनीय थी। तानाशाही अपनी पराकाष्ठा पर थी। चाटुकारिता में लीन कांग्रेसी आम नागरिकों के बीच इसे भारत की प्रगति और उपलब्धि का सही मार्ग बता रहे थे। चन्द्रशेखर लिखते हैं- ''कई दिनों से आपातस्थितियों का प्रचार हो रहा था। सरकारी नेता इसकी घोषणा करते फूले नहीं समाते- हर क्षेत्र में शांति है विकास हो रहा है, राष्ट्र महान बन गया है, औद्योगिक प्रगति आगे आने वाले दिनों में और अधिक गति से होने वाली है, उत्पादन बढ़ा है, अनुशासन पूरी तरह लागू है, सब कुछ होते हुये भी इस आपातकालीन स्थिति को बनाए रखना है ताकि इन उपलब्धियों को स्थायी बनाया जा सके।''

प्रकाश की किरण अँधेरे की गम्भीरता को अपने तेज से नष्ट कर देती है। जेल की यातना और प्रताड़ना से ग्रसित बंदी अंतस में झाँकने पर विवश होता है और बार-बार उसका मन व्यथित व व्याकुल होता है। परन्तु ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में मन के मनोभावों को सँभालकर भविष्य की आशा जाग्रत करने में सक्षम होता है। अन्तर्मन से निकली आशा अकुलाहट से भरी व्यथा को शांत करती है। ''जैसे सबसे अलग-थलग पड़े हों, जिनके बीच हो उनसे कुछ बहुत लगाव नहीं और जिनसे रोज का साथ था उनसे पूरी तरह अलगाव, न केवल मिलना नामुमकिन बल्कि खतों, किताब की भी गुंजाइश नहीं। यही बात कभी-कभी बहुत खलती है, और जिन्दगी के इन लमहों में जिनमें ये ख्यालात दिल पर हावी होते हैं, मैं अपने को बहुत कमजोर पाता हूँ।''

ब्रिटिश सत्ता का आधिपत्य 1947 ई. तक बरकरार रहा। इस सत्ता के विरोध में विभिन्न साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से अपना योगदान दिया। इसमें पत्रकारिता के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता। इस मुखरित स्वर को दबाने के लिए ब्रिटिश सत्ता ने अथक प्रयास किया, परन्तु अंत में असफलता मिली और आजादी का परचम लहराया। आजादी के कुछ वर्षों बाद देश में एक ऐसी परिस्थिति का जन्म हुआ, जो लोकतंत्र की हत्या व मूल-अधिकारों का हनन कर सके। सत्तारूढ़ पार्टी की तानाशाही और आपातकाल लगा। इस स्थिति से डायरी विधा को पुरजोर समर्थन मिला और लेखकों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों ने सम्पूर्ण यातना-प्रताड़ना को डायरी के पन्नों पर हू-ब-हू उतारा। प्रत्येक घटनाओं को शैली का रूप प्रदान किया गया। डायरी ने आपातकाल के विभिन्न पहलुओं को बड़ी सजगता व गम्भीरता से स्थापित किया है।

सम्पर्क : प्रतापगढ़ (उ.प्र.)
मो. 7530903276

धनंजय वर्मा

चंद यादें आपातकाल की यानी 'देश को जुकाम हो गया'

26 फरवरी 1976 का वह दिन आज भी भुलाए नहीं भूलता। सरकारी नौकरी में यूँ तो हज़ार बन्दिशें ऐसी होती हैं कि हर बन्दिश पे दम निकले लेकिन जिस मजबूर परेशानी में वह दिन बीता, उसकी महज याद से आज भी शर्मसार हो जाता हूँ। बकौल हसरत मोहानी–

नाकामियों पे अपनी हँसी आ गई आज

सो कितने शर्मसार हुए बेकसी से हम...

उस दिन की बेकसी की तवालत से पहले उसका पसमंजर...

धर्मवीर भारती के 3 मई 1975 के पत्र के पुनश्च में एक ''त्रिचूर की तैयारी करें। 13–14 सितम्बर को तिथियाँ निश्चित हुई हैं।'' ये तिथियाँ थीं समकालीन लेखक सम्मेलन के दूसरे अधिवेशन की, जो त्रिचूर (केरल) में सम्पन्न हुआ था। मेरी फाइल में मलयालम के एक दैनिक की कतरन के मुताबिक इस अधिवेशन की तिथियाँ हैं – 20–21 सितम्बर, जिसमें फिर भारती जी नहीं आये। मलयालम के प्रख्यात आलोचक और केरल विश्वविद्यालय के कुलपति जॉसेफ मुन्डेशेरी की अध्यक्षता में मैंने उस अधिवेशन में 'क्रान्ति और साहित्य' पर अपना आलेख प्रस्तुत किया था। अधिवेशन के बाद वह आलेख मैंने 'धर्मयुग' में प्रकाशन के लिए भेज दिया था। भारती जी के 2 अक्टूबर 1975 के संक्षिप्त पत्र के साथ आलेख वापस आ गया ''लेख पसन्द आया। लेकिन इस समय सवाल सम्पादक की पसन्द पर ख़त्म नहीं होता। प्रासंगिकता तथा क्रान्तिकारी साहित्य चिन्ता पर लेख जो स्वीकृत थे, सेन्सर ने नामंजूर कर दिए हैं, अत: अब जब इन सवालों पर खुली बहस की सुविधा होगी तभी इन सवालों को उठा सकेंगे। दीवाली अंक से फुरसत पाकर कुछ विषयों पर बात करेंगे और आपको लिखेंगे।'' यानी सेन्सर चालू था। 25 जून 1975 से शुरू आपात्काल को पूरे आठ महीने हो चुके थे। भारतीय जी की मशहूर कविता 'मुनादी' माहौल में गूँज रही थी।

मैं सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या महाविद्यालय टी.टी. नगर, भोपाल में सहायक प्राध्यापक और तथाकथित विभाग अध्यक्ष था। शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नरसिंहपुर में लगातार आठ बरसों तक रहने के बाद शिक्षा विभाग में उपसचिव श्री अशोक वाजपेयी के विशेष प्रयत्नों से यहाँ मेरा तबादला हुआ था। तब सरोजिनी नायडू शासकीय कन्या महाविद्यालय (जिसे नूतन कॉलेज भी कहा जाता है) 1250 टी.टी. नगर (अब तुलसी नगर) के सेकण्ड बस स्टॉप के निकट शासकीय माध्यमिक कन्या विद्यालय के भवन में लगता था और मैं उसी के पास एफ – 89/23 में रहता था।

26 फरवरी के पूर्वाह्न में महाविद्यालय पहुँचा। एक असामान्य-सी गहमागहमी थी। पूरा स्टॉफ

बीच के प्रांगण में सक्रिय था और छात्राओं को कक्षाओं से बाहर एकत्र किया जा रहा था। प्राचार्य कुछ उद्विग्न से थे। एक शासकीय विज्ञप्ति पढ़ी गई। मफ़ीहूम यह कि, युवराज संजय गाँधी की रैली में आप सबको अनिवार्य रूप से शामिल होना है। छात्राओं को इसके लिए एक दिन की अतिरिक्त उपस्थिति का लाभ मिलेगा। उनकी हाज़िरी और देख-रेख की जिम्मेदारी स्टाफ की होगी। ... और विशेष सभा विसर्जित हो गई।

शासकीय सेवा में यह पहला मौका था ऐसी आदेशात्मक विज्ञप्ति का। पूरा स्टाफ सशंकित था। रैली उसी अपराह्न होनी थी। छात्राओं पर तो कोई बन्दिश नहीं, वो आयें चाहे न आयें, लेकिन सरकारी मुलाजिम होने के नाते स्टाफ को तो रैली में शामिल होना ही है। यदि छात्राएँ न आयें तो हमारा क्या होगा? इसी उधेड़बुन में हम सब स्टाफ रूम में आ गए और फिर अपनी-अपनी कक्षाओं में चले गए। ... मुश्किल तमाम एक घंटे का वक्फ़ा बीता होगा कि फिर एक सूचना आई- 'सारा स्टाफ प्राचार्य कक्ष में एकत्र हो' ...पता चला कि अफसरों का एक विशेष दस्ता उस सरकारी आदेश की प्रतियाँ समेट रहा है जिसमें संजय गाँधी की रैली में शामिल होने का फ़रमान जारी किया गया था। रैली में शामिल होना अब अनिवार्य नहीं है। पता यह भी चला कि होमी दाजी ने विधानसभा में यह मुद्दा उठाया था कि संजय गाँधी की रैली में शमिल होने के लिए सरकार द्वारा विद्यार्थियों और प्राध्यापकों को विवश किया जा रहा है। उसके बाद शासन ने यह क़दम उठाया है। हम लोगों ने राहत की साँस ली और अपनी-अपनी कक्षाएँ लेकर घर लौटे।

'आसमान से गिरे, खजूर में अटके' वाली कहावत चरितार्थ करता हुआ एक ख़त घर पर मेरा मानो इन्तज़ार ही कर रहा था। लिफाफा खोल कर ख़त पढ़ा :

मध्यप्रदेश कला परिषद

ललित कला भवन, टैगोर मार्ग, भोपाल - 3

क्रमांक 1819

प्रति

श्री धनंजय वर्मा,

दिनांक 25/2

महोदय,

भोपाल

बुद्धिजीवियों और कलाकारों की एक बैठक मध्यप्रदेश कला परिषद भवन में दिनांक 26.2.1976 को दोपहर 2.30 बजे आमंत्रित की गई है। कृपया इस बैठक में आप ठीक समय पर पधारने का कष्ट करें।

-

भवदीय

(हस्ताक्षर : कृष्ण कुमार सक्सेना) सचिव, मध्यप्रदेश कला परिषद् के लिए

मैंने घड़ी में समय देखा तीन बजे थे। मन-ही-मन तय किया कि बैठक में नहीं जाऊँगा, इस बिना पर कि पत्र देर से मिला। अन्दर जाकर कपड़े बदलने ही वाला था कि एक स्कूटर बाहर रुका और दरवाज़े

पर दस्तक हुई। सामने सक्सेना जी जी खड़े हुए थे। उन्होंने पूछा 'पत्र आपको मिल गया।' नहीं, कैसे कहता? वो दूसरा थमा देते...। 'मुझे वाजपेयी जी ने भेजा है, खासतौर पर आपको लेने' ...मैं मना कैसे करता? ...सक्सेना जी के स्कूटर पर कला परिषद् भवन पहुँच गया।

परिषद के प्रांगण में बुद्धिजीवियों और कलाकारों की भीड़ थी। अधिकांशतः सरकारी मुलाजिम, श्री अशोक वाजपेयी से उपकृत शासकीय महाविद्यालयों के मुदर्रिस! कुछ कला परिषद के सचिव और कुछ उपकृत होने के उम्मीदवार मुझे सीधे सचिव के कमरे में ले जाया गया। वहाँ साहित्य परिषद् (अब साहित्य अकादमी) के सचिव श्री शानी भी मौजूद थे। श्री वाजपेयी मुझसे मुखातिब हुए :

''संजय गाँधी रैली के बाद सर्किट हाउस के पास वाले बँगले में गणमान्य नागरिकों, विभिन्न संगठनों और संस्थाओं के प्रतिनिधियों से मिलेंगे। प्रदेश के बुद्धिजीवियों और कलाकारों की ओर से उन्हें संस्कृति के सम्बन्ध में एक मैमोरेण्डम दिया जाना है। वह मैंने तैयार कर लिया है। इसे आप देख लें। इस पर यदि संजय गाँधी कुछ पूछ-ताछ करें तो उसका जवाब आपको ही देना है...''

''मैमोरेण्डम चूँकि आपने तैयार किया है, तो बेहतर यही होगा कि आप ही उनका सामना कर'' ... मैंने कहा ।

''मैं सरकारी अफ़सर हूँ और हम लोग मामले को सरकारी बनाना नहीं चाहते वाजपेयी जी ने अंग्रेजी में कहा।''

''आप सरकारी अफ़सर हैं, तो मैं भी तो सरकारी नौकर हूँ, आपकी तुलना में मेरी स्थिति अधिक वेध्य है'' मैंने भी अंग्रेजी में निवेदन किया।

''उसमें डरने की क्या बात है।''

शानी जी ने फरमाया-

''डरने की कोई बात नहीं है तो आप ही यह जिम्मेदारी क्यों नहीं ले लेते?'' ... मेरा स्वर ज़रूर तल्ख हो गया होगा।

- ''देखिए, मामले को इतना मत उलझाइए। शानी जी स्थिति को सँभाल नहीं पायेंगे। आपसे बेहतर यह काम कोई और नहीं कर सकता। इसीलिए हमने बहुत सोच-विचार कर आपको चुना है इसमें परेशानी क्या है?'' ...वाजपेयी जी के स्वर में थोड़ी ख़फ़गी थी।

फिर मुझे यह भी याद आ गया कि वाजपेयी जी कला परिषद के सचिव ही नहीं, शिक्षा विभाग में उपसचिव भी हैं और आईएएस हैं। बहरहाल, मैंने मैमोरेण्डम पढ़ा और अपने आप को मानसिक रूप से तैयार करने में लग गया।

वाजपेयी जी और शानी बाहर आ गए। बुद्धिजीवियों और कलाकारों का काफिला प्रोफेसर्स कॉलोनी होता हुआ सर्किट हाउस के पास वाले बँगले की ओर खरामाँ-खरामाँ चलने लगा। बाहरी गेट पर एक वरिष्ठ पूर्व केबिनेट मंत्री लोगों को पास बाँट रहे थे। हमें भी दिए गए। हम लोग बँगले की लॉन कुछ परिचित, अधिकांश... अपरिचित! पर एकत्र हो गए। वहाँ मुख्तलिफ समूहों में लोग जमा थे अफसरों की एक टोली हमारे पास आई।

''अच्छा, आप लोग बुद्धिजीवी और कलाकार हैं? आइए, इधर आइए, यहाँ बैठिए, जगह छात्र-

नेताओं के लिए आरक्षित है।...'' जैसे चरवाहे मवेशियों के झुण्ड को हाँकते हैं, उसी अन्दाज़ में अफसरों की टोली हमें एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे तम्बू में बैठने के आदेश देती रही। अन्त: एक अफसर आया आपके प्रतिनिधि कौन है? सिर्फ वो मेरे साथ आए। बाकी आप लोग यहीं बैठे रहें...''

ज़ाहिर है मुझे सामने आना था। मैं उनके साथ हो लिया।

''आप अकेले ... आपके साथ एक और आ सकता है ?...''

सत्येन कुमार मेरे साथ हो लिए। ... बारामदे में खासी भीड़ कंधों से कंधे रगड़ते हुए, धक्का-मुक्की झेलते हुए हम लोग दरवाज़े तक पहुँचे। दरवाज़े पर हमें रोक दिया गया। वो अफसर जाने कहाँ गुम हो गया जो हमें साथ लाया था। खासी रेलम-पेल के बाद वो फिर नमूदार हुआ और हमें उस कमरे में प्रवेश मिला जिसके दूसरे सिरे पर भीड़ से घिरे युवराज संजय गाँधी और मुख्यमंत्री जी खड़े थे। उनसे मिलने वालों की मुन्तजिर क़तार में हम भी खड़े हो गए। ... दायीं और निवर्तमान मुख्यमंत्री जी अपने किसी साथी के साथ खड़े थे उदास और श्रीहीन!.. आखिर हमारा नम्बर भी आ गया। हमारा परिचय दिया गया - ''प्रदेश के बुद्धिजीवियों और कलाकारों की ओर से संस्कृति के बारे में आपको एक मेमोरेण्डम देना चाहते हैं?...'' हमने श्री संजय गाँधी को नमस्कार किया। उन्होंने मैमोरेण्डम लेकर, बिना उसे देखे, पीछे खड़े किसी अफसर को सौंप दिया। अफसर ने उसे कागज़ों से भरी एक टोकरी के हवाले कर दिया।

हमारा काम खत्म! फिर उसी धक्का-मुक्की और रेलमपेल के सहारे हम लोग बाहर आ गए। संजय गाँधी के दर्शन मात्र से वंचित बुद्धिजीवियों और कलाकारों का दल पता नहीं कहाँ गुम हो गया था!...

दूसरे दिन स्थानीय अख़बारों में बड़ी प्रमुखता से यह खबर छपी। उसके साथ मेरी मजम्मत भी की गई थी यों कि जैसे मैंने कोई संगीन जुर्म किया हो। सबसे अधिक तकलीफ 'जनधर्म' साप्ताहिक के हमले से हुई जिसमें एक बॉक्स बनाकर पूरी ख़बर नमक मिर्च मिलाकर, चटखारे लेकर, छापी गई थी। तकलीफ इसलिए कि उसके सम्पादक तब मेरे परम मित्र थे और ओमप्रकाश निर्मल की वजह से उनसे हमारे रिश्ते लगभग पारिवारिक हो गए थे। मुझे उनसे यह उम्मीद कतई नहीं थी। कम-अज़-कम वो तो मेरी विवशता को समझ सकते थे और इस तरह खबर उछालने के पहले मुझसे पूरे प्रसंग पर बात कर सकते थे!... लेकिन उन दिनों अतिरिक्त उत्साह का जो माहौल, दोनों ओर था उसमें लोगों से संयम और संतुलन की उम्मीद करना भी बेवकूफी थी। दफ़्ती की तलवारें भाँजते हुए लोग एक-दूसरे को क़त्ल करने में मुब्तिला थे और शहादत न सही, बहादुरी के तमगे लटकाने में ज़रूर मशगूल थे... जबकि अपना हाल था, बकौल शकेब जलाली :

हमसे टकरा गई खुद बढ़के अँधेरे की चट्टान
हम सँभलकर जो बहुत चलते थे नाचार गिरे...

लेकिन नाचार, हम सरीखे, सब नहीं थे। इसी भोपाल में तब इन्दिरा गाँधी के ख़ास-उल-ख़ास कहे जाने वाले कवि-शिरोमणि श्रीकान्त वर्मा की पहल पर साहित्य परिषद और कला परिषद के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित बुद्धिजीवियों, कलाकारों और लेखकों-कवियों के एक लगभग सरकारी सम्मेलन में डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने अपने वक्तव्य में साफ-साफ सत्ता विरोधी रुख अख्तियार

किया था जिससे उन्हीं के शब्दों में ''तारीफ के तस्करों की तबियत दुरुस्त हो गई थी।''

और याद आ रहा है समकालीन लेखक सम्मेलन का 7-9 अक्टूबर 1979 को सम्पन्न पूना अधिवेशन, जिसका उद्घाटन किया था महामहोपाध्याय दतो वामन पोतदार ने और अध्यक्षता की थी श्री पी. वी. नरसिंहराव ने, जो उस वक्त कदाचित कांग्रेस अध्यक्ष थे। उन्होंने शुरू से लेकर आखिर तक सभी गोष्ठियों में शिरकत की थी। पाँच संगोष्ठियों में विभिन्न विभिन्न विषयों पर, बावजूद आपातकाल के, खुलकर विमर्श हुआ था। दूसरे दिन के कवि सम्मेलन में ओमप्रकाश निर्मल ने इन्दिरा गाँधी को सम्बोधित आपातकाल विरोधी कविता पढ़कर वाह-वाही तो लूटी ही, पूरा सभाकक्ष एक सकते में भी आ गया था। श्री पी.वी. नरसिंहराव की मौजूदगी की वजह से कवियों-लेखकों पर कोई आँच नहीं आई। यह सम्मेलन मेरी यादों में इसलिए भी बसा है कि इसके अन्तिम दिन शाम को मराठी में ख़ासा लोकप्रिय कार्यक्रम-कथाकथन-हुआ था जिसमें हिन्दी लेखकों के एकमात्र प्रतिनिधि थे नागार्जुन। कथाकथन में मराठी के नये-पुराने कहानीकार अपनी नयी-ताज़ी कहानी, पढ़ते नहीं, सुनाते बाकायदा हाव-भाव और एकल अभिनय के साथ और हज़ारों श्रोता उसे मंत्र-मुग्ध होकर सुनते हैं। मराठी में कहानी की यह विलक्षण वाचिक परम्परा आज भी फल-फूल रही है। बहरहाल, नागार्जुन ने आशु-कवि की तर्ज पर जो कहानी सुनाई, वह मेरी जानकारी में उनके किसी संग्रह में संकलित नहीं है और शायद अब तक अप्रकाशित है चुनांचे मेरी यादों में वह जैसी बसी है, वैसी ही पेश है। बाबा नागार्जुन अपनी कविताएँ जिस तरह लगभग अभिनय के साथ पढ़ते थे उसी तरह उन्होंने पंचतंत्र शैली की यह कहानी पेश की थी :

एक जंगल में संयोगवश हुआ यह कि एक शेर, एक सुअर, एक ऊँट और एक खरगोश में अच्छी-खासी दोस्ती हो गई। चारों अपना-अपना भोजन करते और देर रात तक उनकी गप्प गोष्ठी चलती। एक दिन शेर ने एक बड़े-से बैल का शिकार किया और गोष्ठी के लिए नियत पेड़ के नीचे आकर बैठ गया। सुअर और ऊँट भी उसके आजू-बाजू आकर बैठ गए। सबसे अंत में फुदकता हुआ खरगोश आया और शेर के ऐन सामने बैठ गया। जब सब आराम से बैठ गए तब शेर ने बड़े ज़ोर से दायें बाजू सर घुमाकर, अपना पूरा मुँह खोलकर, डकार ली। उसका भभका सुअर की थूथन तक फैल गया। सुअर ने अपना मुँह फेर लिया। शेर के तेवर चढ़ गए। उसने पूछा —

''क्यों तुमने अपना मुँह क्यों फेर लिया?..''

''ऐसा है मित्रवर शेर, तुम अपना मुँह तो कभी धोते नहीं हो फिर अभी-अभी कच्चा माँस खाकर आये हो। तुम्हारी डकार में उसकी सड़ी हुई दुर्गन्ध आ रही है, सो में अपना मुँह न फेरता तो क्या करता, सुअर ने कहा।''

शेर को आ गया गुस्सा। दहाड़ता हुआ बोला :

''साले सुअर, तू दुर्गन्ध की बात कर रहा है। मेरी छत्र-छाया में रहता है और मेरी ही आलोचना करता है।'' ...उसने मारा झपट्टा और सुअर का काम तमाम हो गया। शेर उसे चीर-फाड़ कर खा गया।

ऊँट सकते में आ गया। शेर आखिर है तो जंगल का राजा। और राजा से दुश्मनी तो ख़तरनाक है ही, उससे दोस्ती में भी कम ख़तरे नहीं हैं। अब सुअर ने सच ही तो कहा था। किसी राजा को सच बर्दाश्त क्यों नहीं होता?... इसी उधेड़-बुन में शेर की तरफ मुँह किए ऊँट जुगाली करता रहा। ....शेर ने फिर पूरा

मुँह खोलकर डकार ली। ऊँट स्थितिप्रज्ञ की तरह बैठा रहा। शेर ने गुर्राते हुए पूछा –

''क्यों बे ऊँट, बोल क्या मेरे मुँह से दुर्गन्ध आ रही है ?...''

''अरे नहीं हुजूर। आपके मुँह से भला कभी दुर्गन्ध आ सकती है। आप हैं जंगल के राजा। आपके मुँह से तो सुगंध आ रही है। सरकार, सुगंध। इलायची की सुगंध... '' ऊँट ने चापलूसी करते हुए कहा।

शेर के तेवर फिर चढ़ गए। दहाड़ता हुआ बोला –

''साले ऊँट! मुझे बेवकूफ समझ रक्खा है। मेरे मुँह से सुगंध आ रही है! वह भी इलायची की। चापलूस कहीं के...'' और शेर ने फिर मारा एक झपट्टा और चीर-फाड़कर उसे भी खा गया।

खरगोश यह सब देखता हुआ काँप रहा था। एक ने सच कहा। वह मारा गया। दूसरे ने झूठ बोलकर बचना चाहा। वह भी मारा गया। अब सच और झूठ के बीच क्या है? ...''

जब ऊँट का भी काम-तमाम हो गया तब शेर ने फिर एक ज़ोर की डकार ली। खरगोश दम साधे उसकी ओर टकटकी बाँधकर देखता रहा। शेर खरगोश की ओर मुखातिब हुआ –

''बोल बे, खरगोश के बच्चे! तुझे मेरे मुँह से दुर्गन्ध आ रही है, कि सुगंध?... हुज़ूर जान की खैर बख्शी जाये, तो कुछ अर्ज करूँ...'' खरगोश थर-थर काँपते हुए बोला।

''जा बख्श दी तेरी जान! उस बैल को तो खा ही चुका हूँ। सुअर भी पेट में समा गया और अब यह ऊँट...! तू एक निवाले का तो है नहीं बोल क्या बोलता है?...'' शेर ने कहा ।

''सरकार सच बात यह है कि पिछले एक महीने से मुझे सख्त जुकाम हो गया है, न सुगंध का पता चलता है, न दुर्गन्ध का...'' खरगोश ने कहा।

इसी तरह पिछले सोलह महीनों से पूरा देश खरगोश हो गया है और उसे जुकाम भी हो गया है। उसे न सुगंध का पता है, न दुर्गन्ध का!...

बाबा नागार्जुन ने कहानी ख़त्म करते हुए कहा और पूरा हाल देर तक तालियों से गूँजता रहा।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

रामभुवन सिंह कुशवाह

आपातकाल और जेल जीवन के वे दिन...!

आज हम जिस लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था में रह रहे हैं, उसे हासिल करने के लिए हमारे देश ने सैकड़ों सालों तक कड़ा संघर्ष किया था, उस लोकतंत्र के बारे में नि:संदेह रूप से कहा जा सकता है कि वह सभी प्रकार की शासन व्यवस्थाओं में सर्वश्रेष्ठ है। आम आदमी को अभिव्यक्ति की आजादी, रहने जीने और अपना भविष्य स्वयं तय करने का अधिकार जितना लोकतंत्र में सहज रीति से मिल सकता है अन्य किसी भी प्रकार शासन प्रणाली में संभव नहीं है।

लोकतंत्र मात्र शासन प्रणाली ही नहीं है बल्कि जीवन जीने की पद्धति भी है, एक ऐसी पद्धति जो सम्यक लोकतांत्रिक सोच से विकसित होती है। जागरूकता, परस्पर सह-अस्तित्व, लोकतंत्र के प्रति अटूट निष्ठा का भाव और लोकमत का सम्मान, लोकतंत्र के आवश्यक लक्षण हैं। उसके बिना लोकतंत्र का कोई महत्त्व नहीं है। भारतीय जनता में यह गुण स्वाभाविक रूप से मौजूद है, यदि यह गुण न होता तो अपना यह देश भी पड़ोसी देशों की तरह तानाशाही के कड़े शिकंजे में जकड़ा होता।

25 जून 1975 के उस काली रात को भारत की जनता भला कैसे भूल सकती है जिस दिन श्रीमती इंदिरा गाँधी की मदांध सरकार ने बिना सोचे-समझे देश का आपातकाल लगा दिया था। नागरिकों के मौलिक अधिकारों को समाप्त करके लाखों निर्दोष लोगों को राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अंतर्गत जेल में डाल दिया गया। न अपील, न वकील और न दलील - एक तरह से सबके मुँह बंद करने की कोशिश की गई। अख़बारों पर सेंसरशिप बैठा दी गई। यहाँ तक कि लोग मौसम के बारे में चर्चा करते हुए भी डरने लगे।

उस समय का हाल बताते हुए किसी कवि ने कहा था-

''मत कहो आकाश में कोहरा घना है।
यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है।''

देश पर आपातकाल थोपने से पूर्व ही तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने देश का वातावरण ऐसे बना दिया था कि कोई भी उसका प्रतिकार करने की हिम्मत न जुटा सके। सरकारी प्रचारतंत्र का सहारा लेकर उन्होंने स्वयं को देवदूत और उसके अपने विरोधियों को देश और गरीबों को दुश्मन साबित करने की कोई कसर छोड़कर नहीं रखी थी। आकाशवाणी और दूरदर्शन के सिवाय तब आज जैसे दूसरे न्यूज चैनल नहीं थे और उनका अधिकांश समय श्रीमती गाँधी को महिमामंडित करने में व्यतीत होता था। 15 मिनट के बुलेटिन में 14 मिनट उन्हीं को समर्पित होते थे। विपक्ष तो एक तरह से ब्लैकआउट ही रहता था। कांग्रेस पार्टी में भी कोई उनके खिलाफ मुँह खोलने को तैयार नहीं था। दिल्ली सहित देश के तमाम शहरों में उनके समर्थन में फर्जी रैलियाँ निकलती थीं और उस समय की मीडिया

उन्हीं खबरों को प्रसारित करने के लिए मजबूर थी।

चुनौती रहित कांग्रेस के शासनकाल में भ्रष्टाचार चरम सीमा पर था। कांग्रेस के एकाधिकार में प्रतिपक्ष को दबाने के लिए कोई भी हथकण्डा ऐसा नहीं था जिसे अपनाया न जा रहा हो। जब स्थिति सिर से ऊपर हो गई तो लोकनायक जयप्रकाश नारायण उठ खड़े हुए। गुजरात में छात्र आंदोलन शुरू हुआ और वहाँ की चिमन भाई की कांग्रेसी सरकार को अपदस्थ होना पड़ा। उसी समय इलाहाबाद हाईकोर्ट ने श्रीमती इंदिरा गाँधी का चुनाव निरस्त कर दिया। तत्कालीन केन्द्रीय सरकार ने एक अध्यादेश के माध्यम से उसे फैसले का प्रभाव तो समाप्त कर दिया मगर सत्तारूढ़ पार्टी में श्रीमती गाँधी के खिलाफ असंतोष उभरने लगा। 25 जून 1975 को दिल्ली में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में सर्वदलीय सभा हुई और उन्होंने भारत बंद का ऐलान कर दिया। तत्कालीन उप प्रधानमंत्री श्री मुरारजी देसाई सहित तमाम कांग्रेसी नेताओं ने भी भारत बंद का समर्थन कर दिया। इस सबका जवाब श्रीमती इंदिरा गाँधी ने देश पर आपातकाल लगाकर दिया। आपातकाल लगाकर अभिव्यक्ति आजादी छीनने से लोकतंत्र का कोई मतलब ही नहीं रह गया।

25 जून 1975 की रात, मैं अपने गृह नगर भिण्ड में ही था। एक माह पूर्व भिण्ड में लोकनायक जयप्रकाश नारायण की सर्वदलीय सभा काफी सफल रही थी। प्रशासन के तमाम अड़ंगों के बाद भी एम जे एस महाविद्यालय के प्रांगण में आयोजित सभा उस समय की बहुत बड़ी सभा थी। उत्तरी मध्यप्रदेश में वैसे भी स्व. राजमाता विजयाराजे सिंधिया और तत्कालीन भारतीय जनसंघ का अच्छा खासा प्रभाव था। मैंने उस सभा में बढ़-चढ़कर भाग लिया। मैं उस समय स्वदेश का संवाददाता था। स्वागत और सभा की तैयारियों के लिए सर्व दलीय समिति गठित की गई थी। दो प्रमुख दलों जनसंघ और समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ताओं में समिति और सभा का अध्यक्ष बनने की जोड़-तोड़ चल रही थी। मेरी ही पहल पर एक सर्वोदयी युवक श्री सत्यनारायण शर्मा को आयोजन समिति और सभा का अध्यक्ष बनाया गया। लोक नायक जयप्रकाश नारायण की इस ऐतिहासिक सभा के कारण मैं जिला प्रशासन की आँख की किरकिरी बन गया। भिण्ड जिले में स्वदेश का सबसे अधिक प्रसारण था। मैं उन दिनों सरकार और सरकारी तंत्र की तीखी आलोचना करता था, इस कारण भी जिला प्रशासन के अधिकारियों और कांग्रेस के नेताओं को हर समय खटकता रहता था। आपातकाल ऐसे लोगों के लिए वरदान बन गया। अब उनकी आलोचना करने वाला कोई नहीं था।

25 जून 1975 की रात को मैं निश्चिंत होकर सोया, सुबह के बुलेटिन में देश पर आपातकाल लगाए जाने की जानकारी दी गई। कुछ नेताओं की गिरफ्तारी की भी ख़बर मिली। पत्रकार होने के नाते मैं आपातकाल की ख़बर लेने सुबह घर से निकला और कोतवाली की ओर जा ही रहा था कि एक शुभ चिंतक पुलिसकर्मी ने मुझे कोतवाली जाने से रोक दिया और कहा कि वहाँ मत जाइए, आपको गिरफ्तार करने के लिए पुलिस आपके घर गई है। मैंने तुरंत अपना मार्ग बदला और अपने पत्रकार मित्र श्री रमेश जौहरी के घर पहुँच गया। एक दिन वहाँ रुकने के बाद में भूमिगत होकर आपातकाल के खिलाफ़ जन जागरण की तैयारी करने लगा। जून में ग्वालियर क्षेत्र में भयंकर गर्मी पड़ती है। इसलिए अपना मुँह और सिर एक कपड़े से ढक कर बस से रौन, लहार होता हुआ गोहद पहुँचा। गोहद बस स्टेण्ड पर जनसंघ के

एक कार्यकर्ता का मकान था। मैं छुपकर उनके घर पहुँचा। कार्यकर्ता वकील साहब थे। वे तो मुझे देखकर घबरा गए। हाथ जोड़कर बोले, ''आपका वारंट निकल गया है। आपको तो गिरफ्तार होना ही है। मुझे क्यों आप गिरफ्तार कराना चाहते हैं। मैं गिरफ्तार हो गया तो बर्बाद हो जाऊँगा।''

उनकी यह स्थिति मुझसे नहीं देखी गई, मैं चुपचाप उनकी बैठक से निकलकर पुन: बस स्टेण्ड पर आ गया। मैं वहाँ खड़ा ही था की गोहद के थाना प्रभारी आ गए। उन्होंने कहा बैठिए मेरी गाड़ी पर और मैं चुपचाप उनकी गाड़ी में बैठ गया। मैंने समझ लिया कि मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है। थाना प्रभारी मुझे थाना ले जाने के बजाय अपने घर ले गए। उन्होंने आदर से खाना खिलाया और समझाया कि आपको इस तरह बस स्टेण्ड पर खड़ा नहीं होना चाहिए था। अब आप जितने दिन रहना चाहें यहाँ रह सकते हैं।

पुलिस अधिकारी की इस अयाचित कृपा से मैं अभिभूत था परन्तु मुझे डर भी लग रहा था। वे फर्जी मुठभेड़ के 'मास्टर' माने जाते थे। उनके जैसे पुलिस अधिकारियों के कारण ही पूर्व डी.जी.पी. श्री अयोध्यानाथ पाठक को वीरता के कई पदक मिल चुके थे। मुझे फर्जी मुठभेड़ में मारे जाने का भय नहीं था परन्तु यह डर तो था कि वह कभी भी मुझे गिरफ्तार करवा सकता है। पूरे दिन और पूरी रात मजबूरी में मैंने थाना प्रभारी के घर पर ही बिताई। अगली सुबह मैं चलने को तैयार हुआ तो उन्होंने फिर रोका। इस तरह कहाँ जाओगे बीच में कहीं भी पकड़ लिए जाओगे। मैंने कहा, 'मुझे जाना ही होगा।' इसके बाद उन्होंने बस स्टेंड तक मुझे पहुँचवा दिया। उनके ड्रायवर ने अपनी गाड़ी से मुझे भिण्ड जाने वाली बस में बैठा दिया। मैं चुपचाप बस में बैठ गया। पर जैसे ही वह रवाना हुआ, मैं बस बदल कर दूसरी दिशा की ओर जानेवाली बस में बैठ गया।

इस तरह कोई बारह दिन छुपता जिले भर में घूमता रहा। आठ जुलाई को मैं फिर भिण्ड पहुँचा। पत्नी और बच्चों से मिलने जब शाम को अपने घर पेच नम्बर एक में पहुँचा तो घर में घुसते मुझे किसी कांग्रेसी ने देख लिया और तुरंत पुलिस को खबर कर दी। सुबह ही पुलिस ने मेरा घर घेर लिया और मैं गिरफ्तार कर लिया गया। जिस समय मैं गिरफ्तार हुआ मेरे बच्चे अत्यन्त छोटे थे, पत्नी गर्भवती थीं। मैंने सावित्री को सलाह दी कि वे बच्चों को लेकर घर बाराकलां चली जाए। वे स्वाभिमानी और साहसी शुरू से थीं, उन्हें मेरी सलाह पसंद नहीं आई। वे गाँव मेरे भाई के पास नहीं गईं और न मायके पिता के घर जाना चाहती थीं। उन्हें लगता था कि कुछ दिन बाद रिहा हो जाऊँगा पर जब अधिक दिन तक नहीं लौटा तो आखिरकार वे मेरे भाई के पास गाँव चली गईं। कभी भिण्ड तो कभी बाराकलां वे आती-जाती रहीं। बच्चों को साथ में लेकर उनकी यह आना-जाना कितना कष्टदायी था, यह समझा जा सकता है।

गिरफ्तार होने के बाद जब मुझे कोतवाली ले जाया गया। तब कोतवाली गिरफ्तार शुदा से भरी थी। तमाम कार्यकर्ता गिरफ्तार होकर लाए गए थे। अधिकांश कार्यकर्ताओं को आपराधिक मामलों में गिरफ्तार किया गया था और बाद में उन्हें अदालत ने रिहा भी कर दिया किन्तु मुझे 'मीसा' में गिरफ्तार किया गया था, इसलिए मुझे पुलिस वाहन से केन्द्रीय जेल, ग्वालियर ले जाया गया। रास्ते में मैंने जहाँ देखा लोगों को डरा हुआ ही पाया। पत्रकारों की हालत तो और अधिक खराब हो गई। भिण्ड, और ग्वालियर में अनेक पत्रकार मिले किन्तु वे भयभीत होकर मुझसे आँख भी नहीं मिलाना चाहते थे।

मैं जब ग्वालियर केन्द्रीय जेल पहुँचा तो वहाँ कोई चार-पाँच सौ लोग मीसा में बंद थे। उन्हें

देखकर मैं अपनी गिरफ्तारी का गम और परिवार छोड़ने का दु:ख भूल सा गया। केन्द्रीय जेल में मीसाबंदियों की अलग बैरिकें थीं। भारतीय जनसंघ के ग्वालियर संभाग के सभी बड़े नेता यथा सर्वश्री नारायण कृष्ण शेजवलकर, शीतला सहाय, नरेश जौहरी, गंगाराम बादिल, भाऊ साहब पोतनीस, इन्द्रापुरकर, डॉ. एमएम बत्रा, स्वरूप किशोर सिंहल, पी. डी. गुप्ता, रसाल सिंह, शिव कुमार शुक्ला नाथूलाल गोयल, 'मंत्री जी' जाहर सिंह शर्मा, जगन्नाथ सिंह, दादा दहीफले, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रो. कप्तान सिंह सोलंकी, बाबा खानवलकर, दादा बेलापुरकर, चिंतामणि केलकर, मोघे जी, अन्ना जी, महीपत चिकटे डॉ. मराठे, सुघर सिंह कुशवाह, बाबूलाल गुप्ता और उनके युवा पुत्र राधेश्याम गुप्ता, सीताराम गुप्ता, शिवपुरी के बाबूलाल शर्मा एडवोकेट, हरिहर शर्मा, गोपाल दंडोतिया, विमलेश गोयल, गोपाल सिंहल, ओम प्रकाश गुरु, संयुक्त समाजवादी पार्टी के रघुवीर सिंह कुशवाह, धर्मस्वरूप सक्सेना, दांतरे, दंडोतिया, बाबू जबर सिंह, रक्षपाल सिंह, विजय सिंह, साहित्य क्षेत्र के सर्व श्री जगदीश तोमर, डॉ. शिव बरुआ, सीपीएम के शैलेन्द्र शैली और बादल सरोज आदि सभी लोग एक साथ मिल गए।

मीसा के प्रारंभ के दिनों में अचानक सैकड़ों लोग केन्द्रीय जेल आ जाने से जेल की प्रारंभिक व्यवस्थाएँ बिगड़ गई थीं। समाजवादी और साम्यवादी कार्यकर्ता इस अवसर का लाभ उठाकर आंदोलन करना चाहते थे, किन्तु राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और भारतीय जनसंघ से जुड़े लोग जेल में जेल के कायदे कानून के अनुसार रहने के पक्षधर थे। समाजवादी, साम्यवादी, आनंदमार्गी और असामाजिक तत्वों ने मिलकर जेल में एक गुट बना लिया था पर वे विचारों और आचरण से अलग-अलग थे। संघ और जनसंघ के लोग विभिन्न श्रेणी में निरुद्ध किए गए थे। पर वे सामूहिक रूप से एक ही भोजन व्यवस्था में शामिल हो गए। स्वभाविक था कि उन सबका खाना बहुत अच्छा बनता था। उनका रहन-सहन भी व्यवस्थित था। सप्ताह के प्रत्येक दिन के लिए विभिन्न कार्यक्रमों तथा भोजनालय की व्यवस्था सबने मिलकर बाँट ली थी। जबकि समाजवादी, साम्यवादी और असामाजिक तत्व में कोई साम्य नहीं था। वे आपस में लड़ते हुए भी मिलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ की आलोचना करते रहते थे। संघ से जुड़े कार्यकर्ताओं की सक्रियता साढ़े पाँच बजे प्रात: जागरण से शुरू होती और रात तक चलती रहती। वे प्रात: सामूहिक प्रार्थना से करते, दैनिक क्रिया से निवृत्त होकर योगाभ्यास, गीतापाठ, स्वाध्याय, आदि करते थे उनका भोजन सामूहिक में से शुरू होता था। उनका खाना बनाने वाले कैदियों के साथ भी सभ्यता का व्यवहार था जबकि समाजवादी, साम्यवादी विचारों के अनेक लोग फालतू की बातें करते रहते थे। ताश आदि खेलना, जेल में जुगाड़ कर शाम को अपना गला भी गीला करना उनकी सामान्य दिनचर्या थी। उनका जेल कर्मियों के साथ व्यवहार भी अच्छा नहीं था। परिणाम स्वरूप उनमें हर समय तनाव बना रहता था।

केन्द्रीय जेल में हम लोग बंद ज़रूर थे किन्तु हमें जानकारी पूरी दुनिया की मिलती रहती थी। देश में क्या चल रहा है? नसबंदी को लेकर कैसी अफवाहें चल रही हैं देशभर में आपातकाल के खिलाफ़ कितने भूमिगत आंदोलन चल रहे हैं सबकी जानकारी हमें सहज में ही मिला करती थी। मुझे संयोग से इस जानकारी के संयोजन की भी जिम्मेदारी दी गई थी और मीसाबंदी प्रमुख नरेश जौहरी का सहयोगी होने के कारण दोपहर चाय के बाद एकत्रीकरण में ही अक्सर सबकी जानकारी देता था। सभी गोपनीय दस्तावेज़

मेरे पास आते थे। उन्हें सँभालकर रखना और उन्हें सूचीबद्ध करना यह मेरी ही जिम्मेदारी में था। यह बड़ी विचित्र बात थी कि जेल के बाहर के लोगों को उस वास्तविकता का पता नहीं था जो हमारे पास थी। बाहर के लोगों के पास तो अफवाहें ही थीं क्योंकि सही बात छापने की आज़ादी अख़बारों से छीन ली गई थी। हम लोगों ने जेल में एक ऐसा तंत्र भी खड़ा कर लिया था जिसके कारण बाहर की कोई बात हमसे छुपी नहीं रह सकती थी। जन आंदोलन की सभी खबरें ही नहीं सभी बड़े नेताओं के बीच के पत्राचार भी हमें उपलब्ध हो गए थे, जो बाबू जयप्रकाश नारायण और नानाजी देशमुख और अन्य नेताओं के बीच शुरू हुए थे। कहना न होगा कि जनता पार्टी का जन्म भी एक तरह से जेलों में ही हुआ।

जेल में हमें बहुत कुछ सीखने को मिला। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री काशीनाथ मोघे हमें नित्य व्यायाम और योग सिखाने के साथ शास्त्रीय संगीत भी सिखाते थे। डॉ. मराठे गीता के गूढ़ रहस्य सरल भाषा में हमारे समक्ष प्रस्तुत करते थे। डॉ. निवास्कर चिकित्सा में हो रहे परिवर्तन की भी जानकारी दे रहे थे और सरल तरीके से स्वस्थ और रोगमुक्त कैसे रहा जा सकता है यह बता रहे थे। यही नहीं वे इलोपेथी की जानकारी देने के साथ प्रमुख दवाइयों के बारे में भी सरल भाषा में हमें बता रहे थे।

डॉ. निवास्कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समर्पित कार्यकर्ता थे। वे शासकीय सेवा में रहकर ईमानदारी और आदर्श जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनसे किसी को भी खतरा नहीं था फिर भी सरकार ने उन्हें पकड़ लिया। डॉ. निवास्कर अक्सर कहा करते थे कि रोग हमारा शत्रु है, वह हमें कमजोर पाकर ही हमला करता है। इसलिए वे रोग से लड़ने के लिए शक्ति अर्जन पर जोर देते रहते थे। वे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर भी जमकर बहस करते थे और मेरी उनसे अक्सर बहस हो जाया रहती थी। मैं उन्हें छेड़ने के लिए कभी-कभी कुतर्क का सहारा भी ले लिया करता था और वे गुस्से में अपने हाथ से मेरा मुँह बंद कर दिया करते थे। फिर हम सब लोग उनके इस व्यवहार का खूब मज़ा लेते थे। डॉ. निवासकर आज हमारे बीच नहीं हैं। वे असमय में ही हमें छोड़कर चले गए। उन्हें मैं आज भी 'मिस' करता हूँ।

सौभाग्य से रहने के लिए मुझे मीसाबंदियों की उस बैरक में स्थान मिला था, जिसमें संघ और जनसंघ के सभी प्रमुख नेता बंद थे। उनमें बड़ी संख्या ग्वालियर के लोगों की ही थी। उनसे प्राय: हर दिन कोई मिलने आता था। मिलाई के समय वे अपने साथ ढेर सारी नमकीन और मिठाइयाँ लाया करते थे। बैरिक में आकर वह खाद्य सामग्री लाने में एक तरह से बाहर प्रतियोगिता हो रही थी तो अन्दर खाने में प्रतियोगिता हम लोग कर रहे थे। साढ़े बीस माह के जेल जीवन में मेरी एक भी मिलाई नहीं हुई मैंने अपनी पत्नी सावित्री को जेल आने से सख्ती से रोक रखा था। भिण्ड जिले के एक गाँव से ग्वालियर आना उनके लिए मुश्किल भी था।

मुझे पूरे मीसाकाल में एक बार पेरोल मिली और वह भी आश्चर्यजनक ढंग से, क्योंकि मैंने ऐसी कोई माँग नहीं की थी। सुबह साढ़े नौ बजे के करीब जेल का एक कर्मचारी आता है और मेरा नाम पुकारकर कहता है कि आपकी रिहाई आई है। सब चौंक पड़े उस समय बीस सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन करने का दौर चल रहा था। समर्थन का पत्र लिखते ही मीसाबंदी की जेल से रिहाई हो सकती है, यह धारणा थी। मेरी रिहाई की ख़बर से मुझे खुशी नहीं हुई बल्कि अपराध बोध सा होने लगा। मैं वारंट

ऑफिस पहुँचा तो पता चला कि मेरी रिहाई नहीं बल्कि मुझे दो दिन का पैरोल मिला था। मुझे इस पर भी अपनी पत्नी पर गुस्सा आ रहा था। मैंने उससे कहा था कि न भेंट के लिए आना और न पैरोल माँगना। मैं जेल से भिण्ड पहुँचा तब पता चला कि कलेक्टर और एसपी ने मेरी पत्नी से आवेदन मँगवाकर पेरोल दी है और मेरे घर पर खबर भिजवा दी थी कि वे जब मैं वहाँ आऊँगा, तो कलेक्टर एसपी से अवश्य मिल लूँ।

मैं पैरोल पर गया और समय निकालकर मैं तत्कालीन कलेक्टर श्री सुयोग्य कुमार मिश्रा से मिलने भी गया तो उन्होंने तत्कालीन एसपी स्व. संतोष कुमार सक्सेना को भी बुलवा लिया। वे दोनों अधिकारी मुझसे क्षमा माँगने लगे। उन्होंने बताया कि उन्हें पता नहीं था कि आप सबको इतने दिनों तक जेल में रहना पड़ेगा। वे तो समझते थे कि लोकमान्य जयप्रकाश नारायण के अखिल भारतीय बंद के आह्वान तक के लिए मुझे निरुद्ध रखा जाएगा। मैंने उनसे शालीनता से कहा कि आपने मुझे मीसा में बंदकर मेरा हित ही किया है। मेरा स्वास्थ्य देखकर दोनों प्रसन्न भी थे। कलेक्टर श्री मिश्रा बाद भोपाल के आयुक्त और प्रदेश के गृह सचिव भी बने और वे सदैव इज़्ज़त करते रहे। पेरोल पर जब मैं अपने गाँव आया तो मेरा परिवार मुझे स्वस्थ देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। सावित्री ने तो उलाहना ही दे डाला कि वह तो मेरी चिंता में दुबली हो रही थी और मैं निश्चिन्त होकर पहलवान हो गया था। यह कुछ सीमा तक सच भी था, हम लोगों को मीसा में रहने का तरीका आ गया था, आपातकाल में देश की चिंता के साथ हम लोग भी अपने स्वास्थ्य की चिंता कर लिया करते थे। वास्तव में दुखी तो बाहर वाले थे जो बाहर रहकर भी जेल में ही थे। इसका कारण यह था कि आपात देश जेल बन गया था। जेल में कितना भी सुख दिया जाए जेल तो जेल ही है। घर में पूरा कितने भी कष्ट हो घर, घर ही होता है। भिण्ड जिले के तीन चार मीसाबंदियों को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता था जो अपने घरों में बड़े कष्ट में थे और जेल में अपेक्षाकृत सुखी रह सकते थे किन्तु उन्हें अक्सर रात में नीद नहीं आती थी और हर सुबह रिहाई के लिए प्रार्थनाएँ किया करते थे। उन्होंने 20 सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन भी कर दिया था उनके घरवाले उनकी रिहाई के लिए जी तोड़ कोशिश भी कर रहे थे। अक्सर मैं ऐसे लोगों को समझाने की कोशिश करता तो वे मुझ पर ही पलट कर हमला किया करते थे– 'तुम्हें जेल अच्छी लगती है तो मज़े से रहो। जेल से छूटकर फिर किसी को लाठी मार कर आ जाना पर मुझे तो जाने दो।' मैं कहता था – 'मुझे भी खुशी होगी जब हम जेल से छूटेंगे पर जब तक जेल में हैं तब तक जेल की तरह आनंद से तो रहो।' पर मेरी सलाह उन्हें कभी भी अच्छी नहीं लगी।

संघ और जनसंघ के विचारों के समर्थक लोगों ने मिलकर एक वैचारिक कार्यक्रम बनाया था 'भावी भारत का स्वरूप' यह कार्यक्रम इतना लोकप्रिय रहा कि सभी विचारवान लोग यही चिंतन करते रहते थे कि अपने देश की तरक्की कैसे की जाए। 'भावी भारत का स्वरूप' पर चर्चा की रचना भी अत्यंत विचारपूर्वक की गई थीं। सरकार चलाने के लिए जितने भी विभाग हो सकते थे, उतनी ही समितियाँ बनाई गई थीं। हरेक समिति का एक संयोजक बनाया गया था। पहले सभी समितियों ने अलग-अलग बैठक आपस में चर्चा करके ड्राफ्ट प्रतिवेदन पर जो संशोधन आते थे उनपर गंभीरता से विचार किया जाता था। बाद में प्रतिवेदनों को अंतिम रूप देने का क्रम चला। इस कार्यक्रम में सभी की रुचि रहती थी। चर्चा इतनी रोचक और ज्ञान-वर्धक हो गई थी कि दिन-रात उसका ही जिक्र होता रहता था। सौभाग्य से मैं चर्चा

में सबसे अधिक हस्तक्षेप करता था। अंतिम प्रतिवेदनों को अंतिम रूप देने में भी मेरी बड़ी भूमिका रहती थी। सभी विभागों में अंतिम प्रतिवेदन योग्य हाथों तक गए किन्तु जेल से छूटने और अनुकूल विचारों की सरकार बनने के बाद भी जेल में हुई उस कसरत का बाहर कोई फायदा नहीं मिला। यह दुर्भाग्य ही है कि हमारे नीति नियंता सत्ता में आने के बाद वे सब बातें भूल जाते हैं जो जनता के बीच में रहकर सोचते हैं।

जेल में मुझे व्यक्तिगत एक लाभ और हुआ कि मैं जमकर व्यायाम करता था। योग में मेरी पहले से ही रुचि थी। जेल में निरंतर अभ्यासों से मैं योगासनों में पारंगत हो गया। योग की पुस्तकों में जितने भी आसन हैं, केवल शीर्षासन को छोड़कर, मैं सभी आसनों को आदर्श ढंग से करने लगा। जेल में जब भी कोई बड़ा अधिकारी निरीक्षण को आता, मुझे आसन प्रदर्शन के लिए अवश्य प्रस्तुत किया जाता था। इसी बीच मेरा स्वाध्याय भी चलता रहता था। गीता, रामायण, पं. दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तक एकात्म मानववाद और नीति एवं सिद्धान्त का अध्ययन किया और उस पर जमकर चिंतन किया। लेखन कार्य तो मेरा मूलकर्म ही था वह भी चलता रहा। साढ़े बीस महीने के मीसाकाल में मुझे तमाम प्रकार के अनुभव हुए। कई प्रसंग उल्लेखनीय भी हैं, पर एक लेख में सभी विषयों को समाहित भी नहीं किया जा सकता।

मीसाबंदियों में कुछ ऐसे भी थे जो संघ और जनसंघ के लोगों की खुली आलोचना किया करते। उनमें समाजवादी प्रमुख थे। उन्हें शक था कि जेल अधिकारी उनसे हमसे मिले हुए हैं। कुछ तो कांग्रेसियों से मिली भगत का भी आरोप लगा रहे थे। नौ समाजवादियों के 'दस चूल्हे' यह कहावत शायद पहली बार जेल में ही बनीं। वे मिलकर रह ही नहीं सकते थे। वे दूसरों की तो आलोचना करते किन्तु अपने आचरणों को देखने की कभी चिंता नहीं करते थे। वे बार-बार जेल के अधिकारियों, कर्मचारियों और यहाँ तक सामान्य कैदियों से भी बदसलूकी करने में संकोच नहीं करते थे। मीसा की बैरकों से निकलकर उन्हें सामान्य कैदियों से मिलना जुलना ज्यादा पसंद था। उन्हें उन जैसा बनने में अच्छा लगता था। इसके पीछे उनका तर्क था कि वे आम लोगों के साथ ही रहना चाहते हैं।

समाजवादी और साम्यवादी विचारों के कुछ मीसावादी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और तत्कालीन-भारतीय जनसंघ के कार्यकर्ताओं पर आरोप लगाया करते थे कि वे आंदोलन से डरते हैं जबकि हकीकत में अंदर से वे ही अत्यंत डरे हुए थे, वे अक्सर कहते थे कि एक दिन हम सबको लाइन में खड़ा कर गोली मारी जानी है। उनका विश्वास था कि अब जिंदा जेल से निकलना मुश्किल है। उनमें से अधिकांश ने अपनी रिहाई के लिए बीस सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन भी कर रखा था। आपातकाल के बाद वे ही लोग जेल से बाहर आकर शेर की तरह दहाड़ने लगे। उन्होंने अपनी संख्या की तुलना में सत्ता पर अधिक हक प्राप्त करने के लिए लड़ना शुरू कर दिया। इस किस्म के लोगों की कलई तो तब खुली जब एक बार तीन चार दिन के लिए जेल में हड़ताल हो गई तब वे जेल के अंदर की दीवार फाँदकर सामान्य बैरिकों से रोटियाँ माँगते पाए गए। वे जेल अस्पताल से मिले मक्खन तक को बेच धूम्रपान और नशे की चीजें खरीद लिया करते थे उनमें कुछ लोग सभ्य व्यवहार के और सिद्धान्तवादी भी थे।

आपातकाल की घोषणा के ठीक 19 माह बाद लोकसभा के चुनाव हुए। सभी राजनीतिक दलों के कार्यकर्ताओं को छोड़ दिया गया और कहा गया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और गैर राजनीतिक मीसाबंदियों को नहीं छोड़ा जाएगा परन्तु मुझे नहीं छोड़ा गया। भिण्ड जिले का शायद मैं ही एक अकेला

कार्यकर्ता था जो पूरे साढ़े बीस माह जेल में रहा। ऐसा शायद मेरी सक्रियता और चुनावी राजनीति की योजना से किया गया था। संघ चालक श्री सुधर सिंह कुशवाह की रिहाई और मुझे संघ का मानकर जेल में रोक लिया गया। आखिर कांग्रेस बुरी तरह चुनाव में परास्त हुई और परिणाम के दूसरे दिन आपातकाल के हटाए जाने के बाद मुझे रिहा किया गया। ग्वालियर और भिण्ड मुझे जुलूस के लिए रोक लिया गया और मेरा सामान श्री नरेश जौहरी ने गाड़ी से मेरे गाँव पहले भिजवा दिया था। वे समझे कि मेरी मौत हो चुकी है इसीलिए केवल सामान भेजा गया है। सभी ने बहुत समझाया परन्तु सावित्री को तब तक संतोष नहीं हुआ जब तक उन्होंने मुझे प्रत्यक्ष देख नहीं लिया।

अंतत: 1977 के आम चुनाव में श्रीमती इंदिरा गाँधी और उनकी पार्टी को बुरी तरह पराजय मिली। यह भारतीय लोकतंत्र की अभूतपूर्व विषय भी थी। देश से आपातकाल हटा, हम सब रिहा हुए वे सुखद क्षण हमारे लिए अब केवल यादगार रह गए हैं। बाद तो सत्ता ने अपना प्रभाव दिखाया और राजनीति सेवा की बजाय एक विशेष किस्म के लोगों की क्रीतदासी बनकर रह गई इसके हम सब भुक्त भोगी हैं। मीसा और आपातकाल के खिलाफ भारत में एक बड़ा संघर्ष लड़ा गया और सच में तो वह संघर्ष आजादी के संघर्ष से किसी भी तरह से छोटा नहीं था। गाँधी जी के नेतृत्व में लड़ा गया संघर्ष परकीयों के साथ था जबकि अपनों से लड़ना उससे भी अधिक कठिन दु:खदायी होता है। पहली आज़ादी की पूरी लड़ाई में मिलकर जितने लोग जेल में नहीं गए थे उससे कहीं ज्यादा आपातकाल के खिलाफ़ लड़ी गई दूसरी लड़ाई में सत्याग्रहियों ने आंदोलन किया। इस दूसरी आज़ादी की लड़ाई में सवा लाख से ज्यादा लोगों ने स्वयं को जेल के लिए प्रस्तुत किया। इस सबके बावजूद आपातकाल के खिलाफ़ संघर्ष को भारत के इतिहास में उपयुक्त स्थान भी नहीं मिल सका। इसके लिए दूसरे कोई जिम्मेदार नहीं है। विभिन्न विचारों, वर्गों और समुदायों में बिखरी हुई तत्कालीन और वर्तमान राजनीति ने अपने मूल मुद्दे ही छोड़ दिए। प्रसिद्ध उपन्यासकार सलमान रश्दी के अनुसार – ''इमर्जेंसी 615 दिन लम्बी रात थी, लेकिन इस अँधेरे में कुछ ऐसे सवाल पैदा हो गए हैं जिनका अभी तक जवाब नहीं मिला। इन सवालों पर लोकतंत्र के लिए सक्रिय इमर्जेंसी-विरोधी ताकतें भी गौर नहीं कर पाईं। उनसे उम्मीद की जाती थी कि जब लोकतंत्र बहाल हुआ तो सबसे पहले इन्हीं सवालों को हल करते। दूसरी आज़ादी के कर्णधारों को इसके लिए फुरसत ही नहीं मिली। नतीजा यह हुआ कि अब सरकार और पार्टी में फ़र्क़ खत्म सा हो गया है।'' सलमान रश्दी से पूरी तरह सहमत न होते हुए भी इतना तो माना ही जा सकता है कि आज़ादी के दीवानों से कहीं भूल अवश्य हुई है जिसका नतीजा पता नहीं हमें कब तक भुगतना पड़ सकता है।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

अरुण कुमार भगत

आपातकाल में बिहार के साहित्यकारों की भूमिका

सन् 1974 के बिहार-आंदोलन और उसके बाद 25 जून, 1975 को घोषित आपातकाल के दौरान बिहार के साहित्यकारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस आंदोलन के दौरान पहली बार साहित्यकार नुक्कड़ों पर उतरे और भ्रष्टाचार, बेरोज़गारी, शैक्षणिक अराजकता और महँगाई के खिलाफ़ आवाज़ बुलंद की। संपूर्ण क्रांति के पुरोधा पुरुष लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने न सिर्फ स्वयं कविताएँ लिखीं अपितु एहसास भी किया कि इसमें जन-जागरण की क्षमता है। बिहार के दर्जनों कवियों ने तानाशाही सरकार के खिलाफ़ लेखनी उठाई और अग्निवर्षा की।

कवि-गीतकार गोपीवल्लभ सहाय को 'जहाँ-जहाँ जुल्मों का गोल, बोल जवानों हल्ला बोल' या फिर 'नेताओं को करो प्रणाम', 'भज लो राम, भजा लो राम' सरीखी पंक्तियाँ सुनते ही जयप्रकाश नारायण के आंदोलन की याद ताज़ा हो जाती है। सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ़ जे. पी. के इस अभियान में बिहार में लेखकों-कवियों, रंगकर्मियों की सक्रिय हिस्सेदारी रही थी और स्वतंत्रता आंदोलन के बाद शायद यह पहला मौका था जब सृजनकर्म से जुड़े लोग सड़कों पर उतरे और 'तख्त बदल दो, ताज बदल दो, तानाशाहों का राज बदल दो' सरीखे नारों के साथ लोगों को संपूर्ण क्रांति आंदोलन से जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।'

बिहार-आंदोलन को जिन प्राध्यापकों ने वैचारिक सहयोग देकर पुष्ट बनाया, आंदोलन समर्थक साहित्य का सृजन किया, आपातकाल में भी विभिन्न प्रकार की मौलिक अनुदित पाठ्य सामग्री तैयार करते रहे और अपनी लेखनी से उसे जाग्रत और उद्दीप्त करते रहे। उनमें डॉ. अमरनाथ सिन्हा का स्थान सर्वोपरि है। बिहार आंदोलन के दौरान जून 75 तक उन्होंने 'प्रदीप' में जो लेखमालाएँ लिखी थीं और उसके माध्यम से बिहार-आंदोलन की जो वैचारिक पीठिका बनाई थी उसे बिहार भूल नहीं सकता।

इस पूरे आंदोलन के दौरान एक बात जो बहुत चौंकाती है और वह है दक्षिणपंथी व वामपंथी लेखकों, कवियों और चिंतकों का खुद को इस आंदोलन से लगभग अलग रखना। हालाँकि शुरुआत में वाम विचारधारा से जुड़े बाबा नागार्जुन और मधुकर सिंह ज़रूर इस आंदोलन से जुड़े लेकिन बाद में वे इस आंदोलन से अलग हो गए।

आपातकाल में हिंदी लेखकों में बाबा नागार्जुन का रोल सबसे ज़्यादा रोचक रहा। बचपन का यह लेखक जयप्रकाश नारायण के साथ आंदोलन में शरीक हुआ। रेणु की तरह बिहार सरकार का माहवार वजीफा ठुकराया। चौराहों पर चीख-चीखकर अपनी कविताएँ सुनाई और बिहार-आंदोलन को तेजस्विता दी, गिरफ्तार हुए। इसके बाद जेल से छूटकर आने के बाद बाघिन के इस रचयिता ने बड़ी विचित्र भूमिका निभाई। 'पहल-आठ' ने नागार्जुन की दस कविताएँ उनकी जनवादी होने का प्रमाण देती हैं। संपूर्ण क्रांति

के धुरंधरों की धोखाधड़ी से देश की जनता को एक नए स्तर से परिचित कराती है। बिहार के जन आंदोलनों के सिलसिले में नागार्जुन का कहना है कि मैं वेश्या की गली में जाकर लौट आया। 9 जुलाई, 1975 को लिखी उनकी पहली कविता के दो नमूने :

खिचड़ी विप्लव देखा हमने,
भोगा हमने क्रांति विलास,
अब भी खत्म नहीं होगा क्या
पूर्ण क्रांति का भ्रांति विलास
उधर दुधारू गाय खड़ी थी
इधर सरकारी बक्कर था
समझ न पाओगे वर्षों तक
जाने कैसा चक्कर था
तुम जन कवि हो, तुम्हीं बताओ
खेल नहीं था, टक्कर था।

अपनी चौथी कविता में उन्होंने लोकनायक के लिए लिखा :

काहिल, आराम पसंद, संशयशील,
डरपोक
कपटी क्रूर;
भले मानसों से दिन-रात
घिरा होना सुख क्या था
आखिर।

बिहार प्रांत देश का नेतृत्व कर रहा था और आपातकाल में अन्य प्रांतों की नज़रें बिहार की ओर लगी हुई थीं। बुद्धिजीवी वर्ग के नैतिक समर्थन के साथ-साथ सक्रिय समर्थन भी प्राप्त होने लगा और भूमिगत साहित्य का काम काफी तेजी से बढ़ने लगा। इस कार्य को करने में कठिनाइयाँ ही कठिनाइयाँ थीं, साथ ही खतरा ही खतरा नज़र आता था, लेकिन इस कार्य में लगे कार्यकर्ताओं की सावधानी और पुलिस विभाग की निष्क्रियता के कारण कठिनाइयाँ कभी बाधक नहीं बन पाई।

जयप्रकाश नारायण का आंदोलन सिर्फ सामाजिक और सियासी नहीं था। बल्कि उसने देश में एक नए काव्य आंदोलन की भी शुरुआत की, जहाँ कविताओं ने अपना व्यापक श्रोता वर्ग बनाया। भ्रष्ट सरकारों के खिलाफ़ आंदोलन अधिकार जनता के पास हों। 1974 आंदोलन की बुनियाद दरअसल जे.पी. की इसी सोच पर आधारित थी।

आज़ादी के बाद साहित्यकारों की जन आंदोलन से जुड़ने की भूमिका लगभग समाप्त हो गई थी, लेकिन जे.पी. आंदोलन ने लेखक, कवियों को भी नई सोच के साथ सामने आने के लिए प्रेरित किया 18

बिहार-आंदोलन ने न केवल विवेचनाशील गद्यकार प्राध्यापकों को कुरेदा, बल्कि प्राध्यापकों में भावुक कवि भी उद्वेलित हुए। आंदोलन समर्थक प्राध्यापक कवियों ने न केवल पत्र-पत्रिकाओं, बुलेटिन

और पर्चों में लिखा, बल्कि नुक्कड़ कवि सम्मेलनों में भी भाग लिया और संघर्षशील रचनाकारों का एक संवर्ग बनाया, जिसने छात्र-आंदोलन को जन आंदोलन का स्वरूप देने की चेष्टा की। ऐसे प्राध्यापक कवियों में डॉ. रामवचन राय, प्रो. रविंद्र राजहंस, डॉ. श्याम सुंदर घोष, डॉ. शंभुशरण, डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद आदि उल्लेख्य हैं।

1974 के जे.पी. आंदोलन के साथ जुड़कर खासकर बिहार के रचनाकारों ने रेणु के नेतृत्व में सड़कों पर उतरकर जागरण का काम किया। रचनाकारों ने पहली बार बिहार में जुझारू भूमिका अपनाई थी। रेणु की वह भूमिका उन्हें बाकी रचनाकारों की तुलना में एक विशिष्ट धरातल देती है। आंदोलन के दौरान गीतकार गोपीवल्लभ सहाय ने दर्जनों गीत रचे । इस नुक्कड़ काव्य आंदोलन का उल्लेख वे अक्सर करते थे। अपनी कविता पुस्तक 'बंजर के बीज' में उस दौर को याद करते हुए उन्होंने लिखा था कि कविता से लोगों को सीधे संबोधित करने का दौर 1974-77 का वह कठिन समय था, जिसे हम रेणु समय कह सकते हैं। रेणु के साथ शुरुआत में परेश सिन्हा, गोपीवल्लभ सहाय, रविंद्र राजहंस, बाबूलाल मधुकर, बालेश्वर विद्रोही, विकट लाल धुआँ, सत्यनारायण, रॉबिन शॉ पुष्प, राज इंकलाब और रवींद्र भारती सहित दूसरे कवि इस आंदोलन में शामिल हुए।

बाबूलाल मधुकर ने अपनी मगही कविताओं से आंदोलन की ज़मीन तैयार की। बाबूलाल मधुकर ने अपनी मगही कविताओं का अलग संसार रचा। 'हमरो हाथ में भाला हो' में जब वे कहते हैं तो तनिक न रुकबो देखा। पेट में लहकल जोआला हो। तू बंदूक-पिस्तौल संभाल। हमो हाथ में भाला हो, ''तो एक आक्रोश पूरा का पूरा दिखाई देता है।''

आम लोगों की भाषा और शैली में इन कवियों ने रचनाएँ कीं, और लोगों ने इन्हें आंदोलन में हथियार की तरह इस्तेमाल किया। यही कारण है कि नुक्कड़ काव्य आंदोलन की गूँज सिर्फ बिहार में ही नहीं सुनाई दी, बल्कि बिहार के बाहर के कवि और लेखक भी इस आंदोलन से प्रेरित-प्रभावित हुए। जे.पी. पर पुलिस ने जब लाठियाँ बरसाईं थीं, तब धर्मवीर भारती ने 'मुनादी' लिखकर इस लाठीचार्ज का विरोध किया था। भारती के अलावा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने 'लड़ाई जारी है', रघुवीर सहाय ने 'न टूटे तिलिस्म सत्ता का, मेरे अंदर एक कायर टूटेगा' लिखी तो भवानी प्रसाद मिश्र ने आपातकाल के दौरान प्रत्येक दिन एक कविता लिखने का ऐलान कर इस काव्य आंदोलन को ताकत दी।

संपूर्ण क्रांति आंदोलन में कवियों के इस रचनात्मक हिस्सेदारी से जे. पी. भी प्रभावित थे। जे. पी. ने एक बार खुद आग्रह कर आंदोलन से जुड़े इन कवियों को अपने निवास पर बुलाकर उनकी कविताएँ सुनी थीं। आंदोलन के दिनों के चर्चित कवि गोपीवल्लभ सहाय के शब्दों में, 'चौहत्तर आंदोलन के कवियों के नसीब में एक ऐसी शाम भी आई, जब उस क्रांतिकारी आंदोलन के शिल्पकार लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने उन्हें बुलवाकर तीन घंटे तक कविताएँ सुनीं।'

करीब चार दशक से ज़्यादा के राजनैतिक- सामाजिक सफर में उन्हें इस बात का पता चल गया था कि समाज और देश पर उसके साहित्यकारों-रचनाकारों का भी अच्छा ख़ासा प्रभाव होता है। साहित्यकार, रंगकर्मी, कलाकार किसी न किसी रूप में समाज से जुड़ा होता है और एक बड़े वर्ग को वह अपने सृजनकर्म से प्रभावित करता है। जे. पी. इस सच को जानते थे और रचनाकर्म के महत्त्व का समझते भी थे। यही वजह है कि दिनकर, रेणु, रामवृक्ष बेनीपुरी, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन, प्रभाष जोशी,

निर्मल वर्मा, बी. जी. वर्गीज सरीखे रचनाकार-पत्रकारों से जे. पी. ने जब संपूर्ण क्रांति का नारा दिया और आंदोलन का एलान किया तो साहित्यकारों ने भी आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

कविवर गोपीवल्लभ सहाय हिंदी के ऐसे हस्ताक्षर हैं जिनकी रचनाओं ने सन् 74 के बिहार आंदोलन और उसके बाद आपातकाल के दौरान संपूर्ण क्रांति के समय लोकचेतना जाग्रत करने में अपने दायित्व का निर्वहन किया। पद, पदार्थ और पुरस्कार के लोभ में कविश्री सहाय ने मन की अभिव्यंजना को न तो कभी तोड़ा-मरोड़ा और न ही कभी किसी को प्रसन्न करने के लिए कविताएँ लिखीं। जब जी में जो आया लिखा और एक हस्तसिद्ध कवि की तरह सामाजिक सरोकार को रेखांकित किया। उन्होंने इस बात की कभी परवाह नहीं की कि उनके कवि कर्म के कारण उनकी सरकारी सेवा दाँव पर लग जाएगी। सन् 1975 ई. में आपातकाल के दौरान पुलिस विभाग में रहकर भी पुलिस के तानाशाही रवैये के खिलाफ़ उन्होंने लिखा और जमकर लिखा। उन्होंने पटना की नुक्कड़ कवि गोष्ठियों में अपनी कविताओं को सुनाकर अदम्य साहस का परिचय दिया। सन् 74 के छात्र आंदोलन के समय उनकी 'हल्ला बोल' शीर्षक कविता काफी चर्चित हुई। 9 अप्रैल 1974 को पटना के गाँधी मैदान में लोकनायक जयप्रकाश जी की पहली सभा में इस रचना को उन्होंने सुनाया था।

जहाँ-जहाँ जुल्मों का गोल
बोल जवानों हल्ला बोल
नेताओं के चिकने चोल
काला चेहरा उजला खोल
झूठे नारे, नकली ढोल
लंबी कथनी करनी गोल
खुलती जाती सबकी पोल
बोल जवानों हल्ला बोल

बिहार सरकार के पुलिस विभाग में जनसंपर्क पदाधिकारी तथा विभाग से प्रकाशित 'आरक्षी' पत्रिका के संपादक के पद पर रहते हुए भी 1974 के जे. पी. आंदोलन के वक्त कविवर गोपीवल्लभ ने नुक्कड़ गीतों के माध्यम से न केवल अपने जागरूक नागरिक के कर्त्तव्यबोध का एहसास कराया बल्कि आम-जनमानस को झकझोरा। इसी प्रेरणा से शाम को नुक्कड़ों-चौराहों पर आंदोलन के पक्ष में जनता को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से यह कवि कविता पाठ में सम्मिलित होता था। 8 मार्च 1974 को जब जे.पी. के नेतृत्व में पटना के गाँधी मैदान में जुलूस निकाला तब उस दिन उन्होंने लिखा-

गाँधी नहीं मरा है
खून वही जो आज हमारी आँखों में उतरा है।
नाम साटकर गाँधी का जो सटे हुए अपने में
जीवित गाँधी देख बौखला रहे वही अपने में
वही बताएँ, जिंदा है गाँधी तो क्या खतरा है?
नासमझों ने तो गाँधी को एक बार मारा है

हमने सोच समझकर लेकिन, लगातार मारा है
गाँधी का यह देश गाँधियों से डरा-डरा है।

बिहार के राज्यपाल ने 7 जनवरी 1974 को बिहार राज्य की दिनों दिन गिरती आर्थिक अवस्था पर चिंता प्रकट की थी। स्पष्ट है कि स्थिति विस्फोटक हो रही थी। शासन का ध्यान आकृष्ट करने के लिए जनसंघ के महामंत्री श्री जगबंधु अधिकारी ने अन्य संगठनों से विचार कर बिहार बंद का आह्वान कर दिया। इस क्रम में कोडरमा में गोली चली।

18 मार्च को छात्र संघर्ष समिति की ओर से प्रांत भर से आए छात्रों का एक विराट् प्रदर्शन आयोजित हुआ। सभी विरोधी दल सदन का बहिष्कार कर बाहर आ गए थे और सरकार ने बाँस-बल्लों से विधानसभा की सुदृढ़ घेराबंदी कर बीएमपी, बीएसएफ तथा सीआरपी के जवानों को तैनात कर दिया था। विशाल छात्र समुदाय शांतिपूर्ण ढंग से प्रदर्शन करते हुए विधानसभा को घेर बैठ गया था। उधर शहर में कांग्रेसी-कम्यूनिस्ट साँठ-गाँठ से गुंडा तत्व खुलकर खेले। सांख्यिकी विभाग, राजस्थान होटल, सर्चलाइट तथा प्रदीप प्रेस में योजनापूर्वक आग लगाई गई और लूटपाट की गई। इसके बाद ही लाठीचार्ज, अश्रुगैस तथा गोलियाँ चलीं। पटना, धनबाद तथा मुंगेर में 'सूट एट साइट' लागू कर दिया गया। 50 से अधिक जाने चली गईं। 18 मार्च से 30 मार्च तक कर्फ्यू की हवा कायम रही। सरकार की तानाशाही और दमन नीति के खिलाफ़ लोगों में भयंकर आक्रोश उपजने लगा था। कविवर सहाय ने उस समय की परिस्थितियों को 'मैंने लिखा लहू से तो' कविता के निम्नलिखित पंक्तियों में रेखांकित किया है।

दरवाज़े पर दिया जलाकर
आँगन में तूफान दिया

मैंने समझा जिसे सुधाकर
उसने विष का दान दे दिया

आपातस्थिति लागू रहने तक संविधान के अनुच्छेद 14, 21, 22 के अंतर्गत बुनियादी अधिकारों को लागू करने के लिए न्यायालय में जाने पर पाबंदी लगा दी गई। इस आदेश को राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 359 के अंतर्गत जारी किया। यह जम्मू व कश्मीर प्रांत पर लागू नहीं माना गया, परंतु इसके अधिकार क्षेत्र में भारत में रह रहे विदेशी भी आते थे।

अंतिम अस्त्र के रूप में सरकार 44वाँ संविधान संशोधन (जो बाद में 42वाँ संशोधन के नाम से पारित हुआ) को ले आई। यह विधेयक लोकसभा में 1 सितंबर 1976 को प्रस्तुत किया गया। वहाँ यह 3 नवंबर को 366 के मुकाबले 4 मतों से व राज्यसभा में 11 नवंबर को 191 के मुकाबले 0 मतों से पारित हो गया तथा 18 दिसंबर 76 को उसे कानून का रूप दे दिया गया। इस विधेयक पर चर्चा के दौरान विपक्ष ने संसद का बहिष्कार किया। यह केवल एक संशोधन नहीं था इसके द्वारा संविधान में 59 परिवर्तन किए गए, परंतु उन्हें एक विधेयक के रूप में सामने लाया गया था। इस संविधान संशोधन द्वारा भारत के जनतांत्रिक संविधान को लगभग एकाधिकारी संविधान में बदल दिया गया था। इसने संविधान की सर्वोच्चता समाप्त कर दी। उसे अपनी ही उत्पत्ति अर्थात् संसद का अनुगामी बना दिया। सत्ता पर

एकाधिकार के लिए संविधान संशोधन किए जाने से कविवर सहाय मर्माहत हुए। उनकी पीड़ा 'इस एक बयान तक' में मुखरित हुई है—

दर्द का तय न हो सका सौदा
देने को हम तो जान तक आए

जुर्म की हद कहाँ-कहाँ तक हो
हम अभी संविधान तक आए
रोज़ मर-मर कर जी रहे हैं हम
कोई कितना मसान तक आए।

गोपीवल्लभ के गीत उनकी झेली हुई अनुभूतियों से निस्सृत हैं। व्यष्टि जीवन की सच्चाई ही समष्टि जीवन में स्पंदित होती है। यही कारण है कि जब समय ने लोगों के दुःख को देखा और संपूर्ण क्रांति की मशालों को थामने वाली कलम की तलाश की तो इस जनआंदोलन के शिल्पकार लोकनायक जयप्रकाश नारायण की आवाज़ को बुलंद करने वाली एक कलम गोपीवल्लभ की उठी जिसमें आग को गीतों में ढालकर जनता की बेचैनी को शब्द दिया। गोपीवल्लभ का कहना है - ''जो कविता जनजीवन के दुःख-दर्द को नहीं सहलाती वह चिरजीवी नहीं हो सकती।'' समय के आह्वान पर गोपीवल्लभ की कलम ने गर्म स्याही से गीत लिखे जिनसे लोक आकांक्षा मुखरित हुई। वह जो आँसुओं को पीकर फूलों की हँसी उगाता हो, काल के कुठाराघातों को अपने सीने पर झेलकर समय के धूल-धूसरित पाँवों की थकान मिटाता और जो चौराहे पर भौंचक खड़े इतिहास को सही दिशा की ओर मोड़ता हो उसे ही सच्चा कवि धर्म मानना चाहिए। अपने आँसू से बहुत-से मुस्कुराते गीत-पुष्प खिलाएँ हैं और दूसरी ओर राजमार्ग पर भटके हुए विश्वासों को गीत में दीक्षित किया है। जो 'रोटी पर भूखे का नाम' लिख सकें और नुक्कड़ों की गलियों की उदास धड़कनों में जीवन संगीत भर सके। गोपीवल्लभ के गीतों में भाषा, भाव और शिल्प की यही नागरी निष्ठा है।

सन् 1975 में जब आंदोलनकारियों द्वारा सत्ता के समानांतर गणतंत्र दिवस मनाया जा रहा था तब कविवर सहाय ने 'नेताओं को करो प्रणाम' शीर्षक कविता में व्यंग्य किया है। उनकी ये पंक्तियाँ देखिए

नेताओं को करो प्रणाम
भज लो राम, भजा लो राम।
नेता ईश्वर, जनता धाम
भज लो राम, भजा लो राम।

आपातकाल के परितप्त परिवेश और संतप्त संवेदना का स्वानुभूति संस्पर्श हुआ है। कविवर परेश सिन्हा की कविता 'मौसम का हाल' में मिथक और प्रतीकों के सहारे उनकी अभिव्यंजना मुखर और प्रखर हो गई है। तानाशाही के खिलाफ़ संघर्ष के लिए उन्होंने जन-जीवन को ललकारा है। अमूर्त भावनाओं और आनुभूतिक विषर्यय को कविवर सिन्हा ने वाणी दी है।

किसने कहा इनसे कि शकुनि मर चुका है
दुर्योधन की टूट गई है जंघा

द्रौपदी को निर्वस्त्र करने वाले हाथ लुंज पड़ गए हैं
किसने सुना है कौरव-पत्नियों का विलाप?
यह सब मात्र पांडवों का भ्रम था

सारा कुछ माया थी कृष्णा की
उनका ही था कमाल यह कोई कविता नहीं है
यह है मौसम का हाल।

आपातकाल में आम लोगों में निराशाजनक व्यवहार से उपजी परिस्थितियों का चित्रण कविवर परेश सिन्हा ने 'अपने भीतर' शीर्षक कविता में किया है। जन-जीवन की चुप्पी पर कवि को असहय पीड़ा हुई है। कवि का संताप निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यंजित हुआ है-

मैंने अक्सर खुद से सवाल किया है
कि सारा कुछ सब चुपचाप झेलते जाना
एक खुद्दार कौम के लिए क्या मुनासिब है
और तब
मुसलमान ख़ामोश लम्हों की एक लंबी
चादर तन गई है, गर्द-गिर्द
अपनी ही धड़कनों को सुनकर
अपने होने का एहसास लौटा पाया हूँ।

बिहार के चर्चित नुक्कड़ कवि परेश सिन्हा की रचनाओं में आपातकालीन परिस्थितियों से घायल मन की व्यथा गुंफित हुई है। उन्होंने भाषा के नए मुहावरे भी गढ़े हैं। भाव भूमि की दृष्टि से उनकी रचनाओं में प्राणवत्ता का संचार हुआ है। मानवीय संवेदनाओं की शाश्वतता के कारण यह रचना युगंकर हो गई है। देखिए निम्नलिखित पंक्तियाँ -

आँखों से पानी के पर्दे हैं टाँग दिए
शब्द के अर्थों से गूंगापन माँग लिए
यादों के तलछट पर सपनों की काई-सी,
पसर गई दर्दीली शाम।

विधि की विडंबना है कि जे.पी. को अंग्रेज अपना सबसे बड़ा शत्रु मानते थे और स्वतंत्र भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी भी उन्हें देशद्रोही, गद्दार और शत्रु मान बैठीं। जे. पी. भारत के अकेले ऐसे नेता हैं, जिन्हें ब्रिटिश हुकूमत ने जितना पीड़ित-प्रताड़ित किया उससे कहीं अधिक कांग्रेस की हुकूमत ने। 4 नवंबर, 1974 को जब जे. पी. पर पटना में लाठीचार्ज हुआ था, उस समय स्वयं उन्होंने कहा था कि अंग्रेजी राज में किसी ने उन पर लाठी नहीं मारी थी, यह अनुभव तो इंदिरा गाँधी शासन में ही हुआ।

आपातकाल की घोषणा के साथ ही रातों-रात लोकनायक जयप्रकाश सहित अनेक स्वाधीनता संग्राम के सैनानियों को जेल के सीखचों में बंद कर दिया गया। सत्ता की तानाशाही ने उसे बेकार और

फालतू समझकर उसकी बोलती बंद कर दी। आपातकाल की इन्हीं स्थितियों को चित्रित करती हैं कविवर रॉबिन शॉ पुष्प की कविता 'जंगल में आग की' ये पंक्तियाँ –

जो आज़ादी के लिए खून देते रहे,
बीमार और कमजोर होकर
रद्दी की टोकरी में पड़े हैं...
और जो केवल भाषण देते रहे
आज देश के भाग्य का निर्णय करते हैं।

''कुर्सीवाद नेताओं की चरित्रबलहीनता तथा संस्कारहीनता का सहज परिणाम था। कहते हैं, जैसा राजा वैसी प्रजा।'' प्रजातंत्र में इसके विपरीत स्थिति भी हो सकती है जैसी प्रजा वैसा राजा। अपने देश की स्थिति कुछ विचित्र है। मध्ययुगीन सामंती मानसिकता से अपने देश की जनसंख्या का एक बड़ा अंश अब भी मुक्त नहीं हो सका है। फलत: व्यक्ति पूजा की प्रवृत्ति प्रबल है। दूसरी ओर जनतंत्र के आदर्श भी हमारे प्रेरक रहे हैं। सामंती मानसिकता वाली अधिसंख्यक जनता को जनतांत्रिक मुखौटापरस्त नेताओं द्वारा बरगलाना यहाँ आसान रहा है। मध्ययुगीन मानसिकता का एक लक्षण यह भी है कि हम सहज ही विश्वास कर लेते हैं और वह भी खतरनाक सीमा तक।

भारतीय लोकतांत्रिक परिदृश्य में श्रीमती गाँधी ने कुर्सी के खेल की परंपरा विकसित कर ली थी। सारी सत्ता उन्होंने मुट्ठी में कर ली थी। उनके इशारे पर प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों को बदलना और पार्टी अध्यक्षों को बदलने के खेल पर कविवर परेश सिन्हा ने तीखा व्यंग्य किया है। 'सत्ता का खेल' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए –

खेल भाई खेल, खेल भाई खेल
कैसा गजब यह सत्ता का खेल।
बेटे को हाथ लगा कार-कारखाना
पोसपुत के हाथ आई भारत की रेल
माता जी खेल रहीं कुर्सी का खेल
खेल भाई खेल, खेल भाई खेल।,

आपातस्थिति की घोषणा के साथ ही श्रीमती गाँधी ने सूचना एवं प्रसारण मंत्री पद से इंद्र कुमार गुजराल को मुक्त कर इस विभाग की बागडोर विद्याचरण शुक्ल के हाथों में थमा दी। उन्हें बता दिया गया कि आपातस्थिति के दौरान स्थिति पर नियंत्रण रखने तथा वातावरण को अनुकूल बनाए रखने की जिम्मेदारी प्रमुख रूप से इसी विभाग की ही होगी। विद्याचरण शुक्ल ने भी बिना विलंब किए सभी प्रकार के प्रचार एवं प्रसार माध्यमों पर पंजा कसना प्रारंभ कर दिया। सबसे पहले तो उन्होंने अपनी पसंद कुछ अधिकारियों को अपने विभाग में शामिल करवाया और फिर अपने करतब दिखाने आरंभ किए। श्रीमती गाँधी ने स्वयं भी इस विभाग की नीतियाँ निर्धारित करवाने तथा उनके क्रियान्वयन की पूछ- परख करने में व्यक्तिगत रुचि ली। कविवर तपेश्वर नाथ ने 'समाजवाद आ गया' शीर्षक कविता में इस युग – यथार्थ का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है –

समाचार पत्र जल रहे हैं
रोशनी बुझ गई
जनवाणी ठप
बख्त्यार खिलजी फिर
नालंदा जलाने आ गया

और लेखक,
जो एल. एस. डी. के नशे में चूर था,
अचानक गोली के धमाके से चौंककर पूछता है
'सड़कों पर यह कौन-सी सदी बीत रही है?'
'मुनाफाखोर' आदमखोर कहते हैं चौंको मत, चैन से सोओ
यह भारत का स्वर्ण युग है!

11 अप्रैल, 1972 की रात कुख्यात बागी मोहर सिंह जे. पी. से मिला और उसने हथियार डाल उसके ऊपर दो लाख रुपए का ईनाम था। जे. पी. के चरण पकड़कर उसने कहा, ''आप चाहें तो फाँसी पर लटका दें और चाहें तो बचा लें। हम कुछ नहीं कहेंगे। हमने तो अपना सिर आपके चरणों में डाल दिया है।'' ऐसा था जे. पी. का व्यक्तित्व-उसमें 'चंदन की शीतलता थी' और चुंबक का आकर्षण भी।

लोकनायक के इन्हीं करुणाओं से प्रेरित होकर आपातकाल के चर्चित कवि सत्यनारायण की अपराधों की घाटी में शीर्षक कविता में वेदना का भाव उभरा है। उनकी रचनाओं में सामाजिक पीड़ा टीसती हुई सी महसूस होती है, जिसके कारण बड़ी संख्या में लोगों ने हथियार उठाया तथा समाज व व्यवस्था को चुनौती दे रहा है। चंबल के बागियों के आत्मसमर्पण और आपातकाल से पहले की स्थितियों का चित्रण कविवर सत्यनारायण की निम्नलिखित पंक्तियों में है हुआ —

सवाल पिछवाड़े के बरगद को
ज़मीन की सतह तक
छील छाँटकर निश्चित हो जाने का नहीं है
हालात जड़ों के साथ
गहरे बहुत गहरे उतर चुके हैं
वैसे होने को कुछ भी हो सकता है
मगर आँखों पर
काला चश्मा डालकर तुम
अपने आपको धूप और लू से बचा लो
यह नहीं हो सकता
भिंड और मुरैना तो बस पाते हैं।

सरल भाषा में सीधे-सीधे जनता को संप्रेषित इनमें से कई कविताएँ आंदोलन का पाथेय गईं।

रविंद्र राजहंस का 'जला आदमी' सत्यनारायण का 'कितने दिन' गोपीवल्लभ का भज लो भजा लो राम आदि की पंक्तियों के पाठ से न केवल नुक्कड़ों पर खड़े लोग प्रभावित हुए, बल्कि सत्याग्रहियों के कंठों के माध्यम से ये पंक्तियाँ जेलों के भीतर तक पहुँच गईं और कारावासियों का उत्साहवर्धन करती रहीं।

कविवर सत्यनारायण की 'कितने दिन...?' की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

अजब हाल है, सब कुछ गोरखधंधा है
जनता की गर्दन शासन का फंदा है
कसती जाती फाँस, रहनुमा अंधा है
होश करो, यह हिटलरशाही कितने दिन
कितने दिन?

'बंदी होगी, धरना होगा' शीर्षक कविता में कविवर सत्यनारायण ने आपातकाल की परिस्थितियों का जनजीवन की सामान्य भाषा में सुंदर चित्रांकन किया है। सन् 1974 के आंदोलन और उसके बाद पटना के नुक्कड़ों पर काव्य पाठ करते हुए कविवर सत्यनारायण के निम्नलिखित छंद बरबस लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। सफेदपोशों से हिसाब करने का आह्वान करते हुए देखिए कवि क्या लिखते हैं -

बंदी होगी, धरना होगा,
जो भी होगा, करना होगा।
नंगी देह, पेट खाली है
भइया कैसी बदहाली है
फिर भी, देखो, नेताओं -
सेठों की होली-दिवाली है
इन सफेदपोशों से अब तो
सब हिसाब तय करना होगा।

बिहार के ख्यात कवि पद्मश्री पोद्दार रामअवतार अरुण की कविता 'निज को बलिदान करो साथी' ललकारती है और चुनौती देती है। ये रचना आपातकाल की भीषण विभीषिकाओं से संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। कविवर अरुण सभ्यता और संस्कृति के पर्याय गंगा, जमुना पर स्वाभिमान के साथ राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए अपने आप को न्यौछावर करने का आह्वान करते हैं। देखिए उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ -

चुप रहे सभी, तब तुम बोले,
सुन अनि पवन, किसलय बोले
उनचास पवन भी सुहराए -
सन - सनन - सनन हौले-हौले
वासंती विप्लव पतझर का
कितना अनमोल अनोखा रे

सत्ता ने धोखा दिया किंतु,
तुमने न दिया है धोखा रे

कविवर केदारनाथ लाभ ने 'साथी नहीं धुआँओ' शीर्षक कविता में युद्ध क्षेत्र में युद्धकर्म का बड़ा ही इंकलाबी चित्रण किया है। इस कविता की एक-एक पंक्ति जनजीवन में रक्त का संचार तेज करने वाली है। सांग्रामिक चित्रण का तेवर इतना उप्लवी हो गया है, जो मानो मुर्दों में भी जान फूँकने वाला है। ऐसा लगता है कवि ने स्वयं क्रांतिकारी की भूमिका का निर्वहण किया है। कविवर लाभ की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

इस क्रांति यज्ञ की तुम सर्वात्म समर्पण
करना तुम्हें पड़ेगा, कुछ और रक्त-तर्पण
हिल जाएगी धरित्री, गल जाएगा हिमालय
कुछ और जोर मारो, है बाट जोहती जय
तम काँपने लगा है, नूतन विहान लाओ
अंगार धार में निज कुछ और ज्वार लाओ

तुम खड्ग-पथ पर चल, इतिहास नव बनाओ
तुम ताल में लहू के, साथी विहँस नहाओ।

राष्ट्रीय चेतना के कवि डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद की तीन रचनाएँ 'आंदोलन की कविताएँ' में शामिल हैं। सन् 1974 आंदोलन के दौरान 'एक सड़ी लाश' नामक इनकी रचना काफी चर्चित हुई थी। अनेक स्मारिकाओं में भी यह प्रकाशित हुई थी। इस कविता के माध्यम से डॉ. प्रसाद ने कांग्रेस की तानाशाही व्यवस्था को सड़ी लाश के रूप में अभिव्यंजित किया है। इस कविता की कुछ पंक्तियों को देखिए-

सफेद धुले कपड़ों में
एक सड़ती हुई लाश
संगीनों के सहारे
हमारी गर्दन पर सवार है

नौजवानों ने
अपनी बलिदानी मुस्कानों से
उसे सहमा दिया है।
लाश, गर्दन से नीचे
सरकने लगी है।

बिहार के ख्यात कवि डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद 'सलीब के टुकड़े' शीर्षक कविता में सन् 1974 की न केवल परिस्थितियों का सटीक चित्रण किया है अपितु उत्तरार्द्ध में व्यवस्था के ख़िलाफ़ विप्लव का भी शंखनाद किया है। आंदोलन के आहवान के बीच भी उनकी कविताओं में जनजीवन का शुक्लपक्ष

दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने केवल भूख, प्यास और संत्रास की ही बात नहीं की है अपितु जन न्यायालय की बात कहकर उसे समग्रता प्रदान की है। 'सलीब के टुकड़े' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं –

सलीब के टुकड़ों ने
अपराधियों को घेर लिया है
न्याय के तख्त पर आसीन
महाकाल ने मुजरिमों को पहचान लिया है।
अभिनंदन है, युगांतर का!

काव्य पुरुष डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद ने 'नया अभिमन्यु' शीर्षक कविता में तानाशाही सत्ता को ललकारा है। गर्जना और हुंकार के स्वर से मानो वातावरण अनुगुंजित हो रहा है। उनकी अंतश्चेतना की असीम ऊर्जा नए महाभारत में विजयी का उद्घोष कर रही है। 'नया अभिमन्यु' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

दु:शासन! सँभल जाओ
दुर्योधन! सावधान हो जाओ

नया अभिमन्यु
विषैला चक्रव्यूह तोड़ेगा,
नए महाभारत में
नया युग अँगड़ाई लेगा।

सन् 1974 के दौरान भ्रष्टाचार ज़ोरों पर था। राजनेताओं के शह पर अधिकारी–कर्मचारी घूस लेने लगे थे। किसी का कोई नियंत्रण नहीं रह गया था। उस समय की इन्हीं परिस्थितियों को अभिव्यक्ति दी है कविवर रविंद्र राजहंस ने अपनी कविता 'जला आदमी' में। कविवर राजहंस ने सामाजिक दुर्व्यवस्था का यथार्थ चित्रण इस कविता में किया है। देखिए निम्नलिखित पंक्तियाँ–

वहाँ सवाल पूछता है एक जला आदमी
अपने नगर में कहाँ रहता है भला आदमी?
सरकारी विश्वकर्माओं के बीच?
जिनकी पाचन शक्ति बड़ी कड़ी है
लोहे की छड़, सीमेंट, ईंट पत्थर –
सब कुछ भस्म हो जाता है
जिनकी अँतड़ियों के अंदर।

14 अप्रैल 1974 को पटना में अनेक स्थानों पर अनशन और धरना के कार्यक्रम आयोजित हुए, जिनमें लगभग पंद्रह हजार लोगों ने भाग लिया। बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन के बरामदे पर सम्मेलन अध्यक्ष रामदयाल पांडे के नेतृत्व में कई साहित्यकार भी अनशन पर बैठे, जिनमें रेणु जी, डॉ. मुरलीधर

श्रीवास्तव, डॉ. सीताराम दीन और अमरनाथ सिन्हा आदि शामिल थे।

अनशन के बाद 'शीर्षक कविता में कविवर रविंद्र राजहंस ने भ्रष्टाचार में लिप्त व्यवस्था पर करारा चोट किया है। यह कविता 23 अप्रैल 1974 को पहली बार पटना सेंट्रल जेल के सामने 'इंडियन नेशनल' समाचार पत्र के पास हुए नुक्कड़ कवि गोष्ठी में सुनाई गई थी। देखिए निम्नलिखित पंक्तियाँ -

अनशन पर बैठ चुके
मत समझो गंगा नहा लिया
जुलूस में नारे लगा चुके
मत समझो सब कुछ है पा लिया
हो गए सबके सब भगत सिंह के भतीजे
इतनी गंभीर समस्याओं के
इतने जल्द नहीं निकलते नतीजे
सभी भ्रष्टाचार से ऊबे हैं
मगर सबके सब उसी में डूबे हैं।

कविवर मुकुटबिहारी पांडे की कविता 'आदमी आखिर आदमी ही तो है' में आम आदमी की पीड़ा और मनोव्यथा का चित्रण किया गया है। स्वाभाविक तौर पर लोकतंत्र के नाम पर अपनाए जा रहे राजतंत्र के कारण मन में उत्पन्न छटपटाहट की व्यंजना हुई है। कविवर पांडे ने जनजीवन की अनुच्चारित पीड़ा की वाणी दी है। कवि महसूस करता है कि कविता के नाम पर समाज की नहीं केवल सरकार की स्वतंत्रता है। उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

उसकी हर स्वतंत्रता छीनी जा रही है
लगता ऐसा है,
कि भारत में जनतंत्र नहीं राजतंत्र है
पूरा देश नहीं, केवल सरकार स्वतंत्र है,
तभी तो जो दिल में आता है वह करती है!
आदमी आखिर आदमी ही तो है!

आपातकाल के दौरान देश भयंकर अकाल से गुज़र रहा था। देश की आधे से अधिक आबादी दाने-दाने को व्याकुल थी। उन्हीं परिस्थितियों को रेखांकित करती है बिहार के रचनाकार सच्चिदानंद आजाद की कविता 'तड़पन'। पेट की भूख मिटाने के लिए रोटी की याचना के बदले सत्ताधारियों के द्वारा कोरे नारों और खोखले आश्वासन से भूख न मिटने का सुंदर चित्रांकन हुआ है। जन-जीवन का भोगा हुआ यथार्थ उभरकर सामने आया है। करुणा और विषाद का मार्मिक चित्रण कविवर आज़ाद की इन पंक्तियों में अपनी करुण कथा-व्यथा बयान कर रही हैं-

मैंने तो अपनी अँतड़ियों को
अपने हाथों से दाबे
कातर भाव आँख में लिए

सिर्फ एक रोटी की याचना की थी
तुमने दिए कोरे नारे
खोखले आश्वासन
इससे जब हमारी भूख नहीं गई
मैंने आवाज़ लगाई
बदले में पाया
लाठी, गोली और जेल।

कविवर चंद्रशेखर सिंह ने 'शील का अभियान' शीर्षक कविता में सत्ताधारियों द्वारा आपातकाल लादने को ठीक करार देने पर क्षिप्रता, तीव्रता और बेधकता के साथ व्यंग्य किया है। उन्होंने आपातकाल को काले रक्त की संज्ञा दी है और उनकी पुनर्व्याख्या में व्यस्त समाज के छोटे-बड़े लोगों पर उपहास किया है। देखिए इन पंक्तियों को -

पेट और पीठ के नंगेपन को
ढाँपती हुई तख्तियाँ
काले रक्त की परिभाषा की
पुनर्व्याख्या में निमग्न
-
शिशु से लेकर सन-से सफेद
बालों वाली इंसानी डंठलें

हिंदी के ख्यात कवि पंडित रामदयाल पांडे की 'होगी तरुणों की क्रांति सफल' शीर्षक कविता में कवि ने सत्ता के खिलाफ बगावत का स्वर बुलंद किया है। जन आंदोलन के लिए लयात्मक यह कविता तब काफी चर्चित हुई थी। कवि ने इस कविता के माध्यम से अपने कवि कर्म के नैपुण्य का भी प्रकटन किया है। उन्होंने इस कविता के माध्यम से संपूर्ण क्रांति का प्रमाणन किया है। देखिए इन पंक्तियों को -

सत्ता हो रुष्ट भले, कवि को
तो सत्य कथन करना केवल
होगा अवश्य ही, दमन विफल,
होगी तरुणों की क्रांति सफल
यह क्रांति सत्य पर आधृत है,
यह क्रांति न्याय की पुकार है।

कविवर पांडे ने आपातकाल के असीम अनाचार को मिथक के सहारे अभिव्यंजना के साथ गाया है। अत्याचार, भ्रष्टाचार की पीड़ा उन्हें कचोटती है, सालती है और फिर भी वे विचलित नहीं होते। कवि आत्मस्थ होकर मिथक के ही माध्यम से जुल्मों सितम की नेस्तानाबूदी पर तुला है। यह कवि की आशावादी दृष्टि को उजागर करता है। कवि की रचना में न केवल तानाशाही सत्ता के खिलाफ़ विद्रोह का स्वर मुखर हुआ है, अपितु उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से युवाओं के नस-नस में रक्त का संचार भी

तेज किया है–

सीमा सहिष्णुता की टूटी
बढ़ गए असीमित अनाचार,
सुरसा–सा भ्रष्टाचार बढ़ा,
हनुमान बना तारुण्य ज्वार,
अतिमूल्य वृद्धि की शूर्पणखा
फैलाती मायाजाल प्रबल
होगी तरुणों की क्रांति सफल

हिंदी के ख्यात कवि और गाँधीवादी चिंतक कलक्टर सिंह केसरी की 'एक प्रश्न' शीर्षक कविता में आपातकाल की पीड़ा, उत्क्लेश और उत्पीड़न का प्रवणतापूर्ण प्रकटण हुआ है। उनकी रचनाओं में सत्ता और समाज के बीच के संघर्ष का स्वरण हुआ है। कलह–कोलाहल और आकुल–व्याकुल मन को शब्दित करने में कवि सर्वथा समर्थ है। आपातकाल की परिस्थितियों से उत्पन्न व्यथा, विहवलता और एक हद तक कहें तो विवशता इन पंक्तियों में टूटी है –

आज गोली और बोली में छिड़ा संघर्ष है
देखना है कौन ज़्यादा कारगर पुरजोश है,
और इस गृह–युद्ध कोलाहल, कलह से
व्यथित गाँधी – भक्त हम हैरान हैं, ख़ामोश हैं

काव्य पुरुष कलेक्टर सिंह केसरी ने इस कविता में आवाम बनाम सरकार की शक्ति का तुलनात्मक विवेचन किया है। वे कहते हैं कि एक तरफ भूख, प्यास, संत्रास, उपवास और ग्रास से उपजा कलह, कोलाहल, कशमकश, क्रोध और क्रोश है तो दूसरी तरफ बेरहम, बधिर, बदहोश, शासन–शक्ति और शाही व्यवस्था की शहाना वक़्त। सत्ता के तानाशाही तांडव का उनकी रचनाओं में सम्यक संज्ञापन हुआ है। देखिए इन पंक्तियों को –

अंध जब निर्वंध उमड़ा इस तरफ जनरोष है,
कशमकश है, भूख है, आक्रोश है
और फिर उस तरफ शासन–शक्ति भी
बेरहम है, बधिर है, बदहोश है

'आंदोलन की कविताएँ' में डॉ. अमरनाथ सिन्हा की दो कविताएँ समाकलित हैं – 1. सत्ता और नेता के नाम 2. युवकों के नाम। इन दोनों ही रचनाओं में सत्ता के तानाशाही तांडव का चित्र उपस्थापित किया गया है। डॉ. सिन्हा मूलतः समालोचक के रूप ख्यात हैं, किंतु इन रचनाओं को पढ़कर लगता है मानो कविताओं पर भी उनकी पकड़ कहीं से ढीली नहीं है। आपातकाल के प्रति चिंतन के साथ–साथ कवि का पांडित्य भी इन रचनाओं में प्रतिच्छादित हुआ है। सत्तारूढ़ दल की तानाशाही प्रवृत्ति और उससे मर्माहत मन की अनुभूति के अवतरण में शब्द सार्थक और समर्थ साबित हुए हैं। 'सत्ता और नेता के नाम' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

गौर से देखो सेक्रेटेरियट के आगे...
उन कफ़नपरस्त जवानियों के
जवान रंगों से रिसते
वे खून के कतरे
आँसू बन चले हैं,
उनकी चिपड़ी बोटियाँ
एक बार फिर हाड़-माँस का पुतला
इंसान बनना चाहती है, ताकि एक बार फिर
तुम्हें चुनौती दे सकें

प्रो. आनंद नारायण शर्मा के मुक्तक उन दिनों काफी चर्चित हुए थे। अनेक छोटी-छोटी पत्र-पत्रिकाओं में भी ये मुक्तक छपे थे। इसमें व्यवस्था के खिलाफ़ विद्रोह है। सत्ता की सर्वोच्च कुर्सी को उनके मुक्तक डराते-धमकाते-से प्रतीत होते हैं। उनके मुस्तक की आधारशिला सत्ता के प्रति बैर, द्वेष की भावना पर ही आधारित है। उनके मुक्तक में कुल मिलाकर विप्लव, बगावत और बलवाई मनोभाव दृष्टिगोचर होता है। देखिए इन पंक्तियों को -

अपनी ऊँचाई पर ज़्यादा मत इतराओ
सब दिन मौसम का रुख न एक रह पाता है,
बच जाती हैं नन्हीं दूब मगर गिरते तरुवर
उन्मत्त प्रभंजन जब हहराता आता है।

सन् 74 के आंदोलन और सन् 75 में लागू आपातकाल पर लिखने वाले यूँ तो सैकड़ों कवि और साहित्यकार हैं, जिसका उल्लेख एक आलेख में संभव नहीं लगता है फिर भी उन दिनों कविवर जयगोविंद सहाय 'उनमुक्त', भागवत प्रसाद सिंह, लक्ष्मीनारायण सिंह, डॉ. मनोरंजन झा, मिश्रीलाल जायसवाल, प्रकाश चंद्रायन का नामोल्लेख न किया जाए तो बेईमानी होगी। इन लोगों ने तानाशाही के ख़िलाफ़ लेखनी उठाई और विरोधी स्वर को मुखर किया।

कुल मिलाकर बिहार के रचनाकारों की कविताओं में चुनौती और ललकार के स्वर अनुगुंजित होते हैं। कवियों ने न केवल कागज़ों पर सत्ता के विरोध को रेखांकित किया अपितु चौक-चौराहों पर अपनी रचनाओं का पाठ भी किया। किसी ने लोकचेतना जागृत की तो किसी ने सत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष के लिए छंदोबद्ध नारे लिखे। नुक्कड़ों पर कभी गीत गाए गए तो कभी तुकांत कविताओं का सरस्वर पाठ किया गया। इसलिए उस समय की अधिकतर रचनाएँ तुकांत हैं। आज़ादी की दूसरी लड़ाई के रूप में इसे लड़ा गया। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश इत्यादि राज्यों ने आपातकाल के भुक्त भोगियों को पेंशन देने की भी घोषणा की है। भारतीय लोकतंत्र के स्वर्णिम इतिहास में आपातकाल के काले अध्याय पर लेखनी चलाने वाले कवि-साहित्यकारों को सरकार के साथ-साथ अनेक स्वयंसेवी संगठनों ने भी सम्मानित एवं प्रशस्तित किया है।

सम्पर्क : नई दिल्ली (भारत)

रमेश गुप्ता

आपातकाल में एक दुस्साहसपूर्ण अभियान

26 जून 1975 की सबेरे-सबेरे टेलीफोन की घंटिया घनघना उठी थी। 25 जून की अति रात्रि में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने देश में आपातकाल की घोषणा करके श्री जयप्रकाश नारायण, श्री मोरारजी भाई आदि प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया था। श्री अटल जी, अडवाणी जी तथा श्यामनन्दन मिश्र बेंगलोर में होने से गिरफ्तार नहीं हो सके थे।

सबेरे आठ बजे रेडियो पर समाचार बुलेटिन में भी पुष्टि कर दी कि राष्ट्रपति ने संविधान की धारा 252 के तहत आंतरिक उत्पात की संभावना के कारण आपातस्थिति घोषित कर दी है। फिर लगातार समाचार आते रहे कि आपातस्थिति के लागू होने के पश्चात् कुछ लोगों को आंतरिक सुरक्षा कानून के अन्तर्गत नजरबन्द कर लेना पड़ा है। अखबारों पर सेंसरशिप लागू कर दी गई और देशभर में संघ, जनसंघ तथा अन्य विरोधीदलों के नेताओं की गिरफ्तारी का सिलसिला शुरू हो गया। देश एक बड़े कारावास में बदल गया। आकाशवाणी ने इंदिरावाणी बनकर 20 सूत्रीय कार्यक्रमों का भोंगा बजाना शुरू कर दिया।

आपातकाल की घोषणा होते ही जो गिरफ्तार नहीं हो सके थे वे सभी भूमिगत हो गये। जिनमें श्री नानाजी देशमुख, जार्ज फर्नान्डिज, श्री रविन्द्र वर्मा, श्री दत्तोपंजी ठेंगड़ी आदि प्रमुख थे। आपातकाल से संघर्ष तथा प्रजातंत्र की रिहाई हेतु प्रयत्न शुरू हो गये। लोक संघर्ष समिति का गठन किया गया। गुजरात में उस समय श्री बाबूभाई पटेल की सरकार थी। अत: गुजरात इन सभी भूमिगत नेताओं का मिलन स्थल बन गया था। जहाँ से देशभर की गतिविधियाँ संचालित होती थीं। संघ एवं जनसंघ के गुजरात में भी सभी वरिष्ठ नेतागण गिरफ्तार हो चुके थे। परन्तु संयोगवश क्षेत्र प्रचारक श्री लक्ष्मणराव इनामदार, प्रान्तप्रचारक श्री केशवराव देशमुख तथा युवा प्रचारक श्री नरेन्द्र मोदी गिरफ्तार होने से बच गये थे। अत: इन तीनों की तिकड़ी ने भूमिगत होकर विभिन्न प्रकार की गतिविधियों जैसे लोकसंघर्ष समिति के प्रवासी अधिकारियों से सम्पर्क रखना, उनके रहने-खाने की व्यवस्था सँभालना, उनकी मीटिंगें आयोजित करना, कार्यकर्ताओं के घरों में जाकर उनके परिवार को ढाढस बँधाना आदि अनेक कार्य तो थे ही साथ ही सत्याग्रह करने के लिये लोगों को तैयार करना तथा गुप्त पत्रक निकालकर देश की स्थिति तथा वास्तविक समाचारों से अवगत कराने जैसा अत्यंत दुष्कर कार्य को अंजाम देना शुरू कर दिया था।

सर्वोदयी नेता श्री जयप्रकाश नारायण जी आचार्य विनोबा भावे के शिष्य माने जाते थे, उनकी तथा देशभर में विरोधपक्ष के नेताओं की गिरफ्तारी के पश्चात् भी आचार्य बिनोबा भावे मौन धारण किये बैठे रहे। देश उनसे अपेक्षा रख रहा था कि वे आपातकाल पर अपने विचार व्यक्त करें और इंदिरा जी को आपातकाल हटाने हेतु अपने प्रस्ताव का उपयोग करें। परन्तु उल्टा ही हो रहा था। उन्होंने इसे ''अनुशासन

पर्व'' कह कर इंदिरा जी की अप्रत्यक्ष रूप से प्रशंसा ही कर दी थी। इसके कारण देश के शिक्षाशास्त्री, साहित्यकार, कलाकार एवं आचार्यों का विनोबा जी के पास लगातार संदेश जा रहा था कि आप कुछ करियें।

25 दिसम्बर को विनोबा जी मौन खोलने वाले थे तथा 27 दिसम्बर को उन्होंने पवनार आश्रम में ''आचार्य सम्मेलन'' आयोजित किया था। सारे देश की निगाहें इस सम्मेलन पर थी क्योंकि देश के अनेक गाँधीवादी विचारक एवं आचार्यगण इसमें सम्मिलित होने वाले थे। इस कारण केन्द्रीय लोकसंघर्ष समिति ने यह निर्णय लिया कि पवनार आश्रम में होने वाले सम्मेलन के प्रतिभागियों तक देश के वर्तमान घटनाक्रम को पहुँचाया जाये। इस हेतु गुजरात के संघ कार्यकर्ताओं को सम्पूर्ण साहित्य को गुप्त रूप में छपवाकर पवनार पहुँचाने की जिम्मेवारी दी गई। आगे का विवरण श्री नरेन्द्रभाई मोदी के शब्दों में -

संघ के प्रान्तप्रचारक श्री केशवराव देशमुख अहमदाबाद विभाग प्रचारक श्री भास्करराव दामले तथा मैं स्वयं, हम लोगों ने श्री दत्तोपंत जी ठेंगड़ी से उक्त सामग्री ली जिसमें विभिन्न प्रकार की हृदयविदारक घटनाओं, सरकार द्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचार, कारागार में मृत कार्यकर्ताओं की जानकारी व उनके परिवार की आर्थिक स्थिति, संघ तथा विरोधी दलों पर लगाये गये अनर्गल आरोपों का उत्तर तथा आपातकाल के विरोध में देशभर में चल रहे सत्याग्रह का कच्चा चिट्ठा था, को अलग-अलग प्रेस में रातोंरात अति कठिनाइयों के साथ छपवा कर लगभग 400 प्रतियाँ तैयार की गई।

अहमदाबाद से पवनार का रेलमार्ग लगभग 36 घन्टों का है, इस सम्पूर्ण साहित्य को गुप्त रूप से किसी भी कीमत पर पवनार पहुँचाना था। पवनार सम्मेलन की गतिविधियों पर देश की जनता चातक दृष्टि से देख रही थी तो उधर सरकार भी कुटिलतापूर्वक उस सम्मेलन को अपने पक्ष में करने की गतिविधियों में प्रयत्नशील हो गई थी। अब सरकार की नजर में धूल झोंककर इन 400 प्रतियों को येन-केन-प्रकारेण हमें पवनार पहुँचाना था।

खूब घनमंथन के पश्चात् यह तय हुआ कि उक्त कार्य किसी बहिन को सोंपा जाये- जिससे शंका की कोई गुंजाइश नहीं रहेगी तथा कार्य भी सरलता से सम्पन्न हो जायेगा। यह भी विचार आया कि इस हेतु कोई महाराष्ट्रीयन बहिन होगी तो उचित रहेगा क्योंकि पवनार महाराष्ट्र में था और अहमदाबाद से पवनार जाने वाले सामान्यतया महाराष्ट्रीयन ही होते हैं। अत: अहमदाबाद के कर्मठ कार्यकर्ता श्री संजीवनभाई देवधर की धर्म पत्नी श्रीमती सुभगा बहिन का ध्यान आया। उनसे चर्चा कर आसन्न खतरे के विषय में जब उन्हें विस्तार से बताया गया तो उन्होंने निर्भयतापूर्वक उक्त चुनौती को बेहिचक तुरन्त स्वीकार कर लिया। अब हमें उनकी सही सलामत यात्रा की व्यवस्था करनी थी।

वे कहाँ उतरे?

स्टेशन पर कौन उन्हें लेने आयेगा?

और लेने नहीं आ पायें तो कहाँ पहुँचेगी?

आदि प्रश्नों का हमें हल निकालना था।

नागपुर से सम्पर्क कर सामान लेकर जाने वाले व्यक्ति की पहचान करवा दी गई। उन्हें नागपुर के पहले आने वाले अजनी स्टेशन पर उतरने का बताया गया। जो व्यक्ति उन्हें लेने आने वाले थे, उनकी

पहचान हेतु कोडवर्ड (गुप्त संकेत) तय हो गया।

अहमदाबाद से वे सुरक्षित नागपुर पहुँचे इस हेतु भी व्यवस्था की गई। मुख्य-मुख्य स्टेशनों पर कोई न कोई कार्यकर्ता उनके सुरक्षार्थ साये की तरह बना रहे जिसका उन्हें भी पता नहीं लगे, यह ध्यान रखा गया। अन्य किसी को शक न हो इस हेतु कार्यकर्ता अखबार एवं पेन आदि की फेरीवाले बनकर उनकी साल-सँभाल करते रहे।

निश्चित समय पर ट्रेन अजनी स्टेशन पर पहुँच गई। उन्हें जो सज्जन लेने आये थे-वे अपने बाल बच्चों के साथ इस प्रकार से आये थे जैसे कि कोई अपने परिवार के स्वजन को लेने आता है।

सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हुआ और पवनार में नागपुर के कार्यकर्ताओं ने सतर्कतापूर्वक बड़ी बुद्धिमानी से सम्पूर्ण साहित्य वहाँ आने वाले प्रतिनिधियों को पहुँचा दिया। इस प्रकार आपातकाल में पुलिस की सख्त निगरानी के पश्चात् भी अत्यंत दुष्कर कार्य सम्पन्न हुआ।

जिस दिन श्रीमती सुभगा बहिन अहमदाबाद से नागपुर जाने के लिये निकली थी- वह दिन आज भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित है और उनके दुस्साहस के सामने मैं नतमस्तक हूँ। बहिन की हिम्मत को दाद देनी पड़ेगी।

- जाने के पूर्व मैं पकड़ा गई तो क्या होगा?

शायद वर्ष-दो वर्ष जेल में भी रहना पड़ सकता है।

घर भी न आ सकूँगी।

पोलिस रिमाण्ड ले तो क्या होगा?

इसकी भी पूर्ण तैयारी-मन में रंच मात्र का भी भय नहीं।

कर्त्तव्य करने का अवसर मिला-इसका अद्‍भुत आनन्द। उनकी विदाई के पूर्व मैं उनसे मिलने गया था। उनका उत्साह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मैंने भी उनका उत्साहवर्धन किया। परन्तु मन में सतत् चिन्ता बनी रही कि वे कैसे सुरक्षित लौटेंगी?

मैं एक बहिन को "सिंह के दाँत गिनने" जैसा भंयकर कार्य देने वालों में से एक था। ईश्वर न करें कुछ अशुभ हो, नहीं तो इस परिवार पर कितनी मुसीबतें आ पड़ेगी इस कल्पनामात्र से मैं काँप रहा था तो दूसरी ओर मन में यह गर्व भी था कि क्या विचित्र संघ का कार्य है?

कैसे विचित्र संस्कार संघ द्वारा रोपण किये जाते हैं।

देश के लिये बलिदान देने वाले कितने-कितने परिवार संघ ने निर्माण किये होंगे?

वास्तविक तथ्य तो यह है कि आपातकाल को हटाने में संघ के कार्यकर्ताओं ने अगणित बलिदान दिये हैं। जिसके कारण आज हम प्रजातंत्र की मशाल को प्रज्जवलित देख रहे हैं।

सम्पर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 8120000432

जगदीश तोमर

ताकि सनद रहे

आपातकाल : काले दिनों की तिक्ततायें

26 जून की सुबह मेरे पड़ोसी और शुभेच्छु डॉ. मनमोहन बत्रा ने मुझे अपने घर बुलाया। मैं उनके यहाँ पहुँचा तो दिखा कि डॉक्टर साहब थोड़ी हड़बड़ी में हैं और कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा–'रेडियो सुना?'

''नहीं, मेरा रेडियो तो 2–3 माह से खराब पड़ा है।'' मैंने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् डॉक्टर साहब ने बताया कि देश में इमरजेंसी लागू कर दी गई और हजारों गिरफ्तारियाँ हो चुकी हैं। दिल्ली में और देश के सभी हिस्सों में। लोकनायक, मोरार जी भाई, अटल जी, आडवाणी जी, चन्द्रशेखर जी सब पकड़े जा चुके हैं। अभी इंद्रापुरकर जी (ग्वालियर के महापौर श्री माधवशंकर इंद्रापुरकर) का फोन आया था। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया है। श्री नरेश जौहरी (पूर्व विद्युत मंत्री, म.प्र.) श्री विष्णुदत्त तिवारी (विधायक) और तमाम लोग बंदी बनाए जा चुके हैं। मुझे भी कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता है। इसलिए मैं बेहतर समझता हूँ कि ग्वालियर छोड़कर कहीं बाहर चला जाऊँ।

मुझे सारी स्थिति समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। क्योंकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी का चुनाव अवैध घोषित किए जाने के बाद उन जैसी कठोर, दुर्दम्य और सत्ताप्रिय राजनेत्री से ऐसे किसी भी निरंकुश कदम की आशा की जा सकती थी। हम लोगों ने जल्दी–जल्दी चाय पी। और फिर डॉक्टर साहब अनिश्चित गन्तव्य के लिये रवाना हो गए।

मैं अपने कार्यक्रमानुसार विद्यालय पहुँचा। रास्ते में अनेक लोग मिले। उनके चेहरों पर सन्नाटा पुता हुआ था। लगता था, जैसे वे सब किसी दुःस्वप्न से गुजर रहे हों। समूचे वातावरण में एक अव्यक्त भय विद्यमान था। चारों ओर एक गहरी उदासी छायी हुई थी। रास्तों में भीड़–भाड़ थी। किन्तु रोज़ जैसा जीवन्त शोर–शराबा नहीं था। लगता था जैसे सारे शहर को काठ मार गया हो।

ग्रीष्मावकाश चल रहा था। किन्तु प्रिंसिपल, प्यून और लिपिक तो विद्यालय पहुँचते ही थे। कोई खास काम नहीं था विद्यालय में। इसलिए मैं एक घंटे पहले ही घर की ओर चल दिया। प्यून आदि भी चले गए।

रास्तों का सहमा–सहमा रूप जारी था। लोग आपस में बोलने के बजाय फुसफुसा रहे थे। शायद आदमी–आदमी से डर रहा था। न जाने किस वेश में बाबा मिल जाये 'जासूस' रे।

घर पहुँचकर देखा तो 'भास्कर' और 'स्वदेश' दोनों ही नहीं आए थे। अखबार की तलाश में आसपास गया। पर कोई अखबार उपलब्ध नहीं हुआ। न द, हिन्दुस्तान, न नवभारत टाइम्स, न स्टेट्समैन। कई दिनों

बाद मालूम हुआ कि वह सब सेंसर का करिश्मा था। यूँ आपातकाल की आड़ में भारतीय जन के मूल अधिकारों का तो अपहरण हुआ ही, उसकी सूचना पाने का अधिकार भी छीन लिया गया। फलत: खबरों के लिए लोग चोरी-छिपे बी.बी.सी. सुनने लगे। हमारे देश का रेडियो गिरफ्तार नेताओं के नाम तक नहीं लेता था। उसने तो लगभग एक ही धुन पकड़ रखी थी- 'गुंडों और आर्थिक अपराधियों को बंदी बना लिया गया है।'

26 जून की शाम को ही श्री शिव बरुआ घर आए। घर में ऐसे घुसे जैसे कोई चोर घुसता है। वह मेरे सहयोगी (विद्यालय में) और मित्र थे। मैं आँगन में चारपाई पर बैठा था। किन्तु श्री बरुआ बोले- 'अंदर कमरे में बैठेंगे।' मुझे उनके सुझाव या आग्रह पर विस्मय हुआ। एक मुस्कुराहट दौड़ गई मेरे होठों पर। मैं उठा और फिर हम लोग कमरे में जाकर बातें करने लगे।

श्री बरुआ सनसनीखेज खबरें लाये थे। उनके पास अटपटी-चटपटी खबरों का काफी मसाला रहता है। उन्होंने बताया कि पुलिस उनके पीछे है और वह पुलिस के साथ आँख मिचौनी का खेल-खेल रहे हैं। बाद में उन्होंने यह भी बताया कि मैं भी अपना बचाव करूँ। उनकी महिती के अनुसार मेरा नाम भी गिरफ्तार किए जाने वालों में था। श्री बरुआ की बातों पर मुझे पूरा-पूरा विश्वास नहीं हुआ। सोचा, मेरा ऐसा क्या महत्त्व है जो सरकार मुझे गिरफ्तार करे और फिजूल ही महत्त्वपूर्ण बनाने में सहायक बने। किन्तु मैं अपने मित्र की सारी बातें सुनता रहा वस्तुस्थिति यह थी कि उस समय मैं मन ही मन मनोरंजित भी हो रहा था।

26 जून गुजर गया। जुलाईने दस्तक दी। न मैं बन्द हुआ और न ही मेरे मित्र। मैंने अपनी गिरफ्तारी की आशंकाओं को करीब-करीब खारिज कर दिया। पर मेरे मित्र छिपते-छिपाते ही इधर-उधर जाते रहे।

गिरफ्तारी का संकेत

4 जुलाई को मैं घर पर ही था। दोपहर को दो छात्र आए। हाँफते हुए। बड़े परेशान से। उन्होंने मुझसे धीमी आवाज में कहा- ''आपने स्कूल के सामने पुलिस की एक जीप और बस खड़ी है। आपको पूछ रही है। इसलिए हम भागे-भागे आपके पास आए हैं। सर, आप जल्दी से कहीं इधर-उधर हो जाइए।''

मैंने अपने छात्रों का कहा माना। किन्तु कहीं दूर नहीं गया। अपने घर के एकदम सन्निकट डॉ. बत्रा जी के घर पहुँच गया। डॉ. बत्रा जी भारत की राजधानी में अज्ञातवास का लाभ ले रहे थे। पुलिसवाले यह रहस्य जानते थे। इसलिए उनका मकान पुलिस की निगरानी में नहीं था। मेरा वहाँ पहुँचना बत्रा परिवर के लिए प्रसन्नता का अनुभव था। मम्मी (श्रीमती बत्रा), मीना और सतीश (डॉक्टर साहब की पुत्री एवं पुत्र) मेरी अच्छी आवभगत करने लगे। उसका एक छोटा दुष्परिणाम भी हुआ। मैं पेट का मरीज बनने लगा।

4 जुलाई के बाद एक सप्ताह गुजर गया। पुलिस का एक सिपाही भी नहीं आया मेरे घर। इस कारण मैंने अपने सुरक्षा प्रबंध ढीले कर दिये। मैंने सोचा-'शायद जिला प्रशासन ने मेरे बारे में पुन: विचार किया हो और मुझ जैसे अहानिकर प्राणी को गिरफ्तार न करने का निर्णय ले लिया हो।' इसलिए मैं डॉ. साहब के निवास से निकल अपने घर भी जब-तब पहुँचने लगा। धोती-कुर्ते के स्थान पर पेंट-शर्ट धारण कर मैं कभी कभार भी निकल जाता। मेरे मित्र मुस्लिम बंधुओं जैसी मेरी दाढ़ी-मूँछ देखकर विस्मित हो जाते। इन्हीं दिनों मैं एक बार श्री दिवाकर वर्मा के यहाँ (तब वह शास्त्रीनगर में रहते थे) पहुँच गया। वहाँ श्री रवीन्द्र झंग (श्रमिक नेता) भी डटे हुए थे। मैंने हँसी-हँसी में कहा- 'मैं पुलिस को सूचित करता हूँ कि आप यहाँ है।' इस पर रवीन्द्र जी तुरन्त बोले-'बेशक! मगर पकड़े तीनों जायेंगे।' उस समय हमारे भीतर

से एक लंबा ठहाका फूट निकला। बाद में हम लोग चाय पीने में मग्न हो गए।

मैंने दिवाकर जी को बताया कि कुछ शरारती तत्त्वों ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के नकली लैटर-पेड छपवा लिये हैं। उन पर आप जैसे लोगों के नाम लिखकर वे उन्हें तमाम जगह भेज रहे है। अनेक पत्रों में यह भी लिखा गया हैकि संघ की गुरुदक्षिणा राशि आप एकत्रित कर रहे हैं। यह सब षड्यंत्र है। इसलिए आप किसी से कोई धन स्वीकार मत करना।

इस बीच मैं अन्य आत्मीय जनों से भी मिलता रहा। मैंने इतिहास में हिटलर और उसके समय की जर्मनी के बारे में पढ़ा था। कुछ-कुछ वैसा ही नजर आ रहा था मुझे अपने देश में। लोग खौफजदा थे और दबे-छिपे बातें करते थे। मुक्त अभिव्यक्ति के होठों पर ताला पड़ गया था। कभी लगता, देश में स्टालिन के जमाने की सोवियत व्यवस्था दृढ़ आकार ले रही है। मैं इन दिनों स्कूल पहुँचने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। इसलिए सोचा, 'क्यों न एकाध माह के लिए गाँव चला जाऊँ' किन्तु मैं किसी न किसी कारण गाँव नहीं जा पाया।

भारत रक्षा अधिनियम (डी.आई.आर.) के अंतर्गत गिरफ्तार और फिर आया 13 जुलाई का दिन। उस दिन मेरे एक आत्मीय जन का जन्मदिन था। मैं उसमें सानन्द शामिल रहा। फिर शाम को श्री शैवाल सत्यार्थी सपरिवार मेरे घर आए। वह रात के दस बजे तक मेरे साथ रहे। खूब चर्चाएँ हुई। आपातकाल की त्रासदी पर बड़े दुखी और क्षुब्ध थे हम लोग। उनके जाते ही एक और मित्र श्री गोविन्द श्रीवास्तव पधार गए। वह कभी मेरे सहपाठी रहे थे। देशकाल पर वह भी ग्यारह बजे तक चर्चारत रहे। उनके पीठ फेरते ही मैं अपने घर के आँगन में पड़े तख्त पर निद्रामग्न हो गया। उस दिन मेरे घर का मुख्य द्वार खुला रखा गया था। क्योंकि मेरे एक पड़ोसी के यहाँ कोई गाने-बजाने का कार्यक्रम था और लोग मेरे दरवाजे से आ जा रहे थे।

रात के लगभग बारह बजे मेरे घर के लोगों ने मुझे जगाकर पुलिस के आने की सूचना दी। मुझे समाचार बहुत अप्रिय लगा। फिर भी मैंने उसे इतमीनान से सुना और आँगन से उठकर अंदर कमरे में चला गया। घर के लोगों ने मन को कड़ा बनाकर पुलिस वालों से कहा कि मैं अस्वस्थ हूँ और दवा लेकर अभी-अभी सोया हूँ। परन्तु एक सिपाही, जो सादा कपड़े पहने हुए था, मुझे अन्दर जाते हुए देखा चुका था। उसने साफ कहा- प्रिंसिपल साहब आँगन में ही थे, अभी उठकर भीतर गए हैं।'

मैं यह सारी चर्चा सुन रहा था। अंत में मुझसे रहा न गया। मैं बाहर आ गया। जनकगंज थाने के एस.ओ. श्री सेठी ने मुझसे कहा- बाहर जीप में एसपी साहब बैठे हुए हैं। आपसे बात करना चाहते हैं। मैं उनके शब्दों का अर्थ समझता था। इसलिये बोला- सेठी जी, इन बातों का कोई अर्थ नहीं है। आप तो यह बताइए कि क्या आपके पास मेरी गिरफ्तारी का वारंट है?' इस पर श्री सेठी का जवाब था- 'वो सब है, पर उसे दिखाने की कोई जरूरत नहीं।'

'अच्छा! तो चलिए यही बता दीजिए कि आपने डी.आई.आर. या मीसा क्या लागू किया है?' मैंने पूछा।

'डी.आई.आर.।' श्री सेठी का उत्तर था।

फिर क्या होना था। मैंने कपड़े पहने और कुछ पुस्तकें लीं। इस तैयारी में मुझे 15-20 मिनट लग गए। इस बीच मोहल्ले के कुछ लोग जाग गए। पड़ोस का गाना-बजाना रुक गया। मेरे घर के आँगन में 10-12 पुरुष महिलाएँ आकर खड़े हो गए। उनमें एक श्रीमती डॉ. बत्रा भी थीं। उन्होंने पुलिस वालों पर तमाम सवाल दागे- 'भैया ने कौन-सा जुर्म किया है?चोरी या डकैती? आधी रात को क्यों आए हो? सबेरे

जब छोटे-छोटे बच्चे जागेंगे और अपने पापा को पूछेंगे तो हम लोग क्या जवाब देंगे? सरकार आयेगी उन मासूमों के आँसू पोंछने?'

श्री सेठी और उसके सिपाहियों ने अपने होंठ सिल लिये थे शायद। कुछ नहीं बोले वे। किन्तु श्रीमती बत्रा के साथ अन्य लोग भी मुखर हुए तो श्री सेठी ने बड़ी संक्षिप्त-सी कैफियत दी- 'मैं अपनी मर्जी से यहाँ नहीं आया। ऊपर से जो फरमान आते हैं, हम उसकी तामील भर करते हैं, बस।'

घर से लगभग दो सौ मीटर की दूरी पर पुलिस की गाड़ी खड़ी थी। मैं उसमें जा बैठा। साढ़े बारह बजे मैंने थाना जनकगंज में प्रवेश किया। मुझे एक कुर्सी मिली बैठने के लिए। सामने ही फोन रखा था। उसे देख, मेरे मन में एक फोन करने की इच्छा जागी। एक मोटे दीवान जी (हेड कांस्टेबल) सामने थे। उन्होंने इस हेतु मुझे सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी।

उन दिनों मेरे घर पर फोन नहीं था। मैंने डॉ. बत्रा परिवार के तो सभी बड़े-छोटे जागे हुए थे। सतीश (सत्य प्रकाश बत्रा) ने फोन उठाया। बात की। मम्मी (श्रीमती बत्रा) से भी बात हुई। उन्होंने मुझे गुरुओं के उदाहरण से बताया कि मुसीबत तो बड़ो-बड़ों पर आती है। तुम घबराना नहीं। हम सब हैं न यहाँ। और सबसे ऊपर गुरु महाराज जो बैठे हैं। वे सब ठीक करेंगे। और इस राज का खात्मा तो देर सबेर होना ही है।

मैंने माँ की बातें सुनीं। उनकी शिक्षा को भी गुना। वैसे मैं खुद को 'शिक्षक हों सिगरे जग को' कहता और मानता था। किन्तु उनकी वत्सलता ने मुझे बड़ी शक्ति प्रदान की। उन्होंने आभा (श्रीमती तोमर) को बुला लिया। शायद उसका गला सूख रहा था। उसकी आवाज मुश्किल से निकल पा रही थी। मैंने उसे ढाँढस बँधाया। कहा- 'डी.आई.आर.में तो जमानत हो जाती है। और यदि जमानत न भी हुई तो क्या, कुछ दिनों में तो बाहर आ ही जाऊँगा।' पर मुझे लगा कि उस पर मेरी बातों का कोई असर नहीं हुआ। उस समय वह इस धरती की सर्वाधिक परेशान और अशान्त प्राणी थी।

फोन के लिए मैंने दीवान जी को धन्यवाद दिया। फिर मैंने उनसे कहा- ''मैं सोना चाहता हूँ।'' इस पर उन्होंने मेरे लिए एक सिपाही की दुबली-पतली खाट मुहैया करा दी। बिस्तर के नाम पर एक दरी थी। बस! वह इससे अधिक सुविधा जुटाने की स्थिति में नहीं थे शायद।

मुझसे उन्होंने पूछा- कहाँ सोओगे साब? बरामदे में या खुले में?

''खुले में!'' मैंने अपनी इच्छा प्रकट की और एक सिपाही ने वह खाट जनकगंज थाने के अन्त: परिसर में हनुमान मंदिर के पास बिछा दी। मैं उस पर जा लेटा। रात भर सोना-जागना चलता रहा। पर कुल मिलाकर विश्राम ठीक हुआ। सुबह चाय वाला चाय दे गया, यही कोई सात बजे। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचा, पुलिस का इंतजाम एकदम बढ़िया है। पर बाद में मालूम हुआ कि वह चाय सतीश ने भेजी थी। सिपाहियों ने उसे मेरे पास आने से रोक दिया था।

मेरे साथ ही थे श्री उदय काकिर्डे। उन्होंने जब स्नान किया तो एक संघगीत गाना शुरू कर दिया- 'मातृभूमि गान से गूँजता रहे गगन।' मैंने सोचा, 'यह महाशय तो अब छूटने से रहे, इनका सन्निध्य शायद मुझे भी न छूटने दे।'

उन दिनों हम लोग दो ही थे। सो खूब चर्चारत रहते। हमारे घरों से खाना आ जाता। हम लोग खूब खाते-पीते, थाना परिसर में घूमते। रात को हवालात में बंद अपराधियों की पिटाई का नजारा देखते, उनका

करुण क्रंदन सुनते और सोने की कोशिश करते।

इस बीच श्री सेठी ने कई बार कहा कि आज सी.एस.सी. साहब आयेंगे, आपसे बात करेंगे। किन्तु वह कभी नहीं आए। इससे मैं झल्ला गया। एक रात (15 जुलाई) मैं उनके कक्ष में ही जा पहुँचा और कुछ-कुछ उत्तेजित हो बोला- 'देखए, आज इस थाने में आए हमें दो-ढाई दिन बीत चुके हैं। अब यह अनिश्चित की स्थिति समाप्त होनी चाहिए। आप हमारा चालान कीजिए। अन्यथा हम कल से भोजन करना बंद कर देंगे।'

श्री सेठी को मेरी बात कष्ट पहुँचा गई। वह तिलमिलाकर उठे और अपने कक्ष से बाहर चले गए। जाते-जाते वह बड़बड़ाए थे- मैं क्या करूँ जो सी.एस.पी. साहब नहीं आए। मैं कई बार रिंग कर चुका हूँ, और फिर, मैं आपको अपनी मर्जी से यहाँ नहीं लाया...।

उसके बाद मैं अपने बरामदे में लौट आया। एक सिपाही की मदद से अपनी चारपायी बाहर निकलवायी और लेट गया। लेकिन मेरा मन, क्षोभ और आक्रोश से भर गया। मैंने विचार किया कि अब कल से अनशन शुरू करना ही होगा। किन्तु वह अवसर नहीं आया। 16 जुलाई की सुबह हम न्यायालय ले जाये गए। उससे पूर्व एक दुबले-पतले दीवान ने कहा- ''अगर आप चाहें तो अपनी जमानत के लिए अपने किसी दोस्त या वकील को बुला लें।''

मैंने उस दीवान को उसकी सदाशयता के लिए मन ही मन धन्यवाद दिया। मैंने अपने अभिभावक मित्र श्री ऋषभदास जैन से फोन पर संपर्क किया और उन्हें सारे मामले से अवगत कराया। न्यायालय में मुझे मेरे और मित्र भी मिले। भाई उदय काकिर्डे के घर के लोग भी मिले। श्री ऋषभ भैया और उनके सहयोगी श्री अरुण पटेरिया ने जल्दी-जल्दी हमारी जमानत के कागज तैयार किये और आश्चर्यों का आश्चर्य यह कि अपराह्न 3 बजे हम लोग जमानत पर रिहा हो गए।

एक मित्र मुझे अपने स्कूटर पर घर पहुँचा गए। घर और मोहल्ले में खुशी की लहर दौड़ गई।

मीसा बंदी- लेकिन सरकार ने आपातकाल के बहाने न्यायालयों को भी आईना दिखाने की बार-बार कोशिश की। उसने देखा कि न्यायालयों ने मुझे और मुझ जैसे तमाम लोगों को जमानत पर छोड़ना शुरू कर दिया हैं तो दूसरा हथकंडा अपनाया। सरकार ने ऐसे लोगों को आंसुका (आंतरिक सुरक्षा कानून/मीसा-मेंटिनेंस ऑफ इन्टरनल सिक्योरिटी एक्ट) के अंतर्गत पुन: गिरफ्तार कर जेल भेजने का अभियान चला दिया। क्योंकि आंसुका के अधीन गिरफ्तार व्यक्ति को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं थी।

मैं 16 जुलाई 1975 को जमानत पर रिहा हुआ और उसी दिन मुझे आंसुका (मीसा) के अधीन गिरफ्तार किए जाने की योजना बन गई। उस दिन देर रात मेरे एक मित्र चुपके से मेरे घर आए। वह पुलिसकर्मी ही थे। उन्होंने मुझे बताया कि मेरी गिरफ्तारी का नया वारंट तैयार हो चुका है और यदि मुझे उससे बचना है तो तुरन्त भूमिगत हो जाना होगा। मेरे लिए उनकी सूचना और राय महत्त्वपूर्ण थी। मैं दूसरे दिन ही ग्वालियर के सीमान्त पर बसे एक गाँव में रहने चला गया।

कोई 15-20 दिन बाद मुझे, जेल में निरुद्ध मित्रों के हवाले से सूचना मिली कि जेल रिकॉर्ड के अनुसार मैं वहाँ मीसा बंदी हूँ और प्रदेश गृहमंत्रालय के पत्र के अनुसार मेरी कारावासीय अवधि अगले तीन माह के लिए बढ़ा दी गई है। यह मेरे लिए सु-समाचार था। मैंने शासन की इस भ्रांति का लाभ

उठाया और एक दिन भूमिगत से सार्वजनिक होने का जोखिम उठा लिया।

कुछ दिनों मैं मुक्त विचरता रहा। किन्तु सत्तापक्ष से जुड़े छुटभैयों को मुझे यहाँ-वहाँ देख आश्चर्य और कष्ट का अनुभव हुआ। और फिर सरकारी अमले को भी शायद अपनी गंभीर गलती का अहसास हो गया। परिणामत: एक दिन ब्रह्ममुहूर्त में पुलिस दल ने मेरा घर घेर लिया। मैं गिरफ्तार कर लिया गया। अपने बच्चों को सोता और पत्नी को गुपचुप रोता छोड़ मैं कृष्णमंदिर के लिए रवाना हो गया।

इस समय तक जनकगंज थाने के टी.आई. बदल चुके थे। अब श्री सेठी के स्थान पर श्री कंडोतिया थे। उन्होंने मुझे अपने कक्ष में सादर बैठाया और चाय की दावत दी। बोले- ''आपके संबंध में भोपाल से बार-बार वायरलैस आ रहा था। एक ही मैसेज था कि आपको गिरफ्तार किया गया या नहीं, तुरन्त सूचना भेजें।''

इस पर मैंने सहज ही कह दिया ''अच्छा! इतना महत्त्वपूर्ण हो गया हूँ मैं।''

वह मेरी बात सुनकर खामोश हो गए। फिर थोड़ी देर में बोले- ''आपकी गिरफ्तारी हमारे लिए बड़ी अप्रिय रही।''

मैं जानता था कि ये सारी बातें होंठों की सहानुभूति भर हैं। किन्तु पुलिस का यह मिष्ठभाषी रूप मुझे काफी ठीक लगा। जल्दी ही पुलिस की गाड़ी मुझे लेकर केन्द्रीय कारागार की ओर चल पड़ी।

जेल में मुझे उस बैरक में ले जाया गया जिसमें पहले से ही अनेक मीसाबंदी निरुद्ध थे। मैंने बैरक का मुख्य द्वार पार किया। सबसे पहले मुझे दिखे डॉ. केशव नेवासकर। वह बाहर नल के पास मुँह धो रहे थे। मुझे देखते ही बोले-''अच्छा तो आ ही गए। ...बकरे की माँ कब तक खैर मनाती।''

उनकी इस मुक्त टिप्पणी से गिरफ्तारी जनित मेरा तनाव काफूर हो गया। उन्होंने झट से गले लगा लिया मुझे। पल-दो पल में ही मेरे आगमन का समाचार पूरी बैरक में फैल गया। सारे लोगों ने आकर मुझे घेर लिया। कितने ही लोग ठंडाई, दूध, बिस्कुट, सेब आदि सामग्री लेकर आए। उन पदार्थों को उदरस्थ करते-करते मेरा पेट दया की याचना करने लगा। किन्तु सहृदय मीसाबंदियों के असीम प्यार ने मुझे अभिभूत कर दिया। मा. कप्तान सिंह सोलंकी (सम्प्रति संगठन महामंत्री, म.प्र. भाजपा), श्री नरेश जौहरी (पूर्व मंत्री) और अनेक आचार्यों-प्राचार्यों, अभिभाषकों, कर्मठ समाज सेवियों का सुखद सान्निध्य वहाँ सहज उपलब्ध था।

कारावासी जीवन-उन दिनों का कारावास किसी आश्रमवास से कम नहीं था। मीसाबंदियों से जुड़ी कम से कम आठ बैरकों में तो यही स्थिति थी। लोग ब्रह्ममुहूर्त में उठते, प्रात: स्मरण (देश के महापुरुषों से संबंधित श्लोकों का सस्वर पाठ) करते, भारत माता का वंदना गीत गाते और फिर योगासन, प्राणायाम में गहरी रुचि लेते। सभी लोग, एक समयबद्ध दिनचर्या का पालन कर एक आदर्श सहजीवन का आनन्द ले रहे थे। उनके निजी तनाव और संकट थे किन्तु समूह में रहकर उनकी तीव्रता कुछ न कुछ परिशमित अवश्य हो रही थी।

हमारे इस समूह में साम्यवादी (सी.पी.एम. एवं सी.पी.आई.) युवजन भी थे। उनकी संख्या 10-12 के आसपास थी। उनकी जीवनशैली अलग ही थी। वे अधिकांश समय ताश खेलते, बीड़ी पीते और अनेक चायसत्रों का आनन्द लेते। उन्हें अपने कपड़े धोने में भी कोई रुचि नहीं थी। सात-आठ दिन में

धोबी आता तब वे अपने कपड़े उतारते और उन्हें धोबी के हवाले करते और फिर उसके द्वारा लाए गए साफ कपड़ों को धारण कर लेते। रात को लगभग नौ बजे वे एक गीत गाते – 'हम होंगे कामयाब एक दिन!' कभी-कभी वे उसे अंग्रेजी में भी गाते-'वी शैल ओवरकम वन डे।' किन्तु इस भिन्नता के बाद भी वे सबसे सप्रेम मिलते और अनेक कार्यक्रमों में सहभागी होते।

सरदार दर्शन सिंह-मेरे जेल में होने की खबर जेल के चिकित्सा अधिकारी डॉ. उपाध्याय को भी हुई। वह मेडिकल कॉलेज में मेरे साले के सहपाठी थे और मुझे बहुत पहले से जानते-मानते थे। किन्तु वह चाहते थे कि हमारे परिचय की प्रगाढ़ता की खबर किसी और को न हो। इसलिए एक दिन जब वह जेल के पागलखाने वाली बैरक में आए तब उन्होंने सरदार दर्शन सिंह को मेरे पास भेजकर मुझे बुलाया। मैं वहाँ पहुँचा। वह मेरे लिए बढ़िया मिठाई लाए थे। मैंने उसका आनन्द लिया। उस समय वह बोले – ''मैं चाहता हूँ कि जेल में आप खूब स्वस्थ-प्रसन्न रहें। इसके लिए मैं आपके दूध की मात्रा 600 ग्राम से बढ़ाकर एक लीटर किये देता हूँ। इसके साथ ही आप दो अंडे भी प्रतिदिन लें। चाहें तो सप्ताह में तीन बार मीट भी लें। मैं इस सबकी व्यवस्था अभी से कर देता हूँ।''

इस पर मैंने निवेदन किया- ''श्रीमान, अंडे और मीट तो आप रहने ही दें और दूध भी न बढ़ाएँ। वह जितना मिल रहा है, मेरे लिए उतना पर्याप्त है।'' किन्तु वह नहीं माने। उन्होंने दूध और शक्कर की मात्रा तो बढ़ा ही दी। किन्तु इस बैरक में एक अत्यन्त हृदय विदारक तथ्य भी सामने आया। वह जो सरदार दर्शन सिंह जी थे, (जो मुझे बुलाने गए थे) सरगुजा के थे और उन्होंने वहाँ आपातकाल की ज्यादतियों का विरोध किया था। उसके फलस्वरूप सत्तापक्ष से जुड़ी वहाँ के विधायक और सरगुजा के जिला प्रशासन ने उन्हें पागल घोषित कर ग्वालियर जेल भिजवा दिया। आपातकाल के नाम पर की गई यह कार्रवाई सारे जुल्म-ओ-सितम की सीमा ही पार कर गई। सरदार दर्शन सिंह के साथ हो रहे सतत् उत्पीड़न से मैं मर्मान्तक पीड़ा से भर गया। मैंने उनसे कहा- ''आप इस पागल बैरक से निकलकर कभी-कभी मेरी ओर आ जाया करें। इससे थोड़ा बहुत बदलाव तो आप महसूस करेंगे ही। फिर देखेंगे कि आपकी मुक्ति के लिये क्या किया जा सकता है।''

भाई दर्शन सिंह यही कोई पचपन वर्ष के होंगे। हो सकता है कि वह इससे काफी कम वय के हों। किन्तु तमाम अमानवीय यातनाओं के भोग ने उन्हें काफी वयोवृद्ध बना दिया था। वह मेरे निवेदन पर हमारी बैरक में प्राय: प्रतिदिन आने लगे। वह मेरे पास बैठकर अखबार पढ़ते और कभी-कभी उसे अपनी बैरक में भी ले जाते।

मैं उनकी मदद करना चाहता था। किन्तु कैसे, यह नहीं सूझ रहा था मुझे। परन्तु इंदिरा जी की पराजय और आपातकाल की समाप्ति पर जब मैं बाहर आया तब मैंने दर्शन सिंह जी की व्यथा कथा अखबारों को भेजी। कोई एक दर्जन अखबारों ने उनकी करुण कहानी प्रकाशित की। और इन सबका सुपरिणाम यह हुआ कि डेढ़-दो माह बाद संभवत: जून 1977 में उनकी रिहाई हो गई। किन्तु दुर्भाग्य यह है कि उन्हें पागल घोषित कर जेल भेजने वाले अदंडित ही रहे।

श्री रघुवीर सिंह- भिण्ड के जुझारू समाजवादी नेता और विधायक श्री रघुवीर सिंह भी ग्वालियर की केन्द्रीय कारागार में रहे। किन्तु वह जल्दी ही अस्वस्थ हो गए। और फिर उनकी अस्वस्थता गंभीर से

गंभीर होती चली गई। अंत में सरकार ने उन्हें जेल से रिहा कर दिया। वह भी शायद इसलिए कि वह जेल में नहीं, जेल से बाहर अपने प्राण छोड़ें।

संयोग से सितम्बर 1976 में, मुझे अपने छोटे बच्चे की अस्वस्थता के कारण पन्द्रह दिन के पैरोल पर छोड़ा गया। उन दिनों श्री रघुवीर सिंह जेल से बाहर कैंसर से जूझ रहे थे। एक दिन मैं उनसे मिलने पहुँचा। वह एक निखर्री खाट पर लेटे हुए थे और भीषण पीड़ा से जूझ रहे थे।

मैंने उनसे सहज ही कहा– ''कक्का, आप जल्दी ठीक हो जायेंगे। आजकल तो प्रायः हर रोग साध्य हो गया है।''

किन्तु उस महान नेता का उत्तर था– जुल्म से जूझने की घड़ी तो आज है लला, और मैं खाट पर पड़ा हूँ। ऐसे जीने का मतलब क्या है?

मैं उनकी वाणी सुनकर दंग रह गया। बड़ी कशिश थी उनके शब्दों में। जब मैं उनके पास से चला तब वह एक बार फिर बोले–''देखना लला, इस देश की जनता इन जुल्मियों को उनकी ऊँची कुर्सियों से नीचे खींच कर ही मानेगी। जनता छोड़ेगी नहीं उन्हें। घनघोर पातकी हैं ये।'' बाद में सुना कि वह नर केसरी नहीं रहा किन्तु उसके शब्द व्यर्थ नहीं गए। सत्य सिद्ध हुए वे। जनता आपातकाल के नियंताओं को धूल चटाकर ही मानी।

ग्वालियर की केन्द्रीय जेल में मीसाबंदियों का जीवन आमतौर पर ठीक ही रहा। किन्तु अनेकानेक ज्यादतियों के खिलाफ बीच-बीच में अनशन, प्रदर्शन, नारेबाजी आदि होते ही रहते है। कई बार दंड स्वरूप मीसाबंदियों को एकान्तवास (सॉलिटरी कन्फाइनमेंट) में डाल दिया जाता। एक बंदी थे-श्री आर.एन. कुमार। उन्हें तो इस यातना से कई दिन गुजरना पड़ा।

प्रदेश शासन मीसाबंदियों को एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित भी करता रहता था। इस क्रम में मा. श्री नारायण राव शेजवलकर (सांसद), श्री शीतला सहाय (विधायक, बाद में मंत्री), श्री माधव शंकर इंद्रापुरकर (महापौर) आदि ग्वालियर जेल से अन्य जेलों में भेजे गए थे। जेल प्रशासन का मानना था कि ऐसा करने से मीसाबंदियों को नियंत्रित करना आसान हो जाता है। किन्तु उनकी यह मान्यता निराधार ही थी। ग्वालियर में तो जेल प्रशासन को काफी लचीला रुख अपना कर ही चलना पड़ा।

और फिर धीरे-धीरे वह आपातकाल अपने समापन की ओर उन्मुख होने लगा जिसके बारे में कहा जाता था कि वह शायद कभी खत्म नहीं होगा और यदि कभी खत्म भी हुआ तो ऐसा होते होते दो-तीन दशक तो लग ही जायेंगे।

मार्च में देश में संसदीय निर्वाचन संपन्न हुए। 20 मार्च को चुनाव परिणाम सामने आ गए। इंदिरा जी और उनका दल धराशायी हो गए। भारतीय जनता ने अपने मूल अधिकारों के अपहर्ता को उसके सिंहासन से नीचे खींच लिया।

जनता की महान विजय के साथ ही ग्वालियर के मीसाबंदी मुक्त हुए। जनता ने उन्हें पुष्पमालाओं से लाद दिया। माताओं-बहनों ने उनकी हर चौराहे पर आरती उतारी। और यूँ दूसरी आज़ादी के उन सेनानियों के साथ मुझ अंकिचन का भी पर्याप्त महिमा मंडन हुआ।

सम्पर्क : ग्वालियर (म.प्र.)

प्र.ग. सहस्त्रबुद्धे

गोविंदाचार्य उर्फ भोलानाथ

माणिकचन्द वाजपेयी

विद्यार्थी परिषद् के नेता गोविंदाचार्य के साथ तो आपातकाल की ऐसी एक घटना जुड़ी है कि जो परीकथा या तिलिस्मी कथा जैसी लग सकती है। उनकी बैठकें निरन्तर चल रही थीं और वे नौजवानों में अभूतपूर्व जोश और कार्योत्साह निर्माण कर रहे थे। पुलिस के पास हर जगह से यह नाम पहुँचता था। पुलिस सूचना में कहा जाता था कि यह व्यक्ति सरकार के खिलाफ बगावत फैला रहा है। पर गोविंदाचार्य का बड़ा नाम और छोटी काया उनकी सहायक बन रही थी। एक बार पुलिस राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह-प्रांत कार्यवाह, 70 वर्षीय भोलानाथ झा को पकड़कर ले गयी और उन्हें गोविंदाचार्य के रूप में दण्डाधिकारी के सामने प्रस्तुत कर दिया। भोलानाथ अपना परिचय दे रहे थे और बार-बार कह रहे थे कि ''मैं भोलानाथ झा हूँ और गोविंदाचार्य नहीं हूँ।'' पर पुलिस गोविंदाचार्य से इतनी बार धोखा खा चुकी थी कि वह कुछ भी मानने को तैयार नहीं थी। मजिस्ट्रेट साहब ने भी, जब उनके सामने पुलिस द्वारा प्रस्तुत अभियुक्त का नाम, गाँव, पता पूछा, तब वे भी असमंजस में पड़ गये कि इन्हें गोविंदाचार्य मानें या भोलानाथ? क्योंकि भोलानाथ कह रहे थे कि ''मेरा नाम भोलानाथ है और मेरे पिता का नाम श्रीकान्त है।'' उतने ही आग्रह के साथ पुलिस कह रही थी कि ''यह खतरनाक आदमी है, झूठ बोल रहा है। यही गोविंदाचार्य है और इसके पिता का नाम नीलमेघाचार्य है।'' अन्त में मजिस्ट्रेट साहब ने बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने झा को मीसा का वारंट तो जारी नहीं किया, परन्तु न्यायिक हिरासत में कारागर भेज दिया। जेल भेजे जाने वाले आदेश में उन्होंने लिखा- गोविंदाचार्य उर्फ भोलानाथ वल्द नीलमेघाचार्य उर्फ श्रीकान्त झा।''

कुछ दिनों बाद जब तारीख पेशी पड़ी तो भोलानाथ झा के वकील ने अदालत में दण्डाधिकारी महोदय को संबोधित करते हुए कहा- ''मान्यवर महोदय, मैं गोविंदाचार्य को भी जानता हूँ और भोलानाथ झा को भी। एक तीस वर्ष का है दूसरा सत्तर वर्ष का। एक बिल्कुल काला है, दूसरा बिल्कुल गोरा। एक दुबला-पतला है, दूसरा भारी-भरकम। एक बनारस विश्वविद्यालय का अभियांत्रिकी स्नातक है तो दूसरे वे हैं जो कटिहार में तीस साल पहले वकालत करते थे और अब संघ का कार्य करते हैं।'' झा की जमानत हो गई गयी और पुलिस गोविंदाचार्य को फिर से खोजने लगी।

हम्माल बन कर बचे- गोविंदाचार्य को पकड़ने के लिए पुलिस इतनी उत्सुक और सतर्क इसलिए थी कि उसकी मान्यता थी कि यदि दो व्यक्ति, कैलाशपति मिश्र और गोविन्दचार्य पकड़ में आ जाते हैं तो

बिहार का भूमिगत आन्दोलन ठप्प हो जायेगा। फिर गोविंदाचार्य बार-बार पुलिस को चकमा देते थे। एक बार गोविंदाचार्य ट्रेन द्वारा मोकाम से पटना आ रहे थे। पटना जंक्शन से पहले सिटी स्टेशन आया। यहाँ एक पुलिस इंस्पेक्टर उसी डिब्बे में चढ़ा जिसमें गोविंदाचार्य यात्रा कर रहे थे। गोविंदाचार्य ने उसे और उसने गोविंदाचार्य को देख लिया। पर गोविंदाचार्य के साथ उनके खतरनाथ और खूँखार होने की इतनी कहानियाँ जुड़ी थीं कि सब-इंस्पेक्टर ने उन्हें अकेले के बल पर पकड़ने का साहस नहीं किया। वह चलती टेन से उतर गया और उसने पुलिस को सूचना दे दी। उसने डिब्बे का नम्बर भी बता दिया। जब ट्रेन पटना जंक्शन पहुँची तो पुलिस ने सारे स्टेशन पर नाकाबंदी कर रखी थी। बताये गये नंबर के डिब्बे के हर यात्री को गौर से देखा-परखा जाता था, पर पुलिस को गोविंदाचार्य नहीं मिले। वह हाथ मलती रह गयी। हुआ यह कि ज्यों ही पटना सिटी स्टेशन से इन्स्पेक्टर उतरा, त्यों ही गोविंदाचार्य ने सहयात्री दोस्त से कहा, ''मेरे पास कोई सामान नहीं है, आपका सामान में ले चलूँगा, आप क्यों कुली के फेर में पड़ते हैं?'' पटना स्टेशन पर यात्रियों का सामान उतारने डिब्बे में चढ़े अन्य कुलियों के समान गोविंदाचार्य भी सहयात्री का सामान सिर पर लादे कुली के वेश में पुलिस घेराबन्दी से बाहर निकल गये।

गोविन्दाचार्य की सूझबूझ और साहस का एक और उदाहरण देना समीचीन होगा। लोकनायक जयप्रकाश 'जसलोक' से पटना पहुँच चुके थे। भूमिगत गतिविधियों की जानकारी देने और मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए गोविंदाचार्य का जयप्रकाश जी से मिलना आवश्यक था। लेकिन उन दिनों जयप्रकाश जी से मिलना अपनी गिरफ्तारी को सीधा बुलावा देना था। परन्तु एक दिन जब जयप्रकाश जी घूमने गये तब वहाँ तैनात पुलिस भी उनके साथ चली गयी। गोविंदाचार्य ने मौका देखा और वे चुपचाप जयप्रकाश जी के कमरे में जा छिपे। जयप्रकाश जब लौटकर आये तब गोविंदाचार्य को देखकर आश्चर्यचकित और गद्गद हो गये। गोविंदाचार्य ने पता कर लिया था कि इस कमरे में पुलिस प्रवेश नहीं करती। तीन घण्टे तक उनकी चर्चा होती रही। अब बाहर जाने का सवाल था। पर अपने बुद्धि-बल और भगवान भरोसे वे निकल पड़े। पुलिस ने उन्हें देखा, थोड़ी भागम्भाग भी हुई, पर गोविंदाचार्य निकल गये।

सुरेश हिंदुस्थानी

आपातकाल : लोकतंत्र पर जबरदस्त आघात

सत्ता की ताकत का दुरुपयोग कैसे किया जाता है, इसका उदाहरण कांग्रेस सरकार द्वारा 1975 में देश पर तानाशाही पूर्वक लगाया गया आपातकाल है। जिसमें अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार ही समाप्त कर दिया गया था। इसे एक प्रकार से देश की आजादी को छीनने का दुस्साहसिक प्रयास भी माना जा सकता है। क्योंकि इंदिरा शासन द्वारा देश पर थोपे गए आपातकाल में सरकार के विरोध में आवाज उठाने को पूरी तरह से प्रतिबंधित कर दिया था। यहाँ तक कि सरकार ने विपक्ष की राजनीति करने वालों के साथ ही उन समाजसेवियों और राष्ट्रीय विचार के प्रति समर्पित उन संस्थाओं के व्यक्तियों को जेल में ठूँस दिया था, जो सरकार की कमियों के विरोध में लोकतांत्रिक तरीके से आवाज उठा रहे थे। सरकार के इस कदम को पूरी तरह से अलोकतांत्रिक कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इंदिरा गांधी की सरकार ने अपनी सरकार के खिलाफ उठने वाली हर उस आवाज को दबाने का प्रयास किया, जो लोकतांत्रिक रूप से भी सही थी। वैसे देखा जाए तो कांग्रेस शासन का यही चरित्र रहा है कि उनके खिलाफ उठने वाली आवाज को किसी भी प्रकार से शांत किया जाए। आज भी कांग्रेस ठीक इसी पद्धति से काम करती हुई दिखाई दे रही है। कांग्रेस में लोकतांत्रिक सिद्धांतों की बलि दी जाती रही है।

इसे कांग्रेस का स्वभाव ही माना जा सकता है कि उसने देश को मजबूत करने वाली आवाज को मुखर नहीं होने दिया। इसके विपरीत देश के विरोध में उठने वाली आवाज को बिना सोचे-समझे अभिव्यक्ति की आजादी कहकर समर्थन किया। सीधे शब्दों में निरूपित किया जाए तो यही कहा जा सकता है कि कांग्रेस को अपने विरोध में कही गई कोई बात जरा भी पसंद नहीं है। इसी कारण नेशनल हेराल्ड में जब जाँच की बात आती है तो कांग्रेस के नेता एकजुट होकर ऐसा प्रदर्शन करते हैं, जैसे वही सही हैं और बाकी सभी गलत। कांग्रेस पार्टी ने एक नहीं कई बार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर राष्ट्र विरोधी ताकतों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन देने का काम किया है, लेकिन जो कांग्रेस गाहे-बगाहे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वकालत करती रही है, उसने ही 25 और 26 जून 1975 की रात को आपातकाल लगाने के बाद अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का पूरी तरह गला घोंट दिया था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर किस प्रकार कुठाराघात किया जाता है, इस तथ्य को जानने के लिए कांग्रेस के नेताओं को आपातकाल के काले अध्याय का अध्ययन करना चाहिए। आपातकाल के नाम पर कांग्रेस ने अंग्रेजों से भी भयंकर यातनाएँ देते हुए देश भक्तों पर कहर बरपाया। जिसके स्मरण मात्र से दिल में सिरहन दौड़ जाती है। जिन लोगों ने इस काली रात का साक्षात्कार किया, उनके अनुभव सुनने मात्र से ही लगता है कि इन्होंने आपातकाल को किस कदर भोगा होगा। आपातकाल लगाने के पीछे के कारणों पर दृष्टिपात किया जाए तो यही तथ्य सामने आते हैं कि उस समय की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी पूरी तरह से तानाशाह शासक की भूमिका में दिखाई दीं। उन्होंने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश को ठेंगा बताते हुए अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास किया, यह एक प्रकार से सत्ता का दुरुपयोग ही था। वह निर्णय क्या था? इसकी जड़ में 1971 में हुए लोकसभा चुनाव था, जिसमें उन्होंने अपने मुख्य प्रतिद्वंद्वी राजनारायण को पराजित किया था, लेकिन चुनाव परिणाम आने के चार साल बाद

राजनारायण ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनाव परिणाम को चुनौती दी। 12 जून 1975 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जगमोहन लाल सिन्हा ने इंदिरा गांधी का चुनाव निरस्त कर उन पर छः साल तक चुनाव न लड़ने का प्रतिबंध लगा दिया और उनके मुकाबले हारे और श्रीमती गांधी के चिर प्रतिद्वंद्वी राजनारायण सिंह को चुनाव में विजयी घोषित कर दिया था। राजनारायण सिंह की दलील थी कि इंदिरा गांधी ने चुनाव में सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग किया, तय सीमा से अधिक पैसा खर्च किया और मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए गलत तरीकों का इस्तेमाल किया। न्यायालय ने इन आरोपों को सही ठहराया था। इसके बावजूद श्रीमती गांधी ने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र देने से इनकार कर दिया और देश में आपातकाल घोषित कर दिया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय के साथ ही गुजरात में चिमनभाई पटेल के विरुद्ध विपक्षी जनता मोर्चे को भारी विजय मिली। इस दोहरी चोट से इंदिरा गांधी बौखला गईं। इन्दिरा गांधी ने न्यायालय के इस निर्णय को मानने से इनकार करते हुए सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की घोषणा की और 26 जून को आपातकाल लागू करने की घोषणा कर दी गई। इंदिरा गांधी का यह कदम न्यायालय के आदेश का अपमान करने वाला ही था।

आपातकाल के नाम पर केवल उन्हीं लोगों को जेल में जबरदस्ती बंद किया था, जो सरकार के विरोधी थे। देश भर में इंदिरा शासन के विरुद्ध जबरदस्त आंदोलन खड़ा किया। आपातकाल में शासन, प्रशासन ने लोकनायक जयप्रकाश के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन में हिस्सा लेने वाले हर उस व्यक्ति को प्रताड़ना दी, जो लोकतांत्रिक तरीके से सरकार के विरोध में आवाज उठा रहे थे। विपक्षी राजनेताओं ने देश में केन्द्र सरकार के विरोध में ऐसा वातावरण बनाया कि इंदिरा गांधी को अपना सिंहासन हिलता हुआ दिखाई दिया। जॉर्ज फर्नांडीज को लोहे की जंजीरों से बाँधकर यातनाएँ दी गईं। देश के जितने भी बड़े नेता थे, सभी सलाखों के पीछे डाल दिए गए। एक तरह से जेलें राजनीतिक पाठशाला बन गईं। जिन लोगों ने यह दृश्य देखा, उनका यही कहना था कि ऐसा दृश्य तो अंग्रेजों के शासनकाल में भी नहीं दिखा। कहने का आशय यही है कि इंदिरा गांधी ने देश के लोकतंत्र का पूरी तरह से अपहरण कर लिया। इस दौरान जनता के सभी मौलिक अधिकारों को स्थगित कर दिया गया था। सरकार विरोधी भाषणों और किसी भी प्रकार के प्रदर्शन पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया।

आपातकाल के दौरान सत्ताधारी कांग्रेस आम आदमी की आवाज को कुचलने की निरंकुश कोशिश की। इसका आधार वह प्रावधान था जो धारा-352 के तहत सरकार को असीमित अधिकार देता था। मीसा और डीआईआर के तहत देश में एक लाख से ज्यादा लोगों को जेलों में ठूँस दिया गया। आपातकाल के खिलाफ आंदोलन के नायक जयप्रकाश नारायण की कैद के दौरान किडनी खराब हो गई थी। कर्नाटक की मशहूर अभिनेत्री डॉ. स्नेहलता रेड्डी जेल से बीमार होकर निकलीं, बाद में उनकी मौत हो गई। उस काले दौर में जेल-यातनाओं की दहला देने वाली कहानियाँ भरी पड़ी हैं। आज कभी-कभी कांग्रेस लोकतंत्र बचाने की बात ऐसे करती है, जैसे लोकतंत्र के मायने केवल कांग्रेस ही समझती है और कोई नहीं जानता। सत्य यह है कि आज स्वयं कांग्रेस के अंदर ही लोकतंत्र नहीं है, केवल परिवार तंत्र है। इसलिए कांग्रेस से लोकतंत्र की उम्मीद करना बेमानी ही कहा जाएगा।

सम्पर्क : ग्वालियर (म.प्र.) मो. 9425101815

पंकज जगन्नाथ जयसवाल

आपातकाल के अलग-अलग दौर

दिवंगत प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा घोषित आपातकाल भारत के मूल सिद्धांत के विपरीत था। आइए देखें कि नेहरू गांधी परिवार के शासनकाल में अभिव्यक्ति की इस स्वतंत्रता का किस प्रकार दमन किया गया। आपातकाल का युग बस उसी का एक स्थूल रूप था।

प्रेस की आजादी का मतलब- संविधान का अनुच्छेद 19 (1) (ए) सीधे तौर पर पत्रकारिता की स्वतंत्रता को संबोधित नहीं करता है। मसौदा समिति के अध्यक्ष डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर ने संविधान सभा की बहस के दौरान यह स्पष्ट कर दिया था कि प्रेस की स्वतंत्रता का कोई विशेष उल्लेख आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रेस और एक व्यक्ति या एक नागरिक खुद को व्यक्त करने के अधिकार के मामले में एक समान है। यूनियन ऑफ इंडिया बनाम एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि 'भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में जानकारी प्रदान करने और प्राप्त करने का अधिकार, साथ ही राय रखने की स्वतंत्रता भी शामिल है।' इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र बनाम यूनियन ऑफ इंडिया मामले में, यह माना गया है कि प्रेस लोकतांत्रिक तंत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर की विचार प्रक्रिया की आलोचना की गई और इसे कभी गंभीरता से नहीं लिया गया क्योंकि यह कई मौकों पर तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू के व्यक्तिगत एजेंडे का खंडन करती थी।

पत्रकारिता की स्वतंत्रता की रक्षा करना और इसे प्रतिबंधित करने वाले किसी भी कानून या प्रशासनिक उपायों को पलटना अदालतों का कर्तव्य है। रोमेश थापर बनाम मद्रास राज्य में, सुप्रीम कोर्ट ने प्रेस को शामिल करने के लिए भाषण या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को परिभाषित किया। सुप्रीम कोर्ट ने एल.आई.सी. विरुद्ध मनुभाई शाह, जैसा कि इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र बनाम भारत संघ में हुआ था, कि किसी की राय फैलाने की स्वतंत्रता मौखिक, लेखन, या दृश्य-श्रव्य माध्यम से हो सकती है। प्रसारित करने के इस अधिकार में परिसंचरण की मात्रा को नियंत्रित करने की क्षमता भी शामिल है। परिणामस्वरूप, इसमें कोई संदेह नहीं है कि पत्रकारिता की स्वतंत्रता को आज एक बुनियादी मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाता है।

जवाहरलाल नेहरू : तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अपने कठोर प्रेस (आपत्तिजनक मामला) अधिनियम, 1951 के माध्यम से प्रेस की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने को उचित ठहराया था। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की यह कमी तब भी दिखाई दी थी जब कवि और गीतकार मजरूह सुल्तानपुरी को नेहरूजी पर आलोचनात्मक कविता लिखने के लिए गिरफ्तार किया गया था और एक साल जेल में बिताना पड़ा था। 1951 में नेहरू के शासन के दौरान, दिल्ली के मुख्य आयुक्त ने पूर्वी पंजाब सार्वजनिक

सुरक्षा अधिनियम के तहत एक राष्ट्रवादी अंग्रेजी साप्ताहिक द ऑर्गनाइज़र के खिलाफ एक आदेश पारित किया, जिसमें अखबार को प्रकाशन से पहले सभी लेख, समाचार, कार्टून, विश्लेषण और चित्र जाँच के लिए प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। सांप्रदायिक मुद्दों से संबंधित या पाकिस्तान विभाजन के संबंध में सच्ची सामग्री छापने के लिए।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कथित तौर पर 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक कॉलम बंद करवा दिया था। इसे पहले सिविल कार्यकर्ता एडी गोरवाला ने 'विवेक' उपनाम से लिखा था। इसे रद्द कर दिया गया क्योंकि यह उनके लिए बहुत आलोचनात्मक था। नेहरू के कांग्रेस प्रशासन ने प्रकाशन क्रॉसरोड्स को गैरकानूनी घोषित कर दिया। सुप्रीम कोर्ट ने बाद में पत्रिका के प्रतिबंध को पलट दिया, लेकिन नेहरू ने भारतीय संविधान में पहले संशोधन का उपयोग करके ऑर्गनाइजर और क्रॉस रोड्स पर निर्णय को बदल दिया।

इंदिरा गांधी- स्टालिन के रूस के बाद, इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारत ने दुनिया में कहीं भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और पत्रकारिता पर सबसे तीखा हमला देखा। देश पर लगाए गए आपातकाल के दौरान सैकड़ों पत्रकारों को जेल में डाल दिया गया और स्वतंत्र प्रेस को अपने अस्तित्व के लिए लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। इंदिरा गांधी के आपातकाल के दौरान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में इतनी कटौती की गई जितनी पहले कभी नहीं हुई। प्रेस स्वतंत्रता के वैश्विक सूचकांक में भारत गिरा। सेंसरशिप उस समय का आदेश था, छपने से पहले प्रकाशित होने वाली हर खबर की जाँच सरकार करती थी।

26 जून, 1975 के शुरुआती घंटों में, तत्कालीन राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने 'आंतरिक गड़बड़ी' को राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बताते हुए भारत में आपातकाल की घोषणा की। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने स्वतंत्र प्रेस सहित नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया और संविधान को संशोधित और परिवर्तित किया गया। आपातकाल के दौरान, पत्रकारों, विपक्षी राजनेताओं और कार्यकर्ताओं को इंदिरा गांधी के कठोर शासन के तहत जेल में डाल दिया गया था।

गिरफ्तारियाँ, धमकियाँ- मुख्यधारा मीडिया की अधिकांश पत्रिकाएँ और समाचार पत्र आपातकाल के प्रकोप के अधीन थीं। कुछ को प्रकाशनों से निष्कासन की धमकी दी गई, जबकि अन्य को जेल में डाल दिया गया। इंडियन एक्सप्रेस और द स्टेट्समैन अपने-अपने संस्करणों में शिकायत करने वाले पहले व्यक्ति थे। विरोध के तौर पर द इंडियन एक्सप्रेस और द स्टेट्समैन के संपादकीय पन्ने खाली छोड़ दिए। इसके तुरंत बाद आगे के प्रकाशन हुए। इंडियन एक्सप्रेस के अनुसार, द टाइम्स ऑफ लंदन, द वाशिंगटन पोस्ट और द लॉस एंजिल्स टाइम्स के पत्रकारों को देश में प्रवेश करने से रोक दिया गया। धमकियों के बाद, गार्जियन और द इकोनॉमिस्ट के संवाददाता यूनाइटेड किंगडम लौट आए।

बीबीसी की आवाज मार्क टुली को भी नेटवर्क ने हटा दिया। गृह मंत्रालय के अनुसार, मई 1976 में लगभग 7,000 पत्रकारों और मीडियाकर्मियों को गिरफ्तार किया गया था। फ्रीडम हाउस के वैश्विक मूल्यांकन के अनुसार, प्रेस की स्वतंत्रता में भारत की स्थिति, जो 1970 के दशक की शुरुआत में तीसरे स्थान पर थी, 1975 से 1977 में गिरकर 34 वें स्थान पर आ गई। न्यूयॉर्क टाइम्स ने 28 दिसंबर, 1975 को रिपोर्ट दी कि भारत में प्रेस पर कड़े प्रतिबंधों ने लोकतांत्रिक समाज को एक महत्त्वपूर्ण झटका दिया है।

संकट के दौरान, आरएसएस से प्रेरित पत्रिकाओं और समाचार पत्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही एक कारण था कि ऐसी कई पत्रिकाएँ और समाचार पत्र सरकार के निशाने पर थे। पाञ्चजन्य, ऑर्गनाइजर, मदरलैंड, तरुण भारत, विवेक, विक्रम, राष्ट्रधर्म और युगधर्म इसके कुछ उदाहरण हैं। मदरलैंड के संपादक और ऑर्गनाइजर के संपादक के.आर. मलकानी आपातकाल के दौरान जेल जाने वाले पहले पत्रकार थे और आपातकाल समाप्त होने तक जेल में रहे।

राजीव गांधी– जुलाई 1988 में, राजीव गांधी ने वह विधेयक पेश किया जिसे भारत सरकार द्वारा तैयार किए गए सबसे दंडात्मक विधेयकों में से एक के रूप में जाना जाता है। 'आपराधिक आरोप' और 'अपमानजनक लेखन' को रोकने की प्रधानमंत्री की मंशा के परिणामस्वरूप मानहानि क़ानून लागू हुआ। हिंदू और इंडियन एक्सप्रेस द्वारा बोफोर्स विवाद की व्यापक कवरेज, जिसमें प्रधानमंत्री सहित कांग्रेस पार्टी के वरिष्ठ राजनेता शामिल थे, ने कथित तौर पर उन्हें नीति पेश करने के लिए मजबूर किया। 'हम अनुरोध करेंगे कि वे (प्रेस) विधेयक पढ़ें।' हमें पूरा यकीन है कि बिल जरूरी है. मुझे व्यक्तिगत रूप से यकीन है कि हम सही रास्ते पर हैं। राजीव गांधी ने 4 सितंबर, 1988 को एक संवाददाता सम्मेलन में बात की।

हालाँकि, यह सिर्फ एकजुट मीडिया नहीं था, जिसने कांग्रेस नेता को बिल वापस लेने के लिए प्रेरित किया। वकील, छात्र, ट्रेड यूनियनवादी और बुद्धिजीवी सभी सरकार के तानाशाही कदम की निंदा करने के लिए सड़कों पर उतर आए। दूसरी ओर, कांग्रेस के सदस्यों का प्रतिरोध उल्लेखनीय था। कांग्रेस के अधिकांश वरिष्ठ सदस्यों ने इस विधेयक का कड़ा विरोध किया। (स्रोत : फ्रीप्रेस जर्नल, इंडियन एक्सप्रेस, ऑफ इंडिया, द ऑर्गेनाइजर, द न्यूयॉर्क टाइम्स)

वंशवादी शासकों ने अपने एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए हमेशा लोकतांत्रिक आवाजों के खिलाफ काम किया है, जिस कारण 'भारतीयत्व' के मूल मूल्यों को नुकसान पहुँचाया है। वंशवादी राजकीय दलों ने मीडिया आउटलेट्स और बौद्धिक वर्ग के साथ जो किया, यदि वर्तमान केंद्र सरकार उसका केवल 10 प्रतिशत भी करे तो क्या होगा? हम भारतीयों को फिर से 'विश्वगुरु' बनने के लिए 'भारतीयत्व' के लिए प्रयास करते रहना चाहिए।

साभार : पाञ्चजन्य

हितेश शंकर

पुछल्लों पर टिके तानाशाह

कांग्रेस का गाँधी तो वह है जो झूठमूठ की ट्रक यात्रा करता है और झूठ को अपनी राजनीति का आधार बनाता है। सत्य और अहिंसा के पुजारी गाँधी इस कांग्रेस के गाँधी हो ही नहीं सकते।

महात्मा गाँधी कांग्रेस के लिए क्या हैं? और महात्मा गाँधी गीता प्रेस गोरखपुर के लिए क्या हैं? ये प्रश्न जून के तपते मौसम में एकाएक गरमा गए हैं। अभी गीता प्रेस गोरखपुर को महात्मा गाँधी राष्ट्रीय शांति पुरस्कार देने की घोषणा हुई है। जून इसलिए भी विशेष है क्योंकि लोकतंत्र की जड़ों पर प्रहार करने की जिद, नागरिक अधिकारों की डालियों पर कुल्हाड़ी चलाने की कोशिश 25 जून 1975 को ही हुई थी। जो गाँधी स्वतंत्रता के साथ ही कांग्रेस का तर्पण करने का मन बना चुके थे, वह देश पर आपातकाल थोपने का बर्बर प्रयोग कैसे देखते?

नाम में गाँधी का पुछल्ला जोड़कर हिटलर के कदमों पर चलती वह कांग्रेस न केवल अहिंसा से दूर और नाजीवाद के पास है, बल्कि गाँधी से तो उसका कोई नाता ही नहीं है। लगातार मूर्खतापूर्ण टिप्पणियाँ करने वाली पार्टी में अपेक्षाकृत समझदार समझे जाने वाले जयराम रमेश ने गीता प्रेस गोरखपुर को निशाना बनाने के लिए जिन तर्कों को आधार बनाया है, वह एक फर्जी (कथित) शोध पुस्तक से उधार लिए गए हैं।

गीता प्रेस के संस्थापक जयदयाल गोयंदका जी का, संपादक भाई हनुमान प्रसाद पोद्दार जी का गाँधी जी के साथ कैसा संबंध था, उनके बीच कैसा पत्राचार होता था, इसका कांग्रेस को किंचित भी आभास नहीं है। कांग्रेस के गले यह बात उतर ही नहीं सकती कि यह वह गीता प्रेस है जिसने गाँधी जी की एक सलाह के बाद आज तक कभी कोई विज्ञापन ही नहीं लिया। यही नहीं, हाल में जिस पुरस्कार की घोषणा हुई है उसमें पुरस्कार के साथ मिलने वाली एक करोड़ रुपए की राशि लेने से भी गीता प्रेस ने इंकार कर दिया है। प्रश्न है कि क्या कांग्रेस को गोरक्षा को लेकर, कन्वर्जन और ईसाई मिशनरियों की भूमिका को लेकर महात्मा गाँधी के विचारों का अनुमान भी है?

क्या कांग्रेस के लिए 'गाँधी' शब्द के मात्र दो अर्थ हैं– एक करेंसी नोटों पर छपे गांधी और दूसरे वह गांधी, जिन्हें कांग्रेस के दरबारी राजनीतिक करेंसी समझते हैं? जो कांग्रेस मुस्लिम लीग को सेक्युलर होने का प्रमाणपत्र देती है, उस कांग्रेस को गीता प्रेस सांप्रदायिक नजर आती है? यह कहना कि महात्मा गांधी के निधन पर कल्याण पत्रिका ने श्रद्धांजलि प्रकाशित नहीं की थी, एक ऐसा मूर्खतापूर्ण बिन्दु है, जो सिर्फ किसी ढीठ अपराधी के दिमाग में उत्पन्न हो सकता है। दैनिक समाचार पत्र भी आधी रात के बाद के समाचार प्रकाशित न कर पाने के लिए विवश होते हैं। समाचार पत्र छपने में और पाठक तक पहुँचने

में समय लगता है। इसी प्रकार 1 फरवरी को निकलने वाले अंक की सामग्री, आज से सात दशक पूर्व की तकनीक में, कम से कम 10-12 दिन पहले ही पूरी हो जाती थी।

ऐसे में कांग्रेस का प्रश्न यह भर रह जाता है कि 'कल्याण पत्रिका ने गाँधी जी की हत्या की एक सप्ताह पहले ही भविष्यवाणी क्यों नहीं कर दी थी।' वास्तविकता यह है कि इस दुर्भाग्यपूर्ण घटनाक्रम के बाद कल्याण के जितने भी अंक छपने से रह गए थे, उनमें गाँधी जी को श्रद्धांजलि अत्यंत श्रम और प्रयत्नपूर्वक जोड़ी गई थी।

इस संदर्भ में पाञ्चजन्य ने आज से छ: वर्ष पूर्व पड़ताल की थी और यह पाया था कि उस समय भी गीता प्रेस ने अपनी छपाई रोककर गाँधी जी को श्रद्धांजलि देने के लिए कुछ वाक्य नहीं, बल्कि पूरे तीन पृष्ठ जोड़े थे। जहाँ तक हनुमान प्रसाद पोद्दार जी की बात है, तो तथ्य यह है कि यह वही हनुमान प्रसाद पोद्दार थे जिनके गाँधी जी के साथ आत्मीय संबंध थे और जिन्होंने 1932 में अंग्रेज सरकार द्वारा गोरखपुर जेल में बंद किए गए गाँधी जी के पुत्र देवदास गाँधी का ध्यान अपने पुत्र की तरह रखा था।

अक्षय मुकुल की उस कथित पुस्तक के बारे में चर्चा करना भी आवश्यक नहीं है, जिसका उल्लेख कांग्रेस एक तथ्य के रूप में करती है। अक्षय मुकुल की लिखी कोई बात तथ्यों पर आधारित नहीं है। बल्कि जिस तथ्य को छिपाया गया है वह यह है कि यह पुस्तक कांग्रेस द्वारा प्रायोजित थी, जिसके तथ्य झूठे थे और अपनी ओर से कथानक गढ़ने के लिए कांग्रेस ने इतना बड़ा स्वाँग रचा था। जो कांग्रेस केरल की सड़कों पर गोमांस की पार्टी आयोजित करती है, क्या वह कांग्रेस उस गाँधी को जानती भी है जिसके लिए गोसेवा परमप्रिय थी?

कांग्रेस का गाँधी तो वह है जो झूठमूठ की ट्रक यात्रा करता है और झूठ को अपनी राजनीति का आधार बनाता है। सत्य और अहिंसा के पुजारी गाँधी इस कांग्रेस के गाँधी हो ही नहीं सकते। हिटलर ने नाजियों ने समाजवाद शब्द का पुछल्ला बनाया हुआ था, और कांग्रेस ने गाँधी शब्द को पुछल्ला बना रखा है।

सम्पर्क : संपादक-पाञ्चजन्य
दिल्ली (भारत)

विष्णु शर्मा

इमरेजेंसी की भेंट चढ़ गए थे दिल्ली के एक उपराज्यपाल

इमरजेंसी की जाँच को बने शाह आयोग के सामने पश्चिम बंगाल के पूर्व मुख्यमंत्री सिद्धार्थ शंकर रे के एक बयान से इस बात को बखूबी समझा जा सकता है कि संजय गांधी ने इमरजेंसी के दौरान कैसे लोकतंत्र की धज्जियाँ उड़ाई थीं। रे ने अपने बयान में कहा था कि, '25 जून की आधी रात को कुछ 'अनुत्तरदायी' व्यक्तियों ने एक बैठक में फैसला किया कि अदालतें बंद कर दी जाएँ, और समाचार पत्रों के बिजली कनेक्शन काट दिए जाएँ।'

कौन थे वो अनुत्तरदायी व्यक्ति, जो देश के पीएम के होते हुए बिना पद पर होते हुए भी फैसले ले रहे थे, संजय गांधी उनका अगुवा थे। तभी तो इस गवाही के बाद शाह आयोग ने संजय गांधी के लिए ये शब्द इस्तेमाल किया था, 'भारत सरकार का बेटा।'

1978 के जुलाई महीने में एक और हृदय विदारक घटना हुई, जिसका सच आज तक सामने नहीं आ पाया। शाह आयोग के समक्ष इंदिरा गांधी के करीबी अधिकारियों, इंदिरा गांधी के निजी सचिव आर के धवन, दिल्ली के उपराज्यपाल कृष्ण चंद के पूर्व सचिव नवीन चावला, पूर्व डीआईजी पीएस भिंडर आदि ने जिस व्यक्ति के सिर कई फैसलों का ठीकरा फोड़ा था, वे थे दिल्ली के तत्कालीन उपराज्यपाल कृष्ण चंद। इन लोगों का कहना था कि मीसा के तहत सारी गिरफ्तारियाँ हों या फिर दिल्ली में तोड़फोड़, सब उपराज्यपाल के आदेश से हुई।

फिर कृष्ण चंद की भी गवाही शाह आयोग के सामने हुई। उसके बाद 9 जुलाई 1978 को 61 साल के कृष्ण चंद रात आठ बजे वकील से मिलने की बात कहकर दक्षिण दिल्ली के अपने घर से निकले और फिर वापस नहीं आए।

अगले दिन तड़के उनकी लाश उनके घर से 2 किलोमीटर दूर एक 60 फुट गहरे कुँए में मिली। ये कुँआ दक्षिण दिल्ली में शाहपुर जट गाँव के पास था। उस वक्त दिल्ली में ऐसे तमाम कुँए खुले रहते थे।

उन्होंने एक सुसाइड नोट पत्नी सीता के नाम बैडरूम में छोड़ा कि वह शाह आयोग के सामने हुई पूछताछ के चलते तनाव में हैं, जबकि दूसरा सुसाइड नोट कुँए की मुँडेर पर रखे जूतों के साथ मिला, जिसमें हिंदी में लिखा था, 'जीना जिल्लत से है, तो उससे मरना अच्छा है।'

पोस्टमार्टम रिपोर्ट में सामने आया कि उनकी मौत 9 जुलाई की रात आठ बजकर चालीस मिनट पर हुई थी। उनकी मौत की वजह डूबने से शरीर को ऑक्सीजन न मिलना बताई गई। हालाँकि फॉरेंसिक रिपोर्ट में दोनों सुसाइड नोट्स पर उनकी ही हैंडराइटिंग पाई गई, लेकिन ज्योति बसु ने इस केस की न्यायिक जाँच की माँग की, जिसके चलते केस साउथ दिल्ली पुलिस से लेकर क्राइम ब्रांच को दे दिया गया था।

दरअसल कृष्ण चंद ने शाह आयोग को अपनी गवाही में बताया था कि कैसे कई नेताओं की गिरफ्तारी, तोड़फोड़ आदि जैसे फैसले ज्यादातर संजय गांधी से मिले थे, और कई इंदिरा गांधी से भी।

हालाँकि इंदिरा के करीबियों ने इमरजेंसी में ज्यादतियों का पूरा जिम्मेदार कृष्णचंद को ठहराने की कोशिश की। जबकि कृष्ण चंद ने बताया था कि कैसे तोड़फोड़ के दौरान खुद संजय गांधी मौजूद रहते थे। कृष्ण चंद आयोग से कहा था कि उनको केवल बलि का बकरा बनाया जा रहा है।

इमरजेंसी के इतने बड़े फैसले वे भला कैसे ले सकते हैं और ये तार्किक भी नहीं था। विपक्ष ने इंदिरा गांधी पर कृष्ण चंद की हत्या का आरोप भी लगाया, क्योंकि उसी तरह जून 1977 में संजय गांधी के श्वसुर कर्नल आनंद की भी संदिग्ध मौत हुई थी. उसको लेकर भी संजय गांधी विपक्ष के निशाने पर थे।

मीडिया ने भी आसपास के लोगों से बातचीत करके उस वक्त छापा था कि 15-20 लोग दो कारों में उस रात उस कुंए के आस-पास देखे गए थे। अखबारों ने इस पर आश्चर्य जताया कि इतने गहरे कुँए में कृष्ण चंद बिना कुँए की दीवारों से टकराए सीधे तलहटी में ही कैसे गिरे।

कृष्ण चंद के चश्मे, घड़ी और पेन के गायब होने पर भी सवाल उठे, लेकिन पुलिस ने जांच में उसे आत्महत्या ही बताया। दोनों सुसाइड नोट्स से भी इतना तो पता चल रहा था कि वे शाह आयोग में हो रही पूछताछ को लेकर तनाव में थे।

पूर्व प्रधानमंत्री और उनके बेटे के खिलाफ बोलना काफी हिम्मत का काम था, वे वापस भी सत्ता में आ सकती थीं। लेकिन सच नहीं बताते तो सारा ठीकरा उन्हीं के सर मढ़ दिया जाता। आज तक कृष्णचंद की मौत का राज नहीं खुल पाया। विपक्ष जरूर हत्या का आरोप लगाता रहा, उनका कहना था कि कृष्ण चंद के पास ही गांधी परिवार के खिलाफ सबसे ज्यादा सुबूत थे।

सीपीएम के नेताओं ने उस वक्त केवल न्यायिक जांच की ही मांग नहीं की थी, बल्कि वे इस उप राज्यपाल नाम की ही संस्था के खिलाफ खुलकर आ गए थे। उन्होंने पार्टी की बैठक में उप राज्यपाल पद को ही तब खत्म करने का प्रस्ताव पारित कर केन्द्र सरकार से ये माँग की थी।

संजय गांधी, दिल्ली में उनकी तोड़फोड़, नसबंदी गैंग की आप तमाम कहानियाँ पढ़ेंगे। डीके बरुआ, बंसीलाल जैसे उनकी खुशामद में लगे रहने वाले नेताओं की भी, लेकिन उनके खिलाफ खड़े होने वालों की कहानियाँ काफी कम हैं।

कृष्ण चंद जैसे लोग भी शायद हिम्मत हार गए। ऐसे में जिस अंदाज में जेल में बंद अटल बिहारी वाजपेयी ने संजय गांधी के खिलाफ लिखा, वह आज की पीढ़ी को भी पसंद आएगा। संजय गांधी को लेकर उनकी कविता की लाइनें थीं-

'सब सरकारों से बड़े हैं छोटे सरकार,
गुड्डी जिनकी चढ़ रही, दिल्ली के दरबार!
दिल्ली के दरबार, बुढ़ापा खिसियाता है,
पूत सवाया सिंहासन, चढ़ता आता है!
कह कैदी कविराय, लोकशाही की छुट्टी,
बेटा राज करेगा, पीकर मुगली घुट्टी!!'

पंकज पटेरिया

आज भी सिहरन दौड़ जाती है

बहुत बह गया नर्मदा जी में पानी, देखते-देखते आपातकाल को बीते 48 साल हो गए, कितना जोर जुर्म मनमानी उस दौर में की गई, किस तरह लोकतंत्र का गला घोंट कर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पहले बिठाकर जनता को लाचार कर दिया जाता। उस पर एक शेर का जिक्र करना मोजू लगता है- हाथ पीछे को बँधे हैं, और मुँह पर ताले हैं। किस से कहें पैर का काँटा निकाल दो।

इन्हीं हालात से आम जनता के शोर-शराबा से भरे चौकचौराहे सुनसान हो गए थे। होठों से हँसी-खुशी रूठ गई थी। सब तरफ शासन-प्रशासन के सिविल ड्रेस में मुकर्रर किए गए पुलिस मैन जर्रे-जर्रे पर घूमते रहते थे। खासतौर से हम अखबार वालों के आगे-पीछे बल्कि आने-जाने पर भी निगरानी रहती थी। मैं उन दिनों नर्मदापुरम में राजधानी के एक बड़े अखबार का प्रमुख संवाददाता था। नर्मदा तट पर रोज उतरने वाली गाती, गुनगुनाती भोर, जैसे गूँगी हो गई थी, और शाम थकी हारी बीमार सी बुझी-बुझी उतरती। बड़ी हैरानी होती है यह कहते हुए मंदिरों में आरती के वक्त होने वाली श्रद्धालुओं की भीड़ भी सिमट गई थी। अपने काम-धंधे नौकरी के बाद लोग घरों में बंद हो जाते। किसी के बारे में कोई भी एनोनिमस कंप्लेंट कलेक्टर को कर देता था और बिना जांच-पड़ताल के उसे उठा लिया जाता था या दुकान के शटर गिरा दिए जाते थे।

पुलिस वाले डंडा ठोकते हाल-चाल जानने सुबह शाम दस्तक देते रहते थे। दिन में दो बार पीआरओ से लिखित निर्देश आते थे- कैसी खबरें अखबारों को भेजी जाएँ। यह भी निर्देश था- 4:00 बजे तक लेटर बॉक्स बाक्स में लिफाफा डाला जाना चाहिए। फिर खबरों के सारे लिफाफे कलेक्ट्रेट में बनाई गई एक विशेष कमेटी के सामने रखे जाते थे, जहाँ सारी खबरें सेंसर होती थीं। यह तय होता था- कौन सी खबर को भेजी जाए और कौन सी नहीं भेजें। जरूरी काँट-छाँट भी उनमें की जाती थी। सरकार के नजरिए से कोई खबर सरकार के खिलाफ होती तो रोक ली जाती थी और उस संवाददाता की क्लास भी ली जाती थी। मुझे बहुत अच्छे से याद है मेरे सीनियर एक बहुत धाकड़ किस्म के पत्रकार स्वर्गीय कल्याण जैन थे। शहर में हो रही आपराधिक घटनाओं के प्रकाश में उन्होंने अपने अंग्रेजी अखबार में एक खबर भेजी थी जो दूसरे दिन लगी। इस हेडिंग से होशंगाबाद स्टमेड विद रेप एंड मर्डर। बस फिर क्या था तात्कालिक टीआई जो हम लोगों के बहुत अच्छे मित्र थे, हमें गुप्त सूचना दी हम लोग शहर के बाहर चले जाएँ और फिलहाल कोई खबरें न भेजें। ऊपर से आर्डर मिला है, ऐसे पत्रकारों को उठा लें। रोज चेतावनी मिलने के बाद और अपने-अपने अखबारों से भी रोज निर्देश मिलने के बाद हम पत्रकार भी वही खबरें जस की तस अपने अखबारों को में भेजते थे, जो पी आरो से मिलती थी। मैं कवि हूँ गोष्ठी आदि में जाता था। टीआई साहब ने मुझ से आग्रह किया था गोष्ठी न की जाएँ। 45, 50 साल पत्रकारिता करते हुए हो गये आज खुले आसमान मे साँस लेते हुए यकीन नहीं होता, कभी ऐसे भी दिनों से हमारी दरगुजर हुई है।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

संस्मरण

शिवराज सिंह चौहान

लोकतंत्र के सच्चे प्रहरी हैं मीसाबंदी

आपातकाल के दिनों में जब मुझे जेल भेजा गया तब मेरी उम्र मात्र सोलह वर्ष थी। आयु कम थी लेकिन देश की राजनैतिक स्थितियों से मैं पूरी तरह अवगत था। वैचारिक परिपक्वता नहीं थी लेकिन अच्छे-बुरे की समझ विकसित हो चुकी थी। सरकार ने विरोधी विचारधारा के लोगों को बिना प्रमाणों के कारावास में ठूँसना शुरू कर दिया।

मैं अपने अनेक वरिष्ठ साथियों के साथ भोपाल जेल में था। आपातकाल के दौरान जेल में जो सर्वधर्म समभाव का वातावरण निर्मित किया गया, वह मेरे जीवन का अद्भुत अनुभव और सीख है। रोज सायंकालीन प्रार्थना (संझा) होती। हम सब उसमें शामिल होते। मेरे साथ कारावास में स्व. उत्तमचंद इसराणी जैसे समर्पित स्वयंसेवक और संघ के वरिष्ठ पदाधिकारी भी थे। उनसे मार्गदर्शन मिलता। वे हमें भागवत् गीता के उद्धरण पढ़कर सुनाते, चर्चा करते और हम सभी न्याय और सत्य की विजय की कामना करते। अनेक मीसाबंदी नैराश्य के स्वर में कहते -''हम शायद जीवन भर काल कोठरी से नहीं निकल पाएँगे'', तब स्व. इसराणी जी हिम्मत बढ़ाते वे कहते थे ''रात्रि के पश्चात् सूर्योदय होता ही है। हम अपने राष्ट्र के लिये इतना कष्ट तो उठा ही सकते हैं।''

कारावास में प्राय: अख़बार पढ़ने को मिल जाया करते थे। राष्ट्रीय स्तर पर जो राजनैतिक परिदृश्य था उसमें एक ही दल का प्रभाव दिखाई देता। अख़बार भी सच बता पाने में असमर्थ हो गये भोपाल में श्री बाबूलाल भानपुर, श्री गुलाबचंद खंडेलवाल, श्री तपन भौमिक आदि भी बंदी रहे। मेरे अनेक साथी डायरी भी लिखते थे। कारावास में बीते उन दिनों की यादें स्मृति पटल पर एकदम तरोताज़ा हैं। मुझे किशोरावस्था में ही जीवन और व्यवस्था के इस कड़वे सच का साक्षात्कार करना पड़ा। अपने उन साथियों की वेदना मुझे आज भी तकलीफ देती है जिन्होंने कारावास में अकारण अत्याचार सहे।

आज से 48 वर्ष पहले 25 जून को आपातकाल लागू हुआ था। भारतीय लोकतंत्र और आज़ाद भारत के इतिहास में आपातकाल एक ऐसा पृष्ठ है जिसे कोई पढ़ना नहीं चाहेगा। लोकतंत्र और संवैधानिक प्रक्रिया पर कुठाराघात के प्रतीक आपातकाल के विरोध में संघर्ष करने वाले सभी लोग दरअसल देश की दूसरी आज़ादी के सम्मानित सेनानी हैं। आपातकाल का विरोध करने पर जेलों में निरुद्ध लोगों के संघर्ष, दुख और तकलीफों पर लिखा जाए तो एक वृहद ग्रंथ तैयार हो सकता है। देश को अंग्रेजों की दासता से आजाद करवाने के संघर्ष के सेनानियों को तो उनकी कारावास अवधि और दण्ड का पता होता था लेकिन आपातकाल के विरुद्ध संघर्ष के सेनानियों को तो यह भी पता नहीं था कि वे कब तक जेल में रहेंगे और उन्हें कहाँ अपील करनी होगी। इसीलिये दूसरी आज़ादी के संघर्ष के सेनानियों को मीसाबंदी न

कहकर लोकतंत्र के सच्चे प्रहरी कहा जाना चाहिये जिन्होंने आपातकाल के विरोध कर भारतीय लोकतंत्र को मजबूती दी।

मेरा दृढ़ मत है कि भविष्य में भी यदि कभी देश की आज़ादी और लोकतंत्र को कोई खतरा उत्पन्न हुआ तो लोकतंत्र के इन प्रहरियों का संघर्ष लोगों को प्रेरणा देगा।

मेरा यह भी मानना है कि मीसा कानून में निरुद्ध लोगों के त्याग और तपस्या की क्षतिपूर्ति हो ही नहीं सकती। कम से कम ऐसे देश प्रेमियों के लिये सम्मान निधि कुछ भी नहीं है। मध्यप्रदेश सरकार ने मीसाबंदियों को सम्मान निधि देने का फैसला लेकर उसे लागू किया है। सरकार द्वारा दी जा रही यह निधि सिर्फ एक विनम्र प्रयास है, लोकतंत्र के प्रति उनके समर्पण के सम्मान के लिये। लोकतंत्र के इन प्रहरियों का सम्मान कर मैं गौरवान्वित महसूस करता हूँ। आज अनेक मीसाबंदी दिवंगत हो चुके हैं। उनके द्वारा किये गये संघर्ष की स्मृतियाँ ही शेष हैं। अनेक लोकतंत्र के प्रहरी वृद्ध और बीमार अवस्था में हैं। आज भी ऐसे किसी प्रहरी से रू-ब-रू होता हूँ तो उसके चेहरे की झुर्रियों में उसकी जिजीविषा को पढ़ता हूँ। मीसाबंदी रूपी इन लोकतंत्र के प्रहरियों द्वारा सहे गये कष्ट उनके परिवारों के लिये किसी आपदा से कम न थे। लेकिन अन्याय का अंत हुआ और देश में लोकतंत्र ने करवट ली। मैं लोकतंत्र के प्रहरियों के इस ज़िद, जुनून और जज्बे को नमन भी करता हूँ।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

जयप्रकाश नारायण

ऐसा तो मेरे साथ अंग्रेज सरकार ने भी नहीं किया था

वास्तव में मेरे लिए एकाकी कारावास था। दिन-रात मुझे अपने कमरे में ही बंद रहना पड़ता था। सिवा उस समय के जब मुझे किसी मंजिल के बंद दम घोंटू दहलीज में थोड़ी देर टहलने के लिए ले जाया जाता था।

मैंने सरकार से अनुरोध भी किया कि मेरे साथ किसी व्यक्ति को रहने दिया जाए देश की विभिन्न जेलों में हमारे आंदोलन के हजारों साथी बंद पड़े थे, उनमें से किन्हीं एक को चंडीगढ़ में मेरे साथ रखा जा सकता है, परंतु सरकार ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। अदालत में अपील की तो विद्वान न्यायमूर्ति ने कहा कि किसी आदमी को अस्पताल में रखा गया हो तो उसे एकाकी कारावास की सजा में नहीं गिना जा सकता।

इस दृष्टि से इंदिरा जी की सरकार का मेरे साथ व्यवहार विदेशी अँग्रेज सरकार के व्यवहार से भी बुरा था। जेल से निकल भागने के बाद जब मैं फिर गिरफ्तार होकर लाहौर किले में दाखिल हुआ तो पहले वहाँ भी कुछ महीनों तक मुझे बिल्कुल अकेला ही रखा गया। सरकार को पत्र लिखे गए अंत में उस विदेशी सरकार ने भी मेरी प्रार्थना सुनी और जब डॉक्टर राम मनोहर लोहिया लाहौर किले में लाए गए तो हर दिन 1 घंटे तक उनसे मिलने और बातचीत करने की इजाजत मुझे मिली। बाद में हम दोनों को आगरा ले जाया गया और वहाँ हमें एक ही बैरक में रखा गया। लेकिन स्वदेशी सरकार का रवैया तो अजीब रहा। आखिर तक मुझे अकेला ही रहना पड़ा और यही मेरे लिए सबसे बड़ी सजा थी।

अचानक दोनों गुर्दे खराब : चंडीगढ़ की नजरबंदी में था तभी एक दिन (27 सितंबर 1975) अचानक मेरे पेट में भयानक दर्द शुरू हुआ वैसे दर्द का अनुभव मुझे जीवन में पहले कभी नहीं हुआ था। डॉक्टरों ने दवाई दी जिससे दर्द कम हो गया। परंतु कुछ दिनों बाद फिर वैसा ही दर्द शुरू हुआ। वहाँ के डॉक्टर के साथ मेरी बात हुई थी परंतु मुझे यह दर्द क्यों हुआ इसका कारण नहीं समझ सके थे। अत्यंत भेज कल्पनातीत वेदना वाला यह दर्द था।

फिर एकाएक 5 नवंबर 1975 को आवश्यक जाँच के बाद वहाँ के डॉक्टरों ने घोषित कर दिया कि मेरे दोनों गुर्दे बिल्कुल खराब हो गए हैं। गिरफ्तारी के पूर्व गुर्दे का कोई रोग मुझे नहीं था। चंडीगढ़ में भी चार महीनों की नजरबंदी के दौरान डॉक्टरों ने कभी नहीं बताया कि मेरे गुर्दे में कोई खराबी है। इसलिए आज तक मेरी समझ में नहीं आया कि यह रोग मुझे कब, कहाँ और कैसे लग गया जो दवा दी गई। वह मैंने ली जो खाना दिया गया वह मैंने खाया फिर क्या हो गया समझ में नहीं आता। मेरे बहुत सारे मित्रों को यह शंका है और मुझे भी कभी-कभी संदेह होता है कि कहीं जानबूझकर तो मेरे गुर्दे खराब नहीं

कर दिए गए। अचानक दोनों गुर्दे काम करना बंद कर दें यह घटना स्वभाविक ही बड़ी विचित्र लगती है। चंडीगढ़ अस्पताल के डॉक्टरों का व्यवहार मेरे प्रति बहुत अच्छा था इसलिए उन पर मुझे विश्वास नहीं है, कोई डॉक्टर ऐसा जघन्य कार्य कैसे कर सकता है। लेकिन मेरे रोग की पहचान करने में उनको बहुत देर हो गई। मुंबई के डॉक्टरों का ख्याल है कि अगर 15 दिन पहले भी मैं जसलोक अस्पताल में पहुँच गया होता तो मेरे गुरुदेव आंशिक रूप से बचा लिए जाते।

अब यह तो भगवान ही जाने कि अचानक मेरे गुर्दे कैसे बिल्कुल खराब हो गए एक बात निश्चित है कि चंडीगढ़ की नजरबंदी से बाहर निकला तब मैं अधमरा होकर निकला। 12 नवंबर 1975 को सरकार ने मुझे तब रिहा किया जब उसे विश्वास हो गया कि मेरा रोग असाध्य है और मैं थोड़े ही दिन का मेहमान हूँ। मेरी हालत खतरनाक हो गई थी हाथ पैर सूज गए थे, पैरों की अंगुलियाँ मुड़ गई थीं आँखों के नीचे का भाग सूज कर नीचे लटक गया था। यानी मैं बिल्कुल मरणासन्न था। लेकिन जसलोक अस्पताल के डॉक्टरों की सूझ-बूझ और मेहनत के फलस्वरूप मैं बचा लिया गया। हालाँकि वहाँ के डॉक्टर आज भी मुझसे कहते हैं कि हमने तो आपको नहीं बचाया। आप अपनी इच्छा शक्ति से बच गए परंतु मैं मानता हूँ कि ईश्वर की कृपा मुझ पर थी इसलिए ही मैं बच पाया। पता नहीं वह और क्या काम मुझसे लेना चाहता है।

मेरे दोनों गुर्दे हमेशा के लिए खराब हो चुके हैं, नष्ट हो चुके हैं। उनके पुनर्जीवित होने की कोई आशा नहीं है। इसलिए अब मैं कृत्रिम गुर्दा मशीन के सहारे जिंदा हूँ इस मशीन से मेरे खून की सफाई सप्ताह में 3 दिन की जाती है जिसको डायलिसिस की क्रिया कहते हैं। इसी के सहारे अवशेष जीवन व्यतीत करना होगा। इसलिए अब मुझे अपनी कार्यपद्धति में परिवर्तन करने होंगे। आमतौर पर एक ही जगह रहकर काम करना पड़ेगा।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है चंडीगढ़ से छूटकर जब मैं जसलोक अस्पताल में भर्ती हुआ था तो बिल्कुल मरणासन्न था।

-साभार

कृष्ण कुमार अष्ठाना

मीसाबन्दी सुदर्शन जी

बहुआयामी व्यक्तित्व और बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने के कारण श्री सुदर्शन जी पर खूब लिखा गया है और बोला गया है। स्वाभाविक भी था क्योंकि वे केवल संघ के सरसंघचालक ही नहीं थे, वे थे एक समाजशास्त्री, प्रखर दृष्टा, वैज्ञानिक, कृषिशास्त्री और तथ्यों के अन्वेषक। गहराई तक गोते लगाकर मोती ढूँढ़ने का उनका स्वभाव था और अनेक प्रकार के बेशकीमती और कांतिमुक्त मोती ढूँढ़कर उन्होंने अपने अनुभव की माला को सजाया था। इस कारण विविध क्षेत्र के मनीषियों और विद्वान लेखकों के द्वारा उनकी यश कीर्ति पर लिखा जाना स्वाभाविक ही था।

परंतु मेरे सामने उनके जीवन का एक ऐसा पक्ष है जिसे उनके साथ रहने वाले कुछ लोग ही जानते हैं और जिस पर लिखा तो बिल्कुल ही नहीं गया। वह पक्ष है उनका मीसाबन्दी के रूप में 'कारावास जीवन' जिसका मैं गिरफ्तार होने से छूटने के क्षण तक का साक्षी हूँ। 18 जून, 1957 को प्रात: बंदी बनाने के समय से लेकर 21 मार्च 1977 को दोपहर बाद मुक्ति तक मुझे उनके साथ रहने का अवसर मिला है, इसलिये मुझे लगा कि उनके उसी पक्ष की कुछ चर्चा यहाँ स्वाभाविक होगी।

मैं उन दिनों 'दैनिक स्वदेश' की व्यवस्थाएँ देख रहा था। सुदर्शन जी ही मुझे ग्वालियर से 'स्वदेश' का व्यवस्थापन देखने के लिए लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व साथ लेकर आए थे। 23 जून, 1975 को मैं स्वदेश के ही कार्य से दिल्ली गया था और अपना काम पूरा कर 25 जून की रात्रि को मान. भाऊराव का सुदर्शन जी के लिए एक संदेश लेकर दिल्ली से वापिस लौटा था। परिवार ग्वालियर ही था- इसलिए एक दिन वहाँ रुककर लौटने की योजना थी। परंतु ग्वालियर पहुँचने पर पता चला कि रात्रि को आपातकाल लग गया है। यानी दिल्ली से ग्वालियर यात्रा की रात्रि आपातकाल की काली रात्रि थी। ग्वालियर में मुझे सूचना मिली कि 'स्वदेश' पर ताले लग गए हैं और मुझे तुरंत इंदौर पहुँचना है। मैं 27 जून को ग्वालियर से चलकर 28 की प्रात: इंदौर पहुँच गया और मान. भाऊराव देवरस का संदेश देने के लिए सुदर्शन जी की तलाश प्रारंभ की। तलाश इसीलिए कि इंदौर का संघ कार्यालय 'अर्चना' भी पुलिस की निगाह में था, इसीलिए वहाँ से सब लोग इधर-उधर चले गए थे। तलाशने पर पता चला कि मान. सुदर्शन जी सहित सभी अपना-अपना आवश्यक सामान उठाने अभी-अभी कार्यालय पहुँचे हैं और कुछ समय में ही निकल जाएँगे। सुदर्शन जी से मिलने का अवसर खोना नहीं था इसीलिए मैं अपनी अटैची दरवाजे पर ही अपनी पत्नी को सँभलाकर उनसे मिलने निकल गया।

'अर्चना' पहुँचा तो सुदर्शन जी से भेंट हो गई। वे नहाने की तैयार में थे। अण्डरवियर बनियान पहिने और अँगोछा कंधे पर डाले हुए। भाऊराव का संदेश मैंने दिया वह सामान्य ही था- क्योंकि मैं जब

दिल्ली से चला था तब तक आपातकाल नहीं था। दिल्ली प्रवास की चर्चा कर मैं ऊपर के उनके कक्ष से निकलकर नीचे द्वार तक पहुँचा ही था कि माननीय सुदर्शन जी ने फिर से 'अष्ठाना जी सुनना' कहकर आवाज देकर मुझे ऊपर बुला लिया और कुछ बात प्रारंभ ही करना चाही कि पुलिस दल वहाँ पहुँच गया और उसने कार्यालय को घेर लिया। वहाँ उपस्थित सभी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय वहाँ उपस्थित थे- मान. मिश्रीलाल जी तिवारी, मान. दत्ताजी उनगाँवकर, श्री गोविंद सारंग, श्री क्षितिकण्ठ गवारीकर और कार्यालय का रइसोया रामलाल। मान. लक्ष्मण राव भिडे भी उन दिनों स्वास्थ्य लाभ के लिए इंदौर कार्यालय पर रुके थे- किंतु वे कुछ छण पहले ही कार्यालय से घूमने के लिए निकल गए थे। इसलिए गिरफ्तार के चंगुल से बच गए।

इंदौर से ठीक उसी समय संघ के अन्य अधिकारियों के घर छापे डाले गए और प्रांत संघचालक पं. रामनारायण जी शास्त्री, प्रांत शारीरिक प्रमुख- दिनकरराव खम्बेटे और नगर कार्यावाह डॉ. सुधाकर मुळे को उनके निवास स्थानों से गिरफ्तार करके संबंधित थानों में ले जाया गया। सभी को दिनभर थानों में अनेक प्रकार के झूठे आश्वासन पुलिस देती रही और रात्रि को 2 बजे जब कि मूसलाधार वर्षा हो रही थी पुलिस गाड़ियों में भरकर इंदौर जिला जेल में भेज दिया गया। अँधेरी रात और वर्षा में यह भी समझ में नहीं आ रहा था कि हमें कहाँ ले जाया जा रहा है। जब जेल के दरवाजे खुले और गाड़ियों में से हमें उतारा गया तब पता चाल कि हमें देश की सुरक्षा के लिए खतरनाक मानकर जेल भेजा गया है।

जेल के 2 कम्बलों के साथ वह शेष रात्रि बीती और प्रात:काल हमें बैरकों में बाँट दिया गया। संयोग से मान. सुदर्शन जी के साथ 'अर्चना' से गिरफ्तार हम सब लोग एक ही 6 नं. बैरक में थे और बाद में जब बैरक बदली गई तो भी सभी 4 नं. में एक साथ रहे।

अपनी आदत, स्वभाव और संस्कारों के कारण मान. सुदर्शन जी ने वहाँ भी तुरंत ऐसी व्यवस्थाएँ बनवा दी जैसी कि किसी शिविर या वर्ग की रहती है। 'स्वदेश' के स्थान पर मुझे अब मिल गया था वहाँ की व्यवस्थाओं का दायित्व।

कारागृह का वास कितना लम्बा होगा यह सब अनिश्चित था। लेकिन लम्बा होगा इसकी कल्पना मान. सुदर्शन जी को थी। इसलिए उन्होंने सारी व्यवस्थाएँ तद्नुसार विचार करके ही बनवाई थी। तीन चार दिन में सब कुछ व्यवस्थित हो गया। प्रात: सायं की शाखाएँ लगने लगीं। खेल और शारीरिक होने लगा और नित्य प्रार्थना भी। समयानुसार संघ के उत्सव और बौद्धिक वर्ग भी। अपराह्न में चर्चा सत्र होता और सामयिक विषयों पर बौद्धिक और भाषण भी। सम्पूर्ण दिनचर्या व्यवस्थित होने पर प्रात: जागरण के पश्चात प्रात: स्मरण भी होने लगा और संध्या को शाखा के बाद वहीं के मंदिर में सामूहिक आरती और भजन आदि भी।

धीरे-धीरे जेल में हमारे जैसे बंदियों की संख्या तीन अंकों में पहुँच गई। इससे कुछ ही कम मीसा बंदी इंदौर की दूसरी जेल 'सेंट्रल जेल' में थे। हमारे साथ के बंदियों में अधिकांश थे संघ के स्वयंसेवक या अनुशांगिक संगठनों के कार्यकर्ता। 'स्वदेश' से बंदियों की संख्या देशभर में किसी भी समाचार पत्र से गिरफ्तार किए गए बंदियों में सर्वाधिक थी। व्यवस्थापक के रूप में मेरे बंदी बनने के बाद हमारे प्रबंध संचालक श्री भानचंद्र देशमुख, प्रधान संपादक श्री माणिकचंद्र वाजपेयी, सम्पादक मण्डल के सर्वश्री

हीरालाल शर्मा, अजीत प्रसाद जैन, गोकुल शर्मा, जयकृष्ण गौड़, शचीन्द्र जलधारी, मुद्रणालय नियंत्रक रामसिंह शेखावत और संचालक मण्डल के अध्यक्ष श्री शास्त्री जी के साथ मधुकरराव चित्तळे, छोटेलाल नागर, उत्सवचंद्र पोरवाल, रामकृष्ण विजयवर्गीय, उत्तमचंद इसराणी और मदनलाल पाण्डे भी थे इन सबका अपराध केवल इतना था कि वे संघ के स्वयंसेवक थे।

इनके अतिरिक्त थे वहाँ अनेक दलों के अनेक प्रमुख लोग–कामरेड मोतीलाल शर्मा को ग्वालियर से, समाजवादी रघु ठाकुर और शरद यादव को जबलपुर से यहीं ले आया गया था। इन्दौर के ही समाजवादी कल्याण जैन, रतन पाटौदी, झाबुआ से मामा बालेश्वर दयाल जैसे सामाजिक कार्यकर्ता तथा कामरेड हरीसिंह भी यहीं थे। और यहीं थे अनिल त्रिवेदी और शीलकुमार निगम जैसे प्रख्यात अभिभाषक। असंतुष्ट कांग्रेसी, के.के. मिश्रा, केवल यादव, तुलसी सिलावट के साथ थे आद. दादाभाई नाईक के नेतृत्व में बालकृष्ण जोशी, महेन्द्र जैन और किशोर भाई जैसे सर्वोदयी कार्यकर्ता। विभिन्न मत और विचारधारा के कारण प्रारंभ के दिनों में अनेक बार कटुता का वातावरण बना, किंतु मान. सुदर्शन जी की अद्‌भुत संगठन क्षमता ने धीरे–धीरे कड़वाहट को मिठास में बदल दिया।

शाखा लगाने का विरोध भी हुआ किंतु उनका कहना था कि 'अपनी नित्य साधना' क्यों छोड़ें? जेल से आगे और सरकार हमें कहाँ ले जाएगी? मा. सुदर्शन जी के प्रयास से जेल में ए.बी.सी. की श्रेणियाँ समाप्त हो गई थीं। सामूहिक भोजन तैयार होता था, जिसकी व्यवस्था क्रमश: हमीं लोगों में से कोई सँभालता था। दूध, दही, फल, मट्ठा, कपड़े आदि सब सामूहिक रूप से जेल अधिकारियों से प्राप्त कर वितरण की व्यवस्था बना ली गई थी।

सैद्धांतिक विवाद के अवसर भी यहाँ पर आए और अनिश्चित कारावास अवधि के कारण अनेक बार अनेक बंधुओं का मानसिक संतुलन भी बिगड़ा किंतु सुदर्शन जी की स्नेह की डोर ने उन्हें छिटकने नहीं दिया। कुछ ही दिनों में माना बालेश्वर दयाल का वह 'कप्तान' सचमुच उस जहाज का कप्तान बन गया– जिसका न मार्ग तय था न मंजिल। धीरे–धीरे अन्य पक्ष के लोगों को भी ध्यान में आने लगा कि सुंदरलाल पटवा, वीरेन्द्र कुमार सकलेचा और कैलाश जोशी जैसे व्यक्ति जो बाद में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री बने– जिससे मार्गदर्शन लेते थे और उनकी सहमति में ही सदा अपनी सहमति बताते थे वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। अपनी साधना, त्याग और समर्पण के बदल पर जिसने यह अधिकार पाया था– वे सुदर्शन जी धीरे–धीरे फिर सबके अपने बन गए और आज तक बने हुए हैं। बैरिस्टर त्रिवेदी और सुप्रसिद्ध एडव्होकेट कन्हैयालाल डूंगरवाल को भी यह नेतृत्व पसंद आ गया था और सब मिलकर भावी भारत का मानचित्र तैयार करने के प्रयास में लग गए थे। जहाँ भी राममनोहर लोहिया के स्वप्नों के भारत पर चर्चा होती थी वहीं दीन दयाल जी का 'एकात्म मानववाद' तो अनेक दिनों चर्चा का विषय रहा था। अनेक के वक्तव्यों के बाद उस पर एक शोध–पत्र जैसा तैयार करने की जिम्मेदारी निभाई डॉ. राम परमानन्द ने। विनोबा का 'अनुशासन पर्व' भी चर्चा में रहा।

आपातकालीन अत्याचार, प्रेस सेसंरशिप, समाचार पत्रों पर तालाबंदी, न्यायालयों पर नियंत्रण, 'न वकील न दलील' जैसे विषयों पर कटु चर्चा होने के बाद भी मान. सुदर्शन जी ने वहाँ लोगों के मन खराब न हो इस प्रकार का पूरा प्रयत्न किया था। वे स्वयं तो न कभी असंतुलित हुए न अस्वस्थ। 8–10 माह बाद

जब एक कार्यकर्ता ने मान. दत्ता जी से पूछा कि सुदर्शन जी पर पूरे घटनाक्रम का कुछ भी असर कभी नजर नहीं आया तो दत्ता जी ने केवल इतना कहा कि वे सामान्य मनुष्य नहीं– वे या तो महामानव हैं या फिर मशीन।

तरुण वर्ग तो वहाँ सुदर्शन जी का दीवाना था। अनेक बार तो खेलों में चाहे वह मैदान में कबड्डी या वालीबाल हो या बैरक में शतरंज– ऐसा लगता था कि सुदर्शन जी उनके मित्र और खिलाड़ी भर हैं। गोपाल मिश्रा, कांतिलाल जैन, अशोक गुप्ता, गोपाल जाजू, अक्षय और अरुण सोडानी, से आज भी उनके उस रूप की चर्चा करने में एक अलग प्रकार के आनंद की अनुभूति होती है।

मनोरंजन के वे क्षण जब वे अपनी मस्ती में 'चिरकूशास्त्र' पर चर्चा करते थे या चुटकुले सुनाते थे आज भी कल की सी बात लगते हैं। अद्‌भुत गम्भीरता और बौद्धिक क्षमता के धनी व्यक्ति से इतने सहज होकर मनोरंजन के इन क्षणों में कौन अपने आपको भुला नहीं देगा? आपातकाल की शोकान्तिका और परिवार से दूर होने की वेदना खो जाती थी मान. सुदर्शन जी के साथ इन क्षणों में।

जेल में उनके द्वारा निर्मित आत्मीयता के वातावरण में पिता और पुत्र, अग्रज और अनुज एक साथ घर, परिवार और व्यवसाय की चिंताएँ भुलाकर जेल जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनके लिए यह कालखण्ड था भारत माँ की आराधना का कल। असहाय परिवार को छोड़कर भी दोनों में से क्षमा माँगकर बाहर जाने के लिए कोई इसलिए तैयार नहीं था कि यदि 'नमस्ते! सदावत्सले' बोलना भर ही अपराध है, तो वे तैयार हैं, इस अपराध के अपराधी बनने के। यह भाव पैदा होना सहज नहीं था, किंतु सुदर्शन जी ने वहाँ के कार्यक्रमों की रचना इस प्रकार की थी कि उससे निर्मित वातावरण में सब भूल गए थे अपनी-अपनी व्यक्तिगत चिंताओं को। सामूहिक चिंता केवल यह थी कि इस दूसरी गुलामी से देश को आजाद कैसे कराया जाए?

सामूहिक योजनाएँ बनती, निर्णय होते और दस्तावेज, तैयार होते थे जेल में। सभी दलों के कार्यकर्ता तथा सभी धर्मावलम्बी एक साथ बैठते और राष्ट्रहित पर चिंतन करते। सुदर्शन जी के व्यक्तिगत चिंतन और व्यवहार ने वहाँ निरुद्ध मुस्लिमों को देश की मुख्य धारा में जोड़ने के अभूतपूर्व कार्य का शुभारंभ किया। पू. बाला सा. देवरस ने यही कार्य आपातकाल के अपने जेल जीवन में पूना की यरवदा जेल में किया था। इसी का परिणाम था 'राष्ट्रीय मुस्लिम मंच' जिसका काम आज मा. इन्द्रेश जी की देखरेख में आगे बढ़ रहा है। अनपढ़ कैदियों को पढ़ाने और डकैत तथा हत्या जैसे गम्भीर अपराधियों को उस वृत्ति से विरत करने की मुहिम सुदर्शन जी की प्रेरणा से भी जिला जेल में चलती रही और कैदियों ने वहाँ रहकर परीक्षाएँ दी और उत्तीर्ण हुए।

एक और प्रसंग की चर्चा किए बिना कारावास की कहानी अधूरी होगी। वह है अपराह्न के चर्चा सत्र में होने वाली उद्‌घोषणाएँ, इसमें बी.बी. सी. लंदन, आकाशवाणी से मिलने वाले समाचारों के साथ जुड़े होते थे वे समाचार जो जेल की दीवारों को फाँदकर या जेल के सींखचों को धता बताकर अंदर आ जाते थे अथवा जो विख्यात थे 'पुड़िया' के नाम से। सुदर्शन जी के मार्गदर्शन में इनका संपादन करके उद्‌घोषक की भूमिका का निर्वाह करते थे बंधुवर श्री शशिकांत जी शेंदूर्णीकर।

इसके बाद समाँ बँधता था किशोर भाई के गीतों से, गोपाल सिंह नेपाली की कविताओं से या

फणीश्वरनाथ रेणु के क्रांतिकारी आह्वान से। भारत का गौरवशाली अतीत, दु:खद वर्तमान और स्वर्णिम भविष्य पर चर्चा होती। भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम, क्रांतिकारियों की भूमिका- महापुरुषों के जीवन, स्फूर्तिदायक हमारे उत्सव और त्यौहारों पर चर्चा होती। अनेक विषयों पर सुदर्शन जी का धारावाहिक उद्बोधन केवल चिंतन को ही दिशा नहीं देता था- आह्वान करता था नई पीढ़ी को भारत का नया इतिहास लिखने के लिए।

सुदर्शनजी अब नहीं हैं किंतु मेरे स्मृतिपटल पर एक-एक करके उभर रहे हैं सन् 1958 से सन् 2012 तक के 54 वर्ष के वे अनेक चित्र जो मैंने उनके सम्पर्क में आने के बाद देखे हैं। जबलपुर में द्वितीय वर्ष का संघ शिक्षा वर्ग करते हुए अपने शिक्षक के रूप में पहला सम्पर्क आया था उनसे सन् 1958 में। उसके बाद 1959 में वे तृतीय वर्ष में भी मेरे शिक्षक रहे। सन् 1963 में संघ शिक्षा वर्ग में वे जब मुख्य शिक्षक थे तब उनके साथ शिक्षक रहने का मुझे अवसर मिला और सन् 1964 में उनके मध्यभारत के प्रांत प्रचारक बनकर आने पर तो संपर्क और मार्गदर्शन पाने के इतने अवसर रहे कि उन्हें गिनना और गिनाना असम्भव ही है। मेरे जैसे सामान्य शिक्षक को 'स्वदेश' के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश कराकर जीवन की दिशा ही बदल दी। उनके अवसान पर मुझे याद आ रहे हैं मान. अटल जी के वे शब्द जो उन्होंने पं. दीनदयाल उपाध्याय के अवसान पर कुछ इस प्रकार कहे थे- 'दीप बुझ गया है। अब हमें उसके बिखरे प्रकाश में अपना मार्ग ढूँढ़ना होगा।... अपने ध्येय प्राप्ति के लिए अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा करनी होगी।'

मैं समझता हूँ कि यही शब्द हो सकते हैं आज हमारे प्रेरक और मार्गदर्शक।

संपर्क : इंदौर (म.प्र.)
मो. 9425062115

हरिहर शर्मा/गोपाल दंडोतिया

काली रातों के साये

भयावह आतंक के ऐसे समय में जब सामान्य व्यक्ति मीसाबंदियों के परिवार से दूर रहने में ही अपनी भलाई समझ रहा था, तब मीसावंदी परिवारों के सुख दु:ख की चिंता करने, उन्हें दिलासा देने का काम सँभाला सर्व श्री रमेश जी गुप्ता, प्रोफ़ेसर राम गोपाल जी त्रिवेदी, जगदीश गुप्ता, ओम खेमरिया, पुरुषोत्तम गुप्ता आदि स्वयं सेवकों ने!

जेल जीवन से घबराये अनेक नेताओं ने येन केन प्रकारेण, माफी माँगकर मुक्त होने में ही भलाई समझी, तब भी संघ के आदर्श स्वयं सेवकों ने हिम्मत नहीं हारी! सबसे ज्यादा निराश किया तत्कालीन स्थानीय विधायक ने! तब तक उनकी छवि एक जुझारू नेता की थी, किन्तु उन्होंने न केवल माफी माँगी, दूसरे जनसंघ नेताओं को माफी माँगने के लिए प्रेरित किया, बल्कि राज्यसभा चुनाव में जनसंघ के अधिकृत प्रत्याशी रामहित गुप्त के खिलाफ वोट किया! स्वाभाविक ही इसके बाद तो उन्हें मुक्त होना ही था!

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एकमात्र संगठन निकला जिसने इस आपाधापी का मुखर विरोध किया! 14 नवम्बर 1975 से देशव्यापी सत्याग्रह आन्दोलन का श्री गणेश हुआ! जवाहरलाल नेहरू के जन्म दिवस से देश में नारे गूँजने लगे 'नरक से नेहरू करे पुकार, मत कर बेटी अत्याचार' और 'जो हिटलर की चाल चलेगा, वो कुत्ते की मौत मरेगा' आदि आदि! जहाँ एक ओर आम जन में अत्याधिक भय व आतंक का साम्राज्य तो दूसरी ओर आत्माहुति की भावना से ओतप्रोत ऐसे स्वर!

व्यूह रचना हेतु शिवपुरी में संघ के विभाग प्रचारक श्री लक्ष्मण राव तराणेकर जी, जनसंघ के संगठन मंत्री श्री बसंत राव निगुडीकर, संघ प्रचारक अपारवल सिंह जी कुशवाह आदि लोगों का आना जाना शुरू हुआ! शिवपुरी के अधिकांश जाने माने राजनेता या तो जेल में थे अथवा अपने घुटने टेक, क्षमा याचना कर फासिस्ट विरोधी सम्मेलनों के आयोजक बनकर संघ को गाली देने वालों के साथ खड़े हो चुके थे! अत: विवशत: 22 वर्षीय किशोर इस हरिहर को भूमिगत सत्याग्रह आन्दोलन का संयोजक बनाया गया! मैं उन दिनों विद्यार्थी परिषद् का जिला संगठन मंत्री हुआ करता था।

मोहना के नजदीक स्थित सुल्तानगढ़ के जंगल में एक गोपनीय बैठक हुई, जिसमें सत्याग्रह की व्यूह रचना बनी! ग्वालियर के एक कार्यकर्ता श्री सुधाकर गोखले की शिंदे की छावनी स्थित दुकान विविध वस्तु भण्डार को सूचनाओं के आदान प्रदान के लिए नियत किया गया! वहाँ से ही बाद में एक डुप्लीकेटिंग मशीन प्राप्त हुई! श्री विमलेश गोयल को सह संयोजक बनाया गया, किन्तु मार्ग दर्शक की भूमिका में परदे के पीछे से वरिष्ठ प्रचारक श्री अपारबल सिंह कुशवाह, महाविद्यालय में व्याख्याता श्री डॉ.

राम गोपाल जी त्रिवेदी व भारतीय खाद्य निगम कर्मचारी श्री रमेश जी गुप्ता रहे! मूलत: भिंड निवासी अपारबल सिंह जी उन दिनों अलग अलग घरों में रहा करते थे! वे किसी परिवार में बच्चों के मामा तो कहीं ताऊ तो कहीं भाई बनकर रहे! दिनेश स्वयं मीसाबंदी के रूप में जेल में थे, किन्तु उनके परिवार ने अद्भुत साहस दिखाया व भूमिगत आन्दोलन में पूर्ण सहयोग किया! डुप्लीकेटिंग मशीन पिपरसमा गाँव में श्री दिनेश गौतम के खलिहान में ही छुपाकर रखी गई! जहाँ से हस्त लिखित पेम्पलेट छापकर रात के समय घरों में और दुकानों में डाल दिए जाते थे! इन पर्चों ने जन जागरण में बड़ा योगदान दिया!

14 नवम्बर को पहला सत्याग्रही जत्था श्री महावीर प्रसाद जैन के नेतृत्व में निकला! इसमें सर्व श्री लक्ष्मीनारायण गुप्ता, रमेश उदैया, प्रदीप भार्गव व अशोक शर्मा शामिल थे! अशोक शर्मा की आयु तो महज 16 वर्ष ही थी, वहीं लक्ष्मीनारायण गुप्ता की अगले ही दिन सगाई होने बाली थी! जत्थे में शामिल महावीर प्रसाद जैन, लक्ष्मीनारायण गुप्ता, अशोक शर्मा को मीसावंदी के रूप में शिवपुरी जेल भेज दिया गया! इस जत्थे में शामिल प्रदीप भार्गव पूर्व में अनेक प्रकरणों में पुलिस के मुखबिर रह चुके थे। इस बार भी उन्होंने वही भूमिका अदा की तथा प्रशासन को जानकारी मिल गई कि इस आन्दोलन का सूत्रधार कौन है। परिणाम स्वरूप मुझे भूमिगत होना पड़ा। यह वह समय था जब सहयोगियों का पूर्णत: अभाव था। कोई अपने घर में ठहराने को तैयार नहीं होता था। मेरे चाचाजी श्यामसुंदर जी त्रिवेदी कांग्रेस के नेता हुआ करते थे। कुछ समय तो उनके यहाँ रहा, किन्तु आन्दोलन का संचालन उनके यहाँ से करना कठिन मानकर अधिकांश समय पिपरसमा, तानपूर आदि गाँवों में तो कई बार रात जंगलों में भी गुजारनी पड़ी।

ऐसे में तत्कालीन राज्यपाल का कार्यक्रम शिवपुरी में तय हुआ। आन्दोलन के उस दौर में प्रशासन के हाथ पाँव फूल गए, कहीं ऐसा न हो कि राज्यपाल के कार्यक्रम में प्रदर्शन हो जाए। उन्हें जानकारी मिल ही चुकी थी कि मैं इस आन्दोलन का संयोजक हूँ। मेरे वृद्ध पिताजी को पुलिस कोतवाली में बैठा लिया गया, इकलौता पुत्र होने के कारण पुलिस को आशा थी कि मैं स्वत: गिरफ्तारी के लिये स्वयं को प्रस्तुत कर दूँगा! किन्तु संघ अधिकारियों के आग्रह के चलते इच्छा होने के बावजूद मैं ऐसा न कर सका! पिताजी वैसे ही तो वृद्ध ऊपर से एक प्राचीन शिव मंदिर के पुजारी! उन्होंने कोतवाली में कुछ भी आहार नहीं लिया! अंतत: 24 घंटे में ही पिताजी की भूख हड़ताल के चलते प्रशासन में भी कुछ इंसानियत जागी और राज्यपाल के कार्यक्रम के बाद पिताजी मुक्त हुए! मैंने भी राहत की साँस ली और दूने मनोयोग से सत्याग्रह की तैयारियों में जुट गया!

इस गिरफ्तारी के कारण इतना अवश्य हुआ कि राज्यपाल के कार्यक्रम में हम कोई व्यवधान नहीं डाल पाए। उनके जाने के बाद श्री गुलाब चन्द्र शर्मा के नेतृत्व में दूसरा जत्था शहर की सड़कों पर नरक से नेहरू करे पुकार, मत कर बेटी अत्याचार का नारा गुँजाते निकला! इस जत्थे में शामिल गुलाब चन्द्र शर्मा, लक्ष्मण व्यास, महेश गौतम व ओमप्रकाश शर्मा 'गुरु' को भी मीसा के अंतर्गत गिरफ्तार कर शिवपुरी जेल भेज दिया गया! 20 दिसंबर को अंतिम सत्याग्रही जत्था श्री कामता प्रसाद बेमटे, श्री मोहन जोशी व श्री सीताराम राठोर का निकला! पुलिस ने कामता जी के साथ बेरहमी से मारपीट भी की!

25 दिसंबर को विमलेश गोयल पुलिस की पकड़ में आ गए! अकेले रह जाने के बाद मैंने पेम्पलेट छापने व वितरित करने भर तक स्वयं को सीमित कर लिया! कालेज में दिन दहाड़े खुले आम

पेम्पलेट वितरण करने पर मेरे खिलाफ डी आई आर में मुक़दमा कायम कर दिया गया! अंततः मुझे भी 6 जून 1976 को साइकिल द्वारा पिपरसमा गाँव से लौटते समय एक कांस्टेबल ने देख लिया और मेरा पीछा किया! मुझसे गलती यह हुई कि मैं कस्टम गेट के पास स्थित प्रेम जी शर्मा के घर में छुपा, किन्तु साइकिल घर के दरवाजे पर ही छोड़ दी! पीछे पीछे आये कांस्टेबल अशोक तथा एस आई राजेन्द्र सिंह रघुवंशी ने साइकिल पहचान ली और मैं भी ग्वालियर केन्द्रीय काराग्रह में भेज दिया गया! मुझे गिरफ्तार करने वाले कांस्टेबल अशोक सिंह तथा ऐ एस आई राजेन्द्र सिंह रघुवंशी को दो दो इन्क्रीमेंट मिले, मानो मैं न हुआ कोई डकैत हो गया! मध्य भारत का मैं इकलौता शख्स था जिस पर मीसा में निरुद्ध करने के साथ साथ डी आई आर का मुक़दमा भी चलाया गया!

जेल से ही तत्कालीन कलेक्टर श्री अतुल सिन्हा को दीपावली के अवसर पर पोस्ट कार्ड द्वारा जो दीपावली अभिनन्दन भेजा उस से प्रभावित होकर वे मेरे लम्बे समय के लिये आत्मीय बन गए!

आज हम उगलते हैं अँधेरे,
निगलते हैं प्रकाश,
जो डूब जाता है कहीं गहरे,
अंतस की कालिख में!
काश दीपक दे सके प्रेरणा उत्साह,
सिखा पाए हमको भी पीना अँधेरे!!
कैसे बना बाती खुद की,
दुनिया से तमस हटाया जाए!
अमावस की अँधियारी रात में,
यही तो दीपक सिखाये!!

संपर्क : 'पूर्णायन' गणेश कॉलोनी,
विष्णु मंदिर के पीछे,
शिवपुरी (म.प्र.)

वचनेश त्रिपाठी

आपातकाल के वे काले दिन

जब चला था इंदिरा शासन का दमन चक्र

उन दिनों सम्पूर्ण क्रांति के आह्वान के साथ लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायण ने अनेक बार यह बात दुहराई थी कि परम्परागत राजनीतिक दल अब सामाजिक परिवर्तन के सफल औजार के रूप में नितान्त निरर्थक सिद्ध हुए हैं, इसलिए हमें समग्र क्रांति करके अब कांग्रेसी कुशासन तथा भ्रष्टाचार समाप्त करना होगा। वस्तुतः उस समय जो आंदोलन छिड़ा, वह व्यापक अर्थों में जन-आन्दोलन था। उसका आधार कोई दल विशेष नहीं था-सन् 1975 की 25 जून को दिल्ली के उत्तर प्रदेश निवास पर विरोधी दलों की जो बैठक हुई थी, उसमें निर्णय लिया गया था कि आगामी 29 जून, 1975 से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के त्यागपत्र की माँग को लेकर सत्याग्रह प्रारम्भ किया जाएगा।

दिल्ली में इस आन्दोलन के संयोजन का दायित्व श्री मदनलाल खुराना को सौंपा गया। उसी दिन दिल्ली के रामलीला मैदान में एक विशाल जनसभा सम्पन्न हुई थी। और उसी रात इन्दिरा सरकार ने विपक्षी दलों के नेताओं की गिरफ्तारियाँ शुरू कर दीं। सुबह होने पर लोगों को पता चला कि लोकतंत्र का गला घोंटकर देश में इन्दिरा सरकार ने आपातस्थिति की घोषणा कर दी है। दूरभाष से पूर्व सूचना देकर दिल्ली में नानाजी देशमुख, श्री जगदीश प्रसाद माथुर प्रभृति शीर्षस्थ नेताओं को सजग कर दिया गया था, ताकि वे आन्दोलन का नेतृत्व कर सकें। आपातस्थिति की अचानक घोषणा से देश में आतंक का वातावरण फैल गया, क्योंकि गिरफ्तारी के बाद न उसके विरोध में अपील हो सकती थी, न वकील और न अदालत में दलील पेश करने की गुंजाइश रखी गई थी। अपने घरों से फरार रहे और गिरफ्तार हुए कार्यकर्ताओं के परिवारजनों को भी प्रताड़ित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी गई।

जेलों में कैद कार्यकर्ताओं को अकथनीय यातनाएँ दी गईं। हमारे एक साथी पत्रकार को हवालात में ले जाकर मुर्गा बनाया गया और उनकी पीठ पर एक बड़ी ईंट रखकर थाने के आँगन में बिना ईंट गिराए उसी स्थिति में चलने को विवश किया गया, जबकि वे हार्निया के रोगी थे। हमारे साथी प्राध्यापक (डॉ.) गौरीनाथ रस्तोगी तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. सत्यव्रत को भी जेल में घोर अमानवीय यातनाएँ दी गईं। डॉ. सत्यव्रत तो यातनाएँ झेलते-झेलते इतने अशक्त और जर्जर हो गए थे कि जब उन्हें चारपाई पर लिटाया जाता था तो उनके पाँवों में बड़े-बड़े पत्थर बाँधकर लटकाए जाते थे, अन्यथा उनके पैर तुरन्त स्वत: ही सिकुड़ कर ठोढ़ी से आ लगते थे। ऐसे एक-दो नहीं, पचासों उदाहरण देश की जेलों में उन दिनों संघ के ही कार्यकर्ताओं, छात्रों तथा विभिन्न विपक्षी दलों के बंदियों के जीवन में घटित हुए। अनेक तो यातनाएँ झेलते-झेलते ही जेलों में शहीद हो गए। प्रो. सत्यव्रत का भी वही हुआ।

इसी प्रसंग में मुझे लखनऊ के एक स्वयंसेवक चन्द्रशेखर के परिवार के कष्टों तथा दु:खों की याद ताजा हो आती है। उनके घर पर छापा मारकर पुलिस द्वारा एक दिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और वे लम्बे समय तक जेल में ही सड़ते रहे, यातनाएँ सहते रहे। उनका परिवार अतीव दु:खी और व्यग्र हो उठा। वे रेलवे में कार्यरत थे और एकमात्र वही परिवार के पालन-पोषणकर्ता थे। अब राशन कहाँ से कौन लाए? उनके जेल जाने से यह संकट आ खड़ा हुआ। उन्हीं दिनों लखनऊ में बड़े मंगल के मेले का समा बँधा। उस संकट-ग्रस्त परिवार के 10 वर्षीय बालक बबलू के मन में आया कि वह भी अन्य श्रद्धालुओं की भाँति लेट-लेटकर हनुमान जी के दर्शन को जाए तो उसके पिता जेल से छूट जाएँगे। उसकी माता ने बहुत समझाया, मना किया कि तुम अभी छोटे हो, बालक हो। मंदिर बहुत दूर है, वहाँ तक लेट-लेटकर कैसे पहुँचोगे? सड़क बहुत तपती है, लू चल रही है। पर बबलू किसी तरह न माना और बड़ी उम्र के लोगों के साथ सड़क पर लेट-लेटकर ही जाने लगा। जून का महीना था, लू और गर्मी में, उस तपती डामर की सड़क पर लेट-लेटकर बबलू उस दिन वह लम्बी दूरी तय करता चला और पसीने से तरबतर होकर हाँफते-हाँफते उस मंदिर तक जा ही पहुँचा। हनुमान जी के दर्शन किए और अपने पिता की जेल से रिहाई के लिए प्रार्थना की और घर लौट आया, परन्तु उसी दिन से वह बीमार पड़ गया। तीव्र ज्वर में तपते उस बालक को माँ की गोद से काल छीन ले गया। पिता पैरोल पर जेल से छूटकर घर आए, पर वहाँ उनका प्यारा, लाड़ला बबलू न था। ऐसे कई माँ के लाल आपातकालीन तानाशाही के शिकार होकर असमय ही

संसार से विदा हो गए।

दिल्ली में नवम्बर, 1975 तक ढाई हजार सत्याग्रही जेल पहुँच गए थे। दिल्ली से प्रति सप्ताह आन्दोलन की गतिविधियों के बारे में जनवाणी नामक पत्रिका प्रकाशित होती थी, जिसकी प्रसार-संख्या 50 हजार तक हो गई थी। पुलिस तथा गुप्तचर विभाग इस पत्रिका के प्रकाशन-कार्यालय का कभी पता न लगा सका। अलबत्ता इसका पता लगाने की प्रक्रिया में पुलिस ने कई लोगों को अमानवीय यातनाएँ दीं। दिल्ली के सर्वश्री लाला हंसराज गुप्त, सत्यनारायण बंसल, कँवरलाल गुप्त तथा ईश्वर दास महाजन प्रभृति प्रमुख नेता सत्याग्रह करके जेल जा चुके थे। श्री मदनलाल खुराना के घर के सामान को पुलिस ने कुर्क कर दिया, यहाँ तक कि उनके 10 वर्षीय पुत्र विमल की छोटी-सी साइकिल भी कुर्क कर दी, गैस-चूल्हा आदि कुछ भी न छोड़ा। अंततः एक दिन खुराना जी को भी दरियागंज में रवीन्द्र वर्मा के यहाँ से गिरफ्तार कर लिया गया था। पुलिस ने पूछताछ करने के लिए दिल्ली के नजफगढ़ के तहखाने को यातना-गृह बना रखा था, जहाँ गिरफ्तार किए गए लोगों को पुलिस अमानुषिक यातनाएँ देकर भेद उगलवाने की असफल चेष्टा करती थी। गिरफ्तारी के बाद मदनलाल खुराना को भी नजफगढ़ के उसी यातना-गृह में ले जाया गया और 4 घंटे तक उनसे ये प्रश्न पूछे जाते रहे कि, जनवाणी (साप्ताहिक) पत्रिका किस प्रेस में छपती है? उसका प्रकाशक कौन है? दिल्ली में कौन-कौन लोग सत्याग्रह और आंदोलन से जुड़े हैं? अब आपका स्थान कौन लेगा? आदि। उस समय वहाँ पुलिस अधीक्षक भी मौजूद था और जब खुराना जी ने कुछ भी बताने से इनकार किया तो उसने इसके लिए दुष्परिणाम भुगतने की उन्हें धमकी दी, जिसका अर्थ था, उस यातना-गृह में और अधिक यातनाएँ देना।

-साभार (पाञ्चजन्य)

अटल बिहारी वाजपेयी

स्वामी आल्हा

अंतरिक्ष तें प्रकटे स्वामी, संसद भवन गयो थर्राय;
पानी-पानी पुलिस हो गई, सत्ता गई सनाका खाय;
पहरे पर पहरा, पर सेहरा स्वामी के माथे सोहे;
पहुँच गए जब राज्य सभा में, पालम पे रस्ता जोहे।
पहले स्वामी भए नदारद, मुँह बाए ठाड़ी सरकार;
खिसियानी-सी खंभा नोचे पत्नी पर कर अत्याचार;
पहुँच विदेशन मां स्वामी ने, सत् की धजा दई फहराय;
लोकतंत्र की हत्या सुन के, दुनिया गई सनाका खाय।
लाखन डारे हैं जेलन में, बीवी-बच्चे रहे बिलखाय;
अखबारन का गला घोंट के, माँ-बेटे दोनों सन्नाय;
जंगल को कानून चलत है, रानी जो कर दे सो न्याय;
बेनकाब कर दीन्ही स्वामी, असली चेहरा दियो दिखाय।
स्वामी लोकतंत्र को रक्षक, हिम्मत वारो वीर जवान;
देस-देस मां अलख जगा दी, धरे हथेली पर निज प्रान;
जो गद्दार कहे स्वामी को, सो मूरख या धूरत होय;
अन्यायी शासन से लड़ना, राष्ट्र-विरोधी कृत्य न कोय।
धूल झोंक मोटी आँखिन में, स्वामी अंतर्धान भए;
टुकुर-टुकुर सब रहे देखते, राज्य सभा में पहुँच गए;
देख सदन में स्वामी जी को, बंसीलाल रहे मुँह बाय;
हाथ-पाँव फूले मेहता के, मेम्बर गए सभी चकराय।
उठा व्यवस्था के सवाल को, पीट दियो अपनो डंका;
खुले द्वार सों बाहर निकरो, मंत्रमुग्ध सारी लंका;
होश-हवाश दुरुस्त हुए जब, तब तक स्वामी गयो बिलाय;
पकड़ो, पकड़ो, भाग न जाए, इंदिरा व्यर्थ रही चिल्लाय।
स्वामी माता को सपूत है, स्वामी दूजो नेता जी;
गर वाणी पर संयम राखे, जीतेगो जरूरी बाजी;
धन्य-धन्य हैं वे सहयोगी, जिन स्वामी को साथ दियो;
जानो, आनो, फिर छिप जानो, दु:शासन को मात कियो;
बंद करौं स्वामी की आल्हा, अभी लड़ाई बाकी है;
लाखों स्वामी जूझ रहे हैं, यह छोटी-सी झाँकी है।

–'कैदी कविराय की कुंडलियाँ' से साभार

अनुशासन पर्व

अनुशासन का पर्व है,
बाबा का उपदेश,
हवालात की हवा भी
देती यह संदेश
देती यह संदेश,
राज डंडे से चलता,
जज हज करने जाएँ,
रोज कानून बदलता,
यह कैदी कविराय,
शोर है अनुशासन का,
लेकिन जोर दिखाई
देता दु:शासन का!

मातृपूजा प्रतिबंधित

अनुशासन के नाम पर,
अनुशासन का खून,
भंग कर दिया संघ को,
कैसा चढ़ा जुनून,
कैसा चढ़ा जुनून,
मातृपूजा प्रतिबंधित,
कुलटा करती केशव
कुल की कीर्ति कलंकित,
कह कैदी कविराय,
तोड़ कानूनी कारा,
गूँजेगा भारत माता,
की जय का नारा।

करो पूत परसन्न

बीस सूत्र रटते रहो,
बेड़ा होगा पार,
अंधा बाँटे रेवड़ी,
लेना हाथ पसार,
लेना हाथ पसार,
न देना फूटी कौड़ी,
खूब लगाओ पेड़,
कराओ सड़कें चौड़ी,
कह कैदी कविराय,
मिलेगी मनसबदारी,
करो पूत परसन्न,
मनाओ या महतारी।

मीसा मंत्र महान
दोषी औ निर्दोष में,
जिसकी दृष्टि समान,
वीजा है वह जेल का,
मीसा मंत्र महान,
मीसा मंत्र महान,
राजगद्दी का रक्षक,
इंद्राणी कोलेकर,
स्वाहा होगा तक्षक,
कह कैदी कविराय,
मार मीसा की मारी,
रौलट की संतान,
त्रस्त है जनता सारी।

छोटे सरकार

सब सरकारों से बड़े,
हैं छोटे सरकार,
गड्डी जिनकी चढ़ रही,
दिल्ली के दरबार,
दिल्ली के दरबार,
बुढ़ापा खिसियाता है,
पूत सवाया सिंहासन
चढ़ता आता है,
कह कैदी कविराय,
लोकशाही की छुट्टी,
बेटा राज करेगा,
पीकर मुगली घुट्टी

पुन: चमकेगा दिनकर
आजादी का दिन मना,
नई गुलामी बीच,
सूखी धरती, सूना अंबर,
मन आँगन में कीच,
मन आँगन में कीच,
कमल सारे मुरझाए,
एक-एक कर बुझे दीप,
अँधियारे छाए,
कह कैदी कविराय,
न अपना छोटा जी कर,
चीर निशा का वक्ष,
पुन: चमकेगा दिनकर।

बलवीर सिंह 'करुण'

कैसा प्रजातंत्र आया है

तेरी माटी शीश चढ़ाकर
जो सोते हर शाम
और भोर में जागें लेकर
तेरा पावन नाम

ऐसे देशभक्त बेटों को
कारागार मिला
कैसा प्रजातंत्र आया यह
मेरी भारत माँ!

राष्ट्र-देवता के चरणों में
मस्तक झुका नहीं
जिनके तीर्थ देश के बाहर
निष्ठा बिकी हुई

सिर्फ गड़रियों के गायन हैं
जिन नजरों में वेद
गंगा और गंदे नाले में
दिखा न जिनको भेद

आज उन्हीं को राजमहल में
ऊँचा मान मिला
कैसा प्रजातंत्र आया यह
मेरी भारत माँ!

नागों के कंधों पर आसन
कितना विकट विरोध
भक्तों के माथे डसने का
चंदन पर आरोप

अमृतवर्षी हर बादल पर
लगा दिया प्रतिबंध
घूम रहे विष के व्यापारी
गली-गली निर्बंध

माली शील हरे बगिया का
किससे करूँ गिला
कैसा प्रजातंत्र आया यह
मेरी भारत माँ!

मलयज उगल रहा था पलटें
कितना झूठ प्रचार
और आग को बना दिया
उपवन का पहरेदार

मधुऋतु की हर बार उपेक्षा
पतझर का सम्मान
मावस की सौ-सौ मनुहारें
पूनम का अपमान

राष्ट्र नहीं, आदमी बड़ा है
यह सिद्धांत फला
कैसा प्रजातंत्र आया यह
मेरी भारत माँ!

आपातकालीन दीपावली

हर तरफ अमावस काली है
खुशियों के घर कंगाली है
जितना उजियारा दिखता है
सबका सब नकली जाली है।
कैसी मनहूस दिवाली है।

माली हो उठे दरिंदे हैं
बेहद लाचार परिंदे हैं
कब्रों में दफन देवता हैं
यह अलग बात, वे जिंदे हैं।

गूँगी परकटी जवानी है
मीसा की मेहरबानी है
सत्ता मदहोश निरंकुश है
कितनी बदनाम कहानी है।

फूलों के घर मातम का गम
काँटों के घर खुशहाली है।
कैसी मनहूस दिवाली है।

इस बार राम हारे हैं रण
जीता स्वेच्छाचारी रावण
भोले शिव का कैलाश छीन
उसके स्वामी बन बैठे गण।

अन्याय न्याय से जीत गया
सब कहने का युग बीत गया
विष का सागर लहराया है
अमृत का घट तो रीत गया।

सुरपुर के महलों की देखो
असुरों के कर में ताली है।
कैसी मनहूस दिवाली है।

जंगल उग आए नारों के
उमड़े तूफान प्रचारों के
कैसे गति बढ़े पालकी की
घायल हैं पाँव कहारों के।

हर कहीं घुटन, हर कहीं चुभन
खंडित हर आशा का दरपन
सपनों के कब्रिस्तानों में
कैसा पूजन? कैसा अर्चन?

मौसम का चेहरा दर्ज हुआ
पतझर के मुख पर लाली है।
कैसी मनहूस दिवाली है।

सम्पर्क : अलवर (राजस्थान)

डॉ. देवेन्द्र दीपक

मौन

जिसे कहा गया था
अनुशासन पर्व,
वह अब क्यों बन रहा है
दु:शासन पर्व?

इस प्रश्न का
उत्तर वे अब कौन,
विनोबा भावे ने तो
धारण कर लिया
मौन।
20 दिसम्बर 75

शब्द- पक्षी

दो पेड़ थे पास-पास
दोनों पेड़ों पर थे दो घोंसले
दोनों घोंसलों में थे कुछ पक्षी
अक्सर दोनों घोंसलों के पक्षी
एक दूसरे के घोंसले में
बिना रोक-टोक
आते थे,
आते थे,
और एक दूसरे पर अपना प्यार
या कि घृणा
बेहिचक जतलाते थे।
लेकिन इधर कुछ दिनों से
देख रहा हूँ
कि ये पक्षी
अपने-अपने घोंसलों से
बाहर नहीं निकलते।
बड़ा बेचैन हूँ मैं
उनकी चुप्पी उनके लिए तो क्या
मेरे ही लिए असह्य हो गई।
एक दिन पूछ ही लेता हूँ-
भाई ये पक्षी आजकल
अपने घोंसलों से बाहर
क्यों नहीं निकलते?

चुप्पी की भयावहता को भोगता हुआ
उदास पेड़ बोलता है
मर्म खोलता है-
'बाहर क्या निकलें बेचारे
पूरा आकाश सेंसरित है।
रोज-रोज ओलों की मार
ये बेचारे
सह सकते हैं कैसे?'

प्रतिबंधों के कारण मेरी बेचैनी अपनी जगह
बनी रहती है,
पेढ़ की उदासी अपनी जगह
और स्वतंत्र आकाश के अभाव में
करुण-कातर शब्द-पक्षी
अपनी जगह बने रहते हैं।
हलचल, कोलाहल,
और आवाजाही के लिए
यह मौसम
कतई अनुकूल नहीं है।

खीझ साक्षात्कार की

तुम्हारे चेहरे पर बेहद कालिख थी,
तुम्हारे हाथ खून से लथपथ थे,
नीति-अनीति की चिंता से दूर
तुम्हें अपने तख्त की चिंता थी
कि कहीं साला यह तख्त
तख्ता न बन जाए।
उसी चिंता में तुम सब
जमीन और आसमान के
कुलाबें मिला रहे थे।

तुम्हारे सामने से कुछ लोग गुजरे-
उनके हाथों में थे कुछ शीशे
वे शीशे उन्होंने
बिना कुछ आगा-पीछा सोचे
तुम्हारे चेहरों के आगे कर दिए।

फिर क्या था
तुम सब आग-बबूला हो गए
अपने-अपने पाजामों से
बाहर हो गए तुम सब।
तुम सबने अपने-अपने अहलकारों को
शीशे छीनने के दे दिए आदेश।

और जब उनके शीशे छीन लिए गए
तो तुम सबने आनन-फानन में
अपने रक्त से लथपथ हाथों को
मसाने बंध-खड़े लोगों के
कपड़ों से पोंछ दिया
और फतबा दिया -
ये सब कातिल है।
इस तरह तुम्हारे हाथ
पाक-साफ हो गए।
तभी तुम सबने
जल्दी-जल्दी
अपने हाथों को
अपने कालिख पुते चेहरों पर घुमाया
और कालिख सने हाथों से
हाथ-मुँह बँधे
सामने लाचार खड़े लोगों के चेहरों पर
कालिख पोत दी।
और पूरी ताकत से चिल्लाने लगे
कि हत्यारे पकड़ लिए गए
'देशद्रोही', 'फिरकापरस्त', अराजक आदि की
बड़ी-बड़ी तख्तियाँ
उनके गले में बाँध दी गयीं।

और अब
ढोल तो ढोल
ढफली भी,
ढफली तो ढफली
झुनझुना भी
तुम्हारी ही भाषा बोलता है।

अनुशासन-पर्व : वाजिब व्याख्या

अनुशासन पर्व का अर्थ है
'क्यू' संस्कृति!
'क्यू' संस्कृति का अर्थ है-
यू बी देयर इन द क्यू
एण्ड यू शैल गेट योर ड्यू।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

डॉ. विजयानन्द

आपातकाल

अंग्रेजों से ली थी सत्ता,
हम इसके रखवाले हैं।
हम किसकी, क्यों बात सुनें?
अपने मन का करने वाले हैं।

सब बौद्धिक साथ हमारे हैं,
हमको कोई परवाह नहीं।
ये टिड्डी दल क्या कर लेंगे?
ये भर पाएँगे आह नहीं।

इन्हें मसल दें, उन्हें रगड़ दें,
मिट्टी में इन्हें मिला देंगे।
सत्ता के जो-जो बैरी हों,
कारागृह में भिजवा देंगे।

जो-जो विद्रोही स्वर हों,
शासन की हनक दिखा दें।
पकड़ तुरत थाने लाकर,
जेलों में उन्हें डलवा दें।

यही हुआ, सारे भारत ने,
सत्ता से द्रोह किया था।
हथकड़ियाँ खनकीं, कारा में,
जाने को जन-मन उमड़ा था।

कुछ साल-माह बीतते ही,
सहसा नव सूर्य उगा था।
सत्ता का अहंकार हारा,
नवयुग का सृजन हुआ था।

नेतृत्व बदल, सत्ता बदली,
अंग्रेजी दमन नीति हारी।
जनता सर्वोच्च, समझ आया,
है लोकतंत्र की बलिहारी।

सम्पर्क : प्रयागराज (उ.प्र.)
मो. 9335138382

डॉ. नाथूराम राठौर

वे काली रातें

आपातकाल की काली रातें, काले थे अखबार।
उजले थे शासन के नारे, मैली थी सरकार।।
दिन में सन्नाटा छाता था, रात में हाहाकार।
सबके कान पके थे, सुन-सुन नकली जै-जै कार।।
दफ्तर में चुपचुप होती थीं, बातें कई इजार।
पर मुँह पर ताला होता था, झूठा था उच्चार।।
घर में पत्नी भी सहमी थी, कैसे पाएँ पार।
बेटा-बेटी खाते तो थे, पर भूखा था प्यार।।
अनुशासन का पर्व था, झूठे सब त्यौहार।
राखी पर बहनों ने केवल, बाँधा लोकाचार।।
बीस सूत्र में बँध गया, देश का कारोबार।
पंजे पर थे नच रहे, कठपुतलियों के तार।।
हँसते केवल होंठ थे, मन रोता सौ बार।
शेर जेल में बंद थे, झूमे नाचें स्यार।।
कवि, लेखक वो लिख रहे जो चाहत सरकार।
पर दिनकर की चमक से रैन दिखी उजयार।।

संपर्क : दमोह (म.प्र.)
मो. 9993155977

प्रशांत पोल

आपातकाल...

25 जून 1975 की वह काली रात..
दुनिया के सबसे बड़े
लोकतांत्रिक देश में, लोकतंत्र का गला,
बर्बरता के साथ घोंटने का
विषैला कार्य प्रारंभ हो चुका था।

राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने
धारा 352 (1) के अंतर्गत
देश में आतंरिक आपातकाल लागू किया
उन्हें तो, उस आदेश पर
हस्ताक्षर करने के
मात्र तीस मिनट पहले तक
यह मालूम ही नहीं था,
की देश में आपातकाल लगने वाला है..!

आपातकाल यानी
आपके / हमारे विचार करने पर
संपूर्ण पाबंदी
जो कुछ विचार होगा, सोच होगी
वह केवल और केवल सरकार की
अर्थात् प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की
आप और हम
न तो कुछ लिख सकते थे, न बोल सकते थे...
समाचार पत्रों का
एक-एक अक्षर, छपने से पहले जाँचा जाता था
अगर लिखा हुआ सरकार के विरोध में है,
ऐसा दूर-दूर तक भी अंदेशा आया,
तो तुरंत उसे निकाल दिया जाता था
सभा / जुलूस / बैठकें आदि पर तो
सीधा प्रतिबंध था

26 जून की प्रात: बेला में
देश को यह समाचार मिला
इससे पहले ही
अधिकतर विरोधी नेताओं को
25 जून की रात को ही
बंदी बना लिया गया था
जयप्रकाश नारायण, अटल बिहारी बाजपेयी,
मोरारजी देसाई, लालकृष्ण आडवाणी, मधु लिमये
सारे जेल के अंदर थे
4 जुलाई 1975 को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर
प्रतिबंध लगा
संघ के सरसंघचालक बालासाहब देवरस जी
को भी संघ पर प्रतिबंध लगाने के पहले ही
गिरफ्तार कर लिया था
संघ के अनेक वरिष्ठ कार्यकर्ता
जेल की सीखचों में बंद थे।

यह आपातकाल 21 महीने चला
19 महीनों बाद, विजय के आत्मविश्वास के साथ,
इंदिरा गाँधी ने, 18 जनवरी 1977 को
आमचुनावों की घोषणा की
21 मार्च, 1977 को
लोकसभा चुनावों के परिणामों में
यह स्पष्ट हो गया
की लोकतंत्र का गला घोंटनेवाली कांग्रेस
बुरी तरह से परास्त हुई है,
अनेक राज्यों में कांग्रेस का खाता भी नहीं खुला है,
आपातकाल के तीनों दलाल-
इंदिरा - संजय - बंसीलाल
चुनाव हार चुके हैं
तब जाकर आपातकाल हटाया गया।

इक्कीस महीने
25 जून 1975 की रात से
21 मार्च 1977 की रात तक
इन इक्कीस महीनों में
इस देश को
इंदिरा गाँधी नाम के तानाशाह ने
बंधक बनाकर रखा था
इन इक्कीस महीनों में
पूरे देश में
कांग्रेस ने अपना पैशाचिक नग्न नृत्य
जारी रखा था
इन इक्कीस महीनों में
आपातकाल का विरोध करने वाले
अनेक कार्यकर्ताओं की, संघ के स्वयंसेवकों की
जाने गयीं!
संघ के अखिल भारतीय व्यवस्था प्रमुख
पांडुरंग क्षीरसागरजी को
अस्वस्थ होने के बाद भी
पैरोल नहीं मिला
उनकी कारावास में ही मृत्यु हुई
ऐसे कई स्वयंसेवक जेल में ही चल बसे
कइयों को तो इतनी नृशंस यातनाएँ दी,
की वे पूरी जिंदगी अपाहिज बने रहे
वर्धा के पवनार आश्रम में
सर्वोदयी कार्यकर्ता, प्रभाकर शर्मा ने,
आपातकाल के विरोध में
खुद को जिंदा जला दिया, आत्मदाह कर लिया।

इस आपातकाल का निडरता के साथ, निर्भयता के साथ
विरोध किया तो
संघ के स्वयंसेवकों ने
एक जबरदस्त भूमिगत आंदोलन चलाया
भूमिगत पर्चे निकालना,
उनका वितरण करना
14 नवंबर 1975 से
देशव्यापी भव्य सत्याग्रह करना
हजारों युवा स्वयंसेवकों द्वारा
अपना पुरषार्थ प्रकट करते हुए
देश की जेलों को भर देना..
ऐसा बहुत कुछ!
संघ के सरकार्यवाह माधवराव मुले
भूमिगत थे
अनेक वरिष्ठ प्रचारक, कार्यकर्ता
विपत्तियों की परवाह न करते हुए,
दमन की चिंता को दूर रखते हुए,
गिरफ्तारी के डर को धता बता कर
निर्भयता के साथ
आपातकाल का विरोध कर रहे थे।

21 महीनों का यह कालखंड
हमारे लोकतंत्र के इतिहास में,
हमारे स्वाधीन भारत के स्वर्णिम इतिहास में
एक काला अध्याय है।

लोकतंत्र की मशाल को
सतत प्रज्ज्वलित रखने के लिए
इस काले अध्याय का स्मरण करना,
इंदिरा गाँधी के,
कांग्रेस के उन काले कारनामों को
याद करना
आवश्यक है,
ताकि भविष्य में किसी की हिम्मत न हो
इस लोकतंत्र की
धधगते मशाल को
हाथ लगाने की!

सम्पर्क : जबलपुर (म.प्र.)
मो. 9425155551

सौ. कुसुम खरे 'श्रुति'

आपातकाल बनाम मीसा

जब छाई घर-घर अँधियारी,
अंधे युग का हुआ अहसास।
'राष्ट्रद्रोह' बन गया 'खिलौना'
किया अहित से हित का नाश।।
आई फिरंगी-युग जैसी वह,
कूट-कूट कर- 'फूट विलास।'
चुनाव अवैध हुआ जब घोषित,
सुख लोलुपता-सत्ता का पद।
हुए 'कोर्ट-कानून' अवहेलित,
छूटा नहीं पर 'प्रधानमंत्री' पद।।
तानाशाही की उठीं बदरियाँ,
बरसीं तो प्रजा बही बेतहास।
हुआ अचानक 'मीसा' लागू
बनी देश भक्ति 'बकवास'।
हुये प्रचारित नए प्रतिबंधन,
किए 'इति' मौलिक अधिकार।
लोकतंत्र पर चढ़ा दिया तब,
'बीस सूत्री कार्यक्रम' का हार।
राजनीति में सभी समाहित,
समय-समाज-संस्कार विकास।
बिन 'नसबंदी' नहीं तरक्की,
कर दिया अंकुश व अविश्वास।
काल रात्रि कैसे बन आई-
26 जून सन् पचहत्तर की रातें।
इन्दिरा जी के क्रिया कलाप से
गेहूँ-घुन सब पिसते जाते।

सोये थे छत आँगन में सब,
वृद्ध पिता अस्वस्थ, सोये थे।
भरापूरा परिवार जुड़ा था-
बहुयें-बेटीं नाती-पोते थे।
अनुभव, गायन सब सुना रहे,
हँसी-खुशी बखरी में बिखरी।
माँ ने कहा- अब सो जाओ सब
तभी द्वार साँकल बजी ससरी।
आधी रात में आया कौन?
देखा तो थे कुछ अधिकारी।
बोले-यहाँ 'अमुक-अमुक' हैं कौन?
माँ बोली- 'मेरे बेटे हैं।'
आप सुबह आना श्रीमान-
अभी सभी सोये-लेटे हैं।
प्रेम वचन बोले अजनबी-
माँ जी काम अर्जेंट आ पड़ा।
बस दो पल को भेज दें बाहर-
मैं भी तो ड्यूटी में खड़ा।
दो पल तो बन गये सुरसा मुख,
हो गया डेढ़ बरस का प्रवास।
राजनीति की कुटिल कुरीति,
लगा विरोधी पर डण्डा खास।
लिये भरत शिशु-गोद होलिका-
बोले 'सन्नाटा'- जय भारत।
शाखा-संघ-देश का सेवक,
सब मीसा में हो रहा गारत।
भारत के कोने-कोने से-
चुन-चुन रत्न रखे 'लॉकर' में।
जो मिलायेगा- 'हाँ जी-हाँ जी',
झूलेगा वो ही 'वॉकर' में।
इन्दिरा जी के नियम कायदे,
'रणचण्डी के कदम समान।'
दोष किया जनता ने इतना-
जयचंदों का किया न मान।
क्षण भर में युग सी पीड़ायें
मीसा बंदी झेल रहे थे।
जो बेचारे मातृभूमि की,
ध्वज की जय बस बोल रहे थे।
विद्याभारती विद्यालयों को
शासन ने आधीन कर लिया।
जिस घर 'संघ सामग्री मिले सो'
उसको मीसा बंदी धर लिया।
फिर फैला ऐसा दुर्भाव-
'हम-तुम-कब' से बैर भरे थे-
उसे 'भँजाया' था मीसा में।
बंद कर दिये सब अनुसांगिक,
शाखा संस्था शिक्षा अधिवास।
ग्रीष्म अवकाश, शिक्षण संस्थायें,
चारों ओर 'दहशत-शक' वास।
लोकतंत्र रक्षा हित जागा,
'जय प्रकाश' तो, मिटा अंधकार।
भारत भू में फिर हो आया,
परम्परा का एक अवतार।
जय प्रकाश के कदम उठे तो
खुले 'कृष्ण मंदिर' के द्वार।
भारत माता की गोदी में
खेले लाल करे उद्धार।

संपर्क : दमोह (म.प्र.)
मो. 9406514174

कहानी

इंजी. आशा शर्मा

सदमा

उसे अपना कुछ भी होश नहीं। न वह कुछ बोलता है और न ही किसी की सुनता है। बस अपने आप से बड़बड़ाता रहता है। लोग उसे पागल कहते हैं। उसे सहानुभूति से देखते हैं और आगे बढ़ जाते हैं।

चेहरे की रेखाओं को देखें तो उम्र के सातवें दशक तक जाती दिखाई पड़ती हैं। यह मेरे मोहल्ले के आखिरी मकान में रहने वाला व्यक्ति है जिसके परिवार के लोग उसे लेकर अक्सर शर्मिंदा महसूस करते हैं। उनका प्रयास रहता है कि वह अकेला घर से बाहर न निकले और कोई उनके घर आये तब भी वह उनके सामने नहीं आने पाए। शायद इसीलिए उनका मोहल्ले में किसी से अधिक मेलजोल भी नहीं है।

मैं भी इस परिवार से अधिक परिचित नहीं हूँ क्योंकि मैं यहाँ पिछले महीने ही रहने आया हूँ। मेरी पत्नी ने ही मुझे इस व्यक्ति के बारे में बताया था जिसे मैंने बहुत सामान्य सी प्रतिक्रिया देते हुए उसकी बात को दूसरी दिशा में घुमा दिया था। मैं नहीं चाहता था कि वह यहाँ-वहाँ की बेकार बातों में उलझकर अपना समय खराब करे और हर शाम ऑफिस से आने के बाद वह मेरे सामने दिन भर का किस्सा सुनाये।

बेशक मैं इस किस्से को अपनी व्यस्त दुनिया से परे रखना चाहता था लेकिन इन दिनों जिज्ञासावश मेरी निगाहें उधर ही उठने लगी और एक शाम जब मैं ऑफिस से लौट रहा था तब मैंने देखा कि कुछ बच्चे उसे 'पागलदीन बजावे बीन।.. रोटी खाए साढ़े तीन...' जैसी कुछ तुकबंदी करते हुए उसे चिढ़ा रहे थे। जवाब में वह उन्हें घुड़की देकर भगा रहा था। मैंने सुना, उसने कहा था 'भागो यहाँ से, वरना नसबंदी वाले पकड़कर ले जायेंगे।'

मैं चौंक गया। हिम्मत करके उसके पास गया। वह उन बच्चों की शरारत से उकताया हुआ कुछ नाराज और थोड़ा बेबस सा दिखाई दे रहा था।

'नमस्ते बाबा।' मैंने कहा।

'कौन हो तुम? क्या नसबंदी करने आए हो? लेकिन मेरी तो अभी शादी भी नहीं हुई है। मुझे जाने दो...' कहते हुए वह मेरे सामने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। मैं मौन खड़ा था। कुछ देर बाद मैंने देखा वह रोने लगा था।

'नहीं बाबा, मैं तो आपका पड़ौसी हूँ। आपकी तबियत पूछने आया हूँ।' मैंने भरकस आत्मीयता दिखाते हुए कहा। व्यक्ति मुझे हैरानी से देख रहा था। तभी उस घर के अंदर से एक युवक निकलकर

आया। उसने एक निगाह मुझ पर डाली और फिर उन्हें भीतर ले गया। युवक ने उनका हाथ पकड़ते हुए उन्हें दादा जी कहा था। यह संबोधन मुझे और भी अधिक हैरान कर गया क्योंकि अभी कुछ ही देर पहले तो उन्होंने कहा था कि उनकी शादी ही नहीं हुई। उलझन से भरा हुआ मैं अपने घर की तरफ चल पड़ा।

'सामने वाले घर में जो दादा जी रहते हैं न, उन्हें दिमागी परेशानी है। अक्सर दौरे पड़ते हैं।' एक दिन पत्नी ने बताया।

'तुम्हें कैसे पता?' मैंने पूछा।

'वो सरिता है न, उनकी बहू। उसने बताया था।' पत्नी ने कहा।

'तुम सरिता को कैसे जानती हो?' मैंने फिर पूछा।

'एक दिन सब्जी वाले ठेले पर मिली थी। तभी थोड़ी जान पहचान हुई थी। आज दोपहर घर आई तब बता रही थी।' पत्नी ने खुलासा किया। मेरी जिज्ञासा बढ़ने लगी थी लेकिन मैंने पत्नी के सामने जाहिर नहीं होने दिया।

'उसके सास-ससुर साथ नहीं रहते क्या?' मैंने पूछा।

'सास तो नहीं है, ससुर इनके दूसरे बेटे के पास गाँव में रहते हैं। वहाँ इनका पूरा परिवार रहता है। दादा ससुर और देवर का परिवार भी वहीं रहते हैं।' पत्नी ने बताया तो मैं फिर चौंक गया।

'दादा ससुर गाँव में रहते हैं तो फिर ये कौन हैं?' मैंने पूछा।

'ये इनके दादा ससुर के बड़े भाई हैं। दिमागी हालत ठीक नहीं होने के कारण यहाँ शहर में इनके पास रहते हैं।' पत्नी ने आज एक नया राज मेरे सामने खोला।

वह बुजुर्ग व्यक्ति मेरे लिए एक पहेली बन गया था जिसे सुलझाने के लिए मैं उतावला होने लगा। हालाँकि उसके नजदीक जाने का अवसर मुझे मिल नहीं रहा था क्योंकि इन दिनों वह मुझे बाहर दिखाई नहीं दे रहा था और अंदर जाने जितनी जान पहचान अभी हमारी हुई नहीं थी।

'दादा जी की तबियत ज्यादा खराब है। कल सरिता बता रही थी कि शायद वे लोग उन्हें गाँव ले जाएँ। डॉक्टर ने कहा है कि अब दवाएँ काम नहीं कर रही।' एक दिन पत्नी ने बताया। आज कल हमारी बातचीत के एक बड़े हिस्से पर दादा जी की चर्चा ही काबिज रहती है। मैं खुद भी हैरान था कि कुछ समय पहले मैं इस मसले से दूर रहना चाहता था और आज खुद ही इसमें उलझना चाह रहा हूँ। मैं दादा जी के गाँव जाने की बात सुनकर असहज हो गया। यदि ये चले गए तो मेरी पहेली अनसुलझी रह जायेगी। और यदि ऐसा हुआ तो मेरी बेचैनी मुझे जिंदगी भर सालती रहेगी।

'तुम मिलकर आई क्या उनसे?' मैंने पत्नी से पूछा।

'उनसे मिलने का कोई मतलब नहीं है। वे किसी बाहर वाले से अधिक बातचीत नहीं करते। आपकी उम्र के पुरुषों को देखकर तो बिदक ही जाते हैं।' पत्नी ने अपनी विवशता जाहिर की।

'कारण?' मैंने पूछा।

'पता नहीं, शायद कभी कोई सदमा लगा हो।' पत्नी ने कहा। मेरी जिज्ञासा अब मानसिक परेशानी में बदलने लगी थी। मैं उनके अतीत के बारे में जानने के लिए बेचैन होने लगा।

अगले दिन संयोग से दूध की थैली लेते समय सरला का पति यानी उनका पोता अजय डेयरी बूथ पर टकरा गया। मैं उसे देखकर मुस्कुराया तो उसने भी अभिवादन किया।

‘आपके दादा जी की तबियत अब कैसी है?’ मैंने शिष्टतावश पूछा।

‘अब इस उम्र में जैसी होनी चाहिए वैसी ही है। आजकल दौरे अधिक पड़ने लगे हैं। कल पिताजी और दादा जी आएँगे, उनके साथ इन्हें गाँव भेज देंगे।’ उसने मुझे बताया। शायद मेरी पत्नी की सरिता से नजदीकियाँ उसे मेरे साथ अपनी परेशानी बाँटने के लिए सहज कर रही थी।

‘वैसे उन्हें क्या परेशानी है?’ मैंने अपने भीतर के उतावलेपन को छिपाने की कोशिश करते हुए जानना चाहा।

‘पता नहीं। मैंने तो उन्हें हमेशा ऐसा ही देखा है। न कभी किसी ने बताया और न ही हमने कभी जानने की कोशिश की। लेकिन पिता जी बताते हैं कि यह कोई पैदाइशी बीमारी नहीं है।’ अजय ने डेयरी वाले को पैसे थमाते हुए कहा। शायद वह इस मुद्दे पर इससे अधिक नहीं खुलना चाहता था इसलिए बिना मेरी तरफ देखे वहाँ से चला गया।

शाम को जब पत्नी ने बताया कि दादा जी को कल गाँव लेकर जा रहे हैं तो मैंने घर जाकर उनसे मुलाकात की बात कही। पत्नी ने मेरी हाँ में हाँ मिलाई और रात को खाने के बाद हम उनसे मिलने उनके घर पहुँच गए।

पत्नी घर के भीतर चली गई और मैं बाहर बैठक में बैठ गया जहाँ सरिता के ससुर जी के साथ-साथ दादा जी के छोटे भाई से मेरी मुलाकात हुई। बातचीत चल पड़ी। कुछ इधर-उधर की चर्चा के बाद मैंने हिचकते हुए पूछा- ‘अजय बता रहा था कि इन्हें यह बीमारी जन्म से नहीं थी। क्या कभी कोई गहरा सदमा लगा था क्या?’

कुछ देर तक छोटे दादा जी चुप रहे। पता नहीं वे मुझे अपने घर की बात बताना नहीं चाह रहे थे या फिर उसे बताने के लिए भूमिका बना रहे थे। मेरी निगाह उनके चेहरे पर टिकी हुई तमाम हावभाव का अवलोकन कर रही थी। गला साफ करके उन्होंने बोलना शुरू किया।

‘नहीं बेटा, पैदाइश के समय ये सामान्य बालक ही थे और अपने समय में तो ये बहुत ही हट्टे-कट्टे नौजवान थे। हमारी पूरी खेती सँभालते थे। पहलवानी भी करते थे। शादी तय हो चुकी थी इनकी। तिथि भी तय हो चुकी थी। ये उन्नीस सौ पिचहत्तर की बात है जब देश में इमरजेंसी लगी थी।’ छोटे दादा जी बताने लगे। मैंने भी पढ़ा था इस आपातकाल के बारे में इसलिए मेरी इस प्रकरण में जिज्ञासा बढ़ने लगी। मैं गम्भीरता के साथ आगे की बात की प्रतीक्षा कर रहा था।

‘उन दिनों के बारे में क्या ही बताया जाए। तुम तो समझोगे भी नहीं। ये मेरा बेटा ही पैदा नहीं हुआ था तब तो।’ बेटे की तरफ इशारा कर कहते हुए वे फीके से मुस्कुराए।

‘आप बताइए न!’ मैंने आग्रह किया तो वे आगे कहने लगे।

‘पच्चीस जनवरी उन्नीस सौ पिचहत्तर की आधी को देश में आपातकाल यानी इमरजेंसी लगा दी गई। अव्यवस्था के नाम पर देश के संविधान और कानून में तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा मनमाने संशोधन किए गए। समाचार एजेंसियों और मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिए गए। जनसंख्या नियंत्रण के

नाम पर पुरुष नसबंदी का ऐसा सघन अभियान चलाया गया जिसे याद करके आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह देखो।' कहते हुए उन्होंने अपनी बाहों को तरफ इशारा किया। मैंने देखा, वास्तव में उनके रोम की जड़ों में उठाव दिखाई दे रहा था।

'फिर?' मैंने आगे पूछा।

'संजय गाँधी अनिवार्य नसबंदी का समर्थन कर रहे थे। पहले जमीन आदि देने के प्रलोभन दिए गए और उसके बाद लोगों के साथ जबरदस्ती की गई। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों के लिए पुरुषों की नसबंदी करने के लक्ष्य निर्धारित कर दिए थे जिनकी सख्ती से पालना न करने पर उनकी नौकरी पर तलवार लटका दी गई। निचले स्तर के कर्मचारियों को अपना वेतन लेने के लिए नसबंदी करवाने की बाध्यता रखी गई। दिल्ली को साफ सुथरा रखने के नाम पर पहले तो झुग्गियाँ हटाकर वहाँ के निवासियों को निर्वासित कर दिया गया और उसके बाद पुनर्वास के नाम पर नसबंदी की शर्त रख दी है। इतना ही नहीं बल्कि सरकारी कर्मचारियों को अपने निर्धारित लक्ष्य पूरे करने के लिए जबरन नसबंदी करने का अभियान भी चलाना पड़ा। अविवाहित किशोर बालकों से लेकर सत्तर वर्ष के बुजुर्गों तक को नहीं बक्शा गया। उसी अभियान की बलि चढ़ गया मेरा भाई भी।' कहते हुए उनका स्वर भर्रा गया। मैं और अजय दम साधे सुन रहे थे। मन ही मन उस समय की स्थितियों की कल्पना करने की कोशिश भी कर रहे थे। माहौल जरा भारी भारी होने लगा था। छोटे दादा जी ने कहना जारी रखा।

'लोगों में जबरिया नसबंदी का ऐसा भय फैल गया था कि कहीं भी कोई सरकारी जीप दिख जाती थी तो छोटे-छोटे बच्चे तक' भागो! नसबंदी करने वाले आ गए 'कहते हुए जहाँ जगह मिलती थी वहीं दुबक जाते थे।' मैं उनकी बातें सुन अवश्य रहा था लेकिन मेरा दिमाग इन्हें अतिश्योक्ति ही मान रहा था।

'क्या सच में कोई जबरदस्ती किसी की नसबंदी कर सकता है? यह तो गैरकानूनी हुआ न?' मैंने अपनी शंका जाहिर की। छोटे दादा जी मुस्कुराये।

'उन दिनों कानून तो था ही नहीं न! उस समय दो नारे ऐसे थे जो जन-जन की जुबान पर चढ़े हुए थे। एक- 'नसबंदी के तीन दलाल... इंदिरा, संजय, बंशीलाल' और दूसरा- 'जमीन गई चकबंदी में... मकान गया हदबंदी में... द्वार खड़ी औरत चिल्लाये... मर्द गया नसबंदी में...' कहते हुए उन्होंने ठहाका लगाया। मैं भी मुस्कुरा दिया।

'मैं उन दिनों नौवीं कक्षा में पढ़ा करता था। हमें नसबंदी के बारे में इतना ही पता था कि इसमें ऑपरेशन करके शरीर की किसी एक विशेष नस को बाँध दिया जाता है और ऐसा करने के बाद उस पुरुष की सारी मर्दाना ताकत समाप्त हो जाती है। वह कमजोर हो जाता है और भविष्य में किसी भी ताकत लगने वाले काम को करने के लायक नहीं रह जाता। एक अजीब सा भय था जो हर पुरुष के अन्दर कुंडली मार कर बैठ गया था।

एक दिन गाँव में एक सरकारी गाड़ी आई। मैं स्कूल में था। हमारा स्कूल चूँकि गाँव के बाहर ही था इसलिए हमने उस गाड़ी को चौपाल में जाते हुए सबसे पहले देख लिया था। उस समय आधी

छुट्टी का समय था। कुछ बच्चे खाना खा रहे थे और कुछ खेल रहे थे। जैसे ही हमारी निगाह सरकारी गाड़ी पर पड़ी, हम खाना और खेल छोड़कर खेतों की तरफ भाग गए। शाम को वापस लौटे तो पता चला कि गाँव में नसबंदी का कैंप लगा था। हम सब खुश थे कि बच गए। घर जाकर भाई साब को लूँगी पहने देखा तो दिमाग में खटका हुआ। मालूम हुआ कि उन्हें जबरन पकड़कर उनकी नसबंदी कर दी गई है। वे बहुत रोये-चिल्लाये कि उनकी शादी होने वाली है लेकिन किसी ने उनकी एक नहीं सुनी और उनके साथ भी वही किया जैसा करने के उन्हें ऊपर से आदेश मिले हुए थे।

अपने साथ हुई ज्यादती के बाद हर समय चहकने वाले मेरे भाई साब एकदम चुप्पा हो गए थे। बच्चे उन्हें देखकर चिढ़ाने लगते- 'देखो-देखो! इसकी नसबंदी हो गई।.. नस की बंदी हो गई... दोस्त भी इन्हें देखकर कनखियों से मुस्कुराने लगते। अखाड़े वाले उस्ताद ने भी यह कहकर इन्हें आने से मना कर दिया कि इन पर दाँव लगाकर उसे अपनी बेइज्जती नहीं करवानी। भाई साब ने दोस्तों के साथ उठाना-बैठना बंद कर दिया।' कहते हुए छोटे दादा जी ने अपने बड़े भाई की तरफ एक निरीह सी निगाह डाली और धीरे से उनका माथा सहला दिया। बड़े दादा जी की आँखें बंद थी। इस अवस्था में वे बहुत ही मासूम लग रहे थे। मुझे भी उन पर बहुत दया आ रही थी।

'एक दिन भाई साब के ससुराल वालों ने आकर सगाई तोड़ दी। भाई साब की नसबंदी और सगाई टूटने की बात पूरी बिरादरी में फैल गई थी। नसबंदी किये हुए लड़के को भला कौन अपनी बेटी देता? भाई साब भीतर ही भीतर घुटने लगे। धीरे-धीरे उनका चिड़चिड़ापन बड़ने लगा और गुस्सा भी। वे उन सभी लड़कों पर बिना कारण ही हाथ उठा देते थे जिनकी नसबंदी नहीं हुई थी। गाँव में किसी की बारात आती तो भाई साब पागलों की तरह से हँसने लगते। समय के साथ-साथ यह तनाव एक मानसिक रोग में बदल गया और इन्हें पागलपन के दौरे पढ़ने लगे। जब भी किसी सरकारी गाड़ी को देखते, चिल्लाकर उस पर पत्थर फेंकने लगते।' कहकर छोटे दादा जी कुछ पल के लिए रुके। उन्होंने एक ठंडी साँस खींची और आगे कहना जारी रखा।

'बहुत इलाज करवाया लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। दरअसल कितनी भी दर्द निवारक दवाएँ दे दो, जब तक असल शूल नहीं निकलता तब तक उसके दर्द से भी राहत नहीं मिलती फिर चाहे ऊपरी तौर पर कितनी भी दर्दनाशक दवाएँ क्यों न दी जाएँ और इस काँटे को जड़ से निकालने का अब कोई उपाय किसी के पास नहीं है।' कहते हुए छोटे दादा जी ने अपनी बात समाप्त की। कुछ देर चुप्पी सी पसरी रही। कोई कुछ भी नहीं बोल रहा था। शायद यह हमारे लिए उठ खड़े होने का इशारा भी था। मैंने पत्नी से चलने के लिए कहा और हम बहुत भारी मन से घर की तरफ बढ़ गए।

पिचहत्तर का आपातकाल अब भी मेरी आँखों के सामने नाच रहा था। छोटे दादा जी ने अपनी आँखों के माध्यम से मेरे लिए आज से लगभग पचास वर्ष पुराने घटनाकाल की खिड़की खोल दी थी। दादा जी जैसे न जाने कितने ही युवा रहे होंगे जो लोगों के तानों से घायल हुए होंगे। कितनी ही मजबूर लड़कियाँ रही होंगी जो अपने सपनों के राजकुमार के साथ सफेद घोड़े पर चढ़ने से पहले ही उतर गई होंगी। न जाने कितने ही युवाओं की सुखद कहानियों के दुखद अंत हुए होंगे। कितने ही घर कलह के कारण बर्बाद हुए होंगे। कारण था 'जबरन नसबंदी'। मन बेहद उदास हो रहा था। मैंने इन्टरनेट

खोलकर उस आपातकाल के बारे में पढ़ना शुरू किया जिसे पढ़ना मैंने पहले कभी भी जरूरी नहीं समझा था क्योंकि वर्तमान में जीने वाली हमारी पीढ़ी के लिए पचास वर्ष पुरानी घटनाओं का कोई महत्त्व नहीं था।

'उफ्फ! कुर्सी बचाने के लिए क्या-क्या सियासत नहीं की गई... क्या-क्या मनमानियाँ नहीं की गईं... किस कदर कानून और संविधान को मरोड़ा नहीं गया... आम जनता से सारे अधिकार छीन लिए गए... प्रेस की आजादी पर प्रतिबन्ध लगा दिए गए... विरोध करने वालों को जेल में ठूँस दिया गया... और इसके बाद यह जबरन नसबंदी का आदेश...' मैं जितना गहरे उतरता जा रहा था उतना ही अधिक डूबता जा रहा था... उतना ही अधिक गँदली काई में धँसता जा रहा था। काला अतीत जितना अधिक जान रहा था उतना ही अधिक अवसाद में जा रहा था। आखिर थककर मैंने नेट बंद कर दिया।

दूसरे दिन पता चला कि बड़े दादा जी को उनके भाई अपने साथ गाँव लेकर चले गए। एक दिन पत्नी ने दुखद समाचार दिया कि बड़े दादा जी नहीं रहे। मेरा मन भी रो रहा था। तभी कहीं से आवाज आई कि उनकी मृत्यु आज नहीं हुई है, वे तो उसी दिन मर गए थे जिस दिन सरकार ने अपनी जिद पूरी करने के लिए काला फरमान सुनाते हुए उनकी जबरदस्ती नसबंदी करवा दी थी। इसका मतलब यह हुआ कि वे मरे नहीं थे बल्कि मारे गए थे यानी यह उनकी सहज मृत्यु नहीं थी बल्कि नियोजित हत्या थी। और उस काले दौर में ऐसी न जाने कितनी ही हत्याएँ हुई होंगी। मन कर रहा था कि दादा जी के हत्यारों के लिए ईश्वर से कड़ी सजा की प्रार्थना करूँ लेकिन अफसोस कि हत्यारे अब जीवित नहीं हैं।

'हे इश्वर! दादा जी जैसे सभी मृतकों की आत्मा को शांति प्रदान करना। और सियासत को इतनी सदबुद्धि अवश्य देना कि वह अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति करने के लिए भविष्य में कभी भी इस काले अध्याय को नहीं दोहराये।' मैंने मन ही मन प्रार्थना की। मैं दादा जी के दु:ख के साथ आत्मसात कर रहा था।

सम्पर्क : बीकानेर
मो. 9413369571

विनय त्रिपाठी

‘जब कैद हुई अभिव्यक्ति’ आपातकाल के कैदी साहित्यकारों से संवाद

राष्ट्रवादी सोच के क्रियाशील मानस के धनी लेखक अरुण कुमार भगत की पत्रकारिता भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, साहित्य, पर्यावरण, विज्ञान और सामाजिक सरोकारों से जुड़े अन्य विषयों से ओत-प्रोत है। वे जितनी शिद्दत से कलम साधते हैं उतनी ही तत्परता से जमीनी आंदोलनों से भी जुड़ जाते हैं। उनकी अब तक की यात्रा इसकी गवाह है। उनके इसी रुचिबोध का सुफल ‘जब कैद हुई अभिव्यक्ति’ पुस्तक है। इससे पहले उनकी हिन्दी पत्रकारिता : सिद्धांत से प्रयोग तक तथा भारतीय जनमानस और जनतंत्र पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जब कैद हुई अभिव्यक्ति, पुस्तक में 23 साहित्यकारों के साक्षात्कार हैं। ये वे साहित्यिक हस्ताक्षर हैं जिन्हें आपातकाल के दौरान जेल में डाल दिया गया था।

पत्रकारिता की सबसे विश्वसनीय बहुप्रचलित विधा ‘साक्षात्कार’ के कारण जब कैद हुई अभिव्यक्ति पुस्तक, इतिहास के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोगी है। साहित्यकारों से पूछी गयी प्रश्नावली, पत्रकारिता, राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान आदि विषयों को स्पर्श करती राष्ट्रबोध से एकाकार होने का प्रयास करती है। साक्षात्कारकर्ता श्री भगत ने आपातकाल में कैदी रहे साहित्यकारों से कुल 12 प्रश्न पूछे हैं। इनमें से दो प्रश्नों का सीधा साहित्य से सरोकार है। ये प्रश्न हैं- 1.आपातकाल का प्रभाव साहित्य सर्जना पर कितना और किस रूप में पड़ा? और 2.सत्ता परिवर्तन के लिए साहित्य का हथियार और औजार बनाए जाने की अवधारणा को आप कितना सार्थक अथवा निरर्थक मानते हैं?

पहला प्रश्न जहाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास के विद्यार्थी के लिए अत्यंत महत्त्व का है, वहीं दूसरा प्रश्न भविष्य दृष्टि से संबंधित है। यह प्रश्न साहित्य को सत्ता परिवर्तन का हथियार और औजार बनाये जाने की अवधारणा के बारे में रचनाकारों से चर्चा का सार्थक प्रयास करता है। इन प्रश्नों के उत्तर में धुर विरोधी विचार भी सामने आये हैं। साहित्यकार की अपनी निजी सोच के चलते ऐसा हुआ है। पर मूल आत्मा एक ही है- ‘‘आपातकाल में साहित्य की स्वतंत्र सत्ता का गला घोंट दिया गया था। साहित्य वहाँ था ही कहाँ। वह तो सत्ता की प्रशंसा का प्रशस्ति युग था। तानाशाही का समर्थन था। हाँ, जिन्होंने आपातकाल के विरुद्ध लेखनी उठाई तथा लोक-मंगल के भाव से जो कुछ लिखा, उसे प्रकाश में लाने का जितना यत्न हुआ है, वह बहुत कम है।’’ (डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय विजय, पृष्ठ-24)

‘‘आपातकाल का प्रभाव साहित्य-सर्जना पर काफी पड़ा। साहित्य की औपचारिक सर्जन-प्रक्रिया पहले की बँधी-बँधाई लीक से हटकर लोकजीवन के अधिक निकट आई। शास्त्रीय अथवा पुस्तकीय शब्द कौतुक के स्थान पर अंतस के यथार्थ अनुभवों को वाणी मिली। भाषा भी निर्धारित शास्त्रीय सरणियों से हटकर लोकधारा के अनुसार सहज स्वाभाविक प्रवाह में ढली। हजारों ऐसे नए प्रयोग साहित्य में

समाविष्ट हुए जो धीरे-धीरे पाठक-वर्ग की अभिव्यंजना-शैली के ही अंग बन गये।'' (डॉ. राम प्रकाश, पृष्ठ-34)

''आपातकाल में रचना कर्म के लिए जितना साहस अपेक्षित या उतना साहस उस काल के सामान्य लेखक नहीं जुटा पाए। फणीश्वरनाथ रेणु, महादेवी वर्मा, जैनेंद्र कुमार, भवानी प्रसाद मिश्र जैसे कुछ अपवादों को छोड़ दे तो अधिकतर बड़े साहित्यकारों ने परीक्ष-प्रत्यक्ष रूप से आपातकाल का समर्थन ही किया। ...अन्य भाषाओं की तुलना में हिन्दी साहित्य पर आपातकाल का ज्यादा प्रभाव पड़ा।'' (डॉ. शैलेंद्रनाथ श्रीवास्तव, पृष्ठ-70-71)

''मैं दिल्ली के अनेक साहित्यकारों को जानता हूँ जो इंदिरा गाँधी की चाटुकारिता में लगे रहे। ऐसे साहित्यकारों से क्या उम्मीद की जा सकती है कि वे आपातकाल के विरोध में कुछ लिखेंगे। दूसरे हमारे वामपंथी साहित्यकार जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा मानवाधिकार के सबसे बड़े प्रवक्ता हैं, वे सब इंदिरा गाँधी के सामने हाथ जोड़े खड़े थे। शायद इसलिए कि स्टालिन और माओ जैसे तानाशाहों के वे समर्थक थे। ऐसे लोगों ने आपातकाल का विरोध करने की जगह सत्ता से पद, पदार्थ और पुरस्कार पाना उचित समझा, किन्तु साहित्यकारों के एक तबके ने आपातकाल का विरोध किया, संघर्ष किया और यातनाएँ भोगीं। ऐसे लोगों ने आपातकाल पर काफी लिखा है, पर दुर्भाग्य से उस पर शोध कार्य नहीं हुआ है।'' (डॉ. कमल किशोर गोयनका, पृष्ठ -81)

श्रेष्ठ साहित्य में मंत्र जैसी शक्ति होती है। जैसे मंत्र को सिद्ध कर इच्छित फल पाया जा सकता है, वैसे ही श्रेष्ठ साहित्य श्रेष्ठ समाज की रचना में सहायक होता है। पर 'जब कैद हुई अभिव्यक्ति' का साहित्य से जुड़ा दूसरा प्रश्न सत्ता परिवर्तन में साहित्य को हथियार और औजार बनाये जाने के बारे में बात उठता इसी भावभूमि में है। रचना में परिवर्तन का तत्त्व निहित रहता है, पर हर परिवर्तन रचना अंश नहीं होता। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में तो साहित्य ने शस्त्र के कंधे-से-कंधा मिलाकर युद्ध में अपनी महत्ता को प्रतिपादित किया है। साहित्य में युग को इच्छित रूप देने के सभी सूत्र निहित होते हैं। सत्ता परिवर्तन के लिए साहित्य को हथियार और औजार बनाए जाने की अवधारणा के बारे में कैदी रहे साहित्यकारों के मत है- ''सत्ता परिवर्तन के लिए साहित्य को हथियार और औजार बनाना व्यापक जन-हित में गलत नहीं है। सत्ता छोटी चीज है समाज के सामने। समाज में मूल्यों की रक्षा के लिए साहित्य को औजार बनाया जाना चाहिए। साहित्य इस दिशा में सक्रियता दिखाए, यह आवश्यक है। आपका विरोधी यदि औजार बनाता है तो आप भी चुप तो नहीं रहेंगे।'' (डॉ. बाबूलाल गोस्वामी, पृष्ठ-59)

''सत्ता-परिवर्तन के लिए साहित्य को साधन नहीं बनाना चाहिए। यह साहित्य का काम नहीं। ...सत्ता-परिवर्तन का काम यदि साहित्य करने लगा तो उसे सारे भ्रष्ट कार्य करने पड़ेंगे जो सत्ता करती है। तब साहित्य सत्ता का अंग बनकर रह जाएगा।'' (डॉ. रमाकांत शुक्ल, पृष्ठ-88)

''सत्ता-परिवर्तन के लिए साहित्य की सार्थकता तो है, पर साहित्य ऐसा लिखा जाए, जिसे लोग समझें और अपना लें। आजादी के संघर्ष के दौरान कई ऐसी कविताएँ लिखी गईं, जो आज भी लोगों को कंठस्थ हैं। पर आपातकाल के दौरान ऐसी कविताएँ नहीं लिखी गईं जो लोगों की जुबान पर हो। आपातकाल के दौरान न कोई प्रभावी साहित्य लिखा गया और न जुझारू साहित्यकार ही पैदा हुए।''

(लक्ष्मीनारायण प्रसाद, पृष्ठ-127)

'जब कैद हुई अभिव्यक्ति' में डॉ.शांति स्वरूप गुप्त (दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी के सेवानिवृत्त प्रोफेसर), डॉ. रमानाथ त्रिपाठी (निराला सृजन पीठ, भोपाल के पूर्व निदेशक), डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' (राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष), डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के पूर्व कार्यकारी उपाध्यक्ष), डॉ. राम प्रकाश (दिल्ली वि.वि. के पत्राचार पाठ्यक्रम एवं अनुवर्ती शिक्षा महाविद्यालय के पूर्व रीडर), डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद (नालंदा के किसान कॉलेज के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष), डॉ. श्याम बिहारी लाल शर्मा (राजधानी कॉलेज, दिल्ली के हिन्दी के पूर्व वरिष्ठ प्राध्यापक), शांता कुमार (पूर्व केंद्रीय मंत्री), डॉ. बाबूलाल गोस्वामी (दिल्ली विवि के श्यामलाल कॉलेज के पूर्वप्राचार्य), डॉ. कन्हैया सिंह (उत्तरप्रदेश भाषा संस्थान के पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष), ओम प्रकाश कोहली (दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के पूर्व रीडर), डॉ. शैलेन्द्रनाथ श्रीवास्तव (पटना वि.वि. के हिन्दी के पूर्व प्रोफेसर), डॉ. राम सुरेश पांडेय (दिल्ली के राजधानी कॉलेज के संस्कृत विभागाध्यक्ष), डॉ. कमल किशोर गोयनका (दिल्ली के जाकिर हुसैन महाविद्यालय के पूर्व अध्यापक), डॉ. रमाकांत शुक्ल (दिल्ली विवि के राजधानी कॉलेज के हिन्दी विभाग के पूर्व वरिष्ठ रीडर), डॉ. रविंद्रनाथ दरयन (हंसराज कॉलेज के हिन्दी विभाग के रीडर), सूर्यकांत बाली ('जी न्यूज' के पूर्व संपादक), डॉ. लक्ष्मीनारायण भारद्वाज (दिल्ली के दयाल सिंह कॉलेज के वरिष्ठ रीडर), सुंदरलाल कथूरिया (भावनगर विश्वविद्यालय, गुजरात के हिन्दी के पूर्वविभागाध्यक्ष), भागवत प्रसाद सिंह (कवि), मुरारीलाल शर्मा (हिन्दू कॉलेज सोनीपत के पूर्व प्राध्यापक) और लक्ष्मीनारायण प्रसाद (कवि) के साक्षात्कार हैं। इनमें से अधिकांश साहित्यकारों की एक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई है और एक से अधिक रचना विधाओं के पारंगत है। इन रचनाकारों ने आपातकाल की जेलों और तत्कालीन समूचे तंत्र को झेला है तथा उससे मुक्ति के आंदोलन में भाग लिया है। इसलिए इनके साक्षात्कार समय बीतने के साथ-साथ अधिक महत्त्वपूर्ण होते जायेंगे। अपनी बेबाक टिप्पणियों के कारण भी ये साक्षात्कार विशिष्ट हैं। इनके कुछ उद्‌घोषक शीर्षक हैं- 1. अपातकाल में अधिकतर पत्रकारों ने नपुंसकता दिखाई। 2. सरकार से समाज-परिवर्तन की आशा करना दिवास्वप्न है। 3. मालिकों के स्वार्थ का शिकार बन गया था प्रेस। 4. आज के अवसरवादी नेताओं से कोई उम्मीद नहीं। 5. राजनीतिक भ्रष्टाचार संसदीय प्रणाली की देन है। 6. नशे में हैं सत्ता में बैठे अधिकतर नेता। 7. पाँच दिनों तक पुलिस ने थर्ड डिग्री का इस्तेमाल किया। 8. डेमनक्रेसी (राक्षस-तंत्र) है आज भारत में। 9. 'संपूर्ण क्रांति' ठिठक गई सत्ता-परिवर्तन के बाद। 10. गँवार समझी जाने वाली जनता ने भी कमाल दिखाया आदि। इन तेवरों के कारण कहने वाले कह सकते हैं कि कुल जमा 128 पृष्ठों की किताब में इतने विषय एक साथ कैसे आ गये। पर जब 'आपातकाल' पर उसके भुक्तभोगियों से बातचीत होगी तो यह सहज है कि विविध विषयों का समावेश हो। पुस्तक की भाषा सहज, सरल और ग्राह्य है। इसे पढ़कर आपातकाल के बारे में साहित्यकारों की जुबानी काफी कुछ जाना समझा जा सकता है।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)

दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद के ख़िलाफ़ संघर्ष में लेखक की भूमिका

(प्रगतिशील लेखक संघ की राष्ट्रीय समिति का अधिवेशन)

अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक महासंघ की बैठक 12-13 अगस्त, 75 को दिल्ली में हुई। बैठक में करीब हर प्रांत के लेखक शरीक हुए और करीब-करीब हर भाषा का प्रतिनिधित्व हुआ। यह कई मायनों में एक अत्यन्त सफल बैठक थी। न सिर्फ इस मायने में कि अच्छी तादाद में इकट्ठा होकर लेखकों ने बहस-मुबाहिसों में हिस्सा लेकर विषय की गम्भीरता को रेखांकित किया व प्रगतिशील लेखकों के रूप में अपने दायित्वों के प्रति सजगता दर्शायी बल्कि इसलिए भी कि यह बैठक एक ऐसे मौके पर हुई जो देश के जीवन में एक क्रांतिकारी मोड़ को लक्षित करता है और जो लेखकों के ऊपर कुछ नयी जिम्मेदारियाँ डालता है, कुछ गम्भीर चुनौतियाँ उनके सामने उपस्थित करता। इसलिए भी कि लेखकों ने यह साबित कर दिया है कि वे चुनौतियों व खतरों से बेखबर नहीं हैं और राष्ट्र की प्रगति को रोकने वाली ताकतों से न सिर्फ वे परिचित हैं बल्कि उनसे संघर्ष करने को तत्पर हैं।

बैठके अध्यक्ष मण्डल के सदस्य थे डॉ. भगवत शरण उपाध्याय (प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता) कैफी आजमी (प्रसिद्ध शायर), गुलामरब्बानी ताबां (शायर), डॉ. मोहन सिंह व डॉ. केदारनाथ अग्रवाल (प्रसिद्ध हिन्दी कवि), व कालिन्दी चरण पाणिग्रही जैसे प्रसिद्ध साहित्यकार। बैठक व सेमिनार की बहसों में जिन प्रसिद्ध लेखकों ने सक्रिय रूप से हिस्सा लिया उनमें प्रमुख थे डॉ. नामवर सिंह, हबीब तनवीर, शमशेर बहादुर सिंह, कमलेश्वर, कामतानाथ, मोहन श्रोत्रिय, तरुण सान्याल, करणजीत सिंह आदि।

पहले दिन तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये।

मुख्य प्रस्ताव था- वर्तमान स्थिति और लेखक की भूमिका। प्रस्ताव महासंघ के महासचिव भीष्म साहनी ने रखा। प्रस्ताव में जहाँ एक ओर आपातस्थिति का स्वागत किया गया वहाँ इस बात को भी रेखांकित किया गया कि अगर आपातस्थिति की घोषणा में एक दिन की भी देरी हो जाती तो देश के भीतर की प्रतिक्रियावादी ताकतें बाहर की नव उपनिवेषवादी ताकतों के साथ साँठ-गाँठ करके देश को अराजकता की स्थिति में फेंक देतीं। सरकार की चुस्त व सुदृढ़ कार्रवाई ने उस संकट को फौरी तौर पर टाल दिया जो देश को एक बहुत ही खतरनाक स्थिति में डाल सकता था।

प्रस्ताव में प्रधानमंत्री द्वारा घोषित बीस सूत्रीय कार्यक्रम का स्वागत करते हुए यह विश्वास प्रकट किया गया कि इस कार्यक्रम पर निष्ठापूर्वक अमल होने से गरीब तबकों को राहत मिलेगी जो कि बेहद जरूरी है। कार्यक्रम के अमल के संबंध में यह अनुभव किया गया कि जनता की सक्रिय व घनिष्ठ भागीदारी से ही इसकी सही तामील हो सकती है। अगर इसके क्रियान्वयन को शुद्ध रूप से अफसरशाही

पर ही छोड़ दिया गया तो जो कुछ अब तक हासिल हुआ है वह इस मायने से रद्द हो सकता है कि कुछ पुरानी बुराइयाँ वापिस पनप सकती हैं और खतरनाक स्थिति पैदा कर सकती है। इस बात पर प्रसन्नता जाहिर की गयी कि सांप्रदायिक व नव फासिस्ट ताकतों पर सही वक्त पर अंकुश लगाकर दूरदेशी का परिचय दिया गया। ये काली ताकतें और संगठन देश के जीवन के हर क्षेत्र में अपने जहरीले असर को फैला रही थीं।

प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि शिक्षा, संस्कृति, सूचना और प्रसारण के क्षेत्रों में भी इसी तरह के निर्णायक कदम उठाये जाने चाहिये। निहित स्वार्थ इनका इस्तेमाल जनता के मनोबल को कमजोर करने को कर रहे हैं। पाठ्य पुस्तकों, प्रकाशनों, फिल्मों, रेडियो, टेलीवीजन कार्यक्रमों को जनहित में ढालने के लिए उसकी काँट-छाँट की जरूरत है। महसूस किया गया है कि यह बेहद महत्त्वपूर्ण कार्य प्रबुद्ध और प्रतिबद्ध लेखकों की सक्रिय भागीदारी के बिना पूरा नहीं हो सकता।

प्रस्ताव में ग्रामांचलों में हो रहे परिवर्तनों का अध्ययन करने व कलात्मक रूप से उनका चित्रण करने तथा इतिहास की गति का साक्षी बनने का आह्वान लेखकों से किया गया है।

दूसरा प्रस्ताव था- सेंसरशिप पर। प्रस्तावक थे मोहन श्रोत्रिय-

प्रस्ताव इजारेदार प्रेस पर सेंसरशिप का स्वागत करते हुए भी यह महसूस करता है कि सेंसरशिप को दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावाद व फासिज्म के खिलाफ सही अर्थ में कारगर हथियार बनाने के लिए बहुत कुछ किया जाना बाकी है। प्रस्ताव में सभी राज्यों के लिए समान रूप से लागू होने वाली एक सुपरिभाषित सेंसरशिप नीति निरूपित करने के लिए सरकार से अनुरोध किया गया है।

साहित्यिक रचनाओं के बारे में कहा गया है कि हम सूचनामंत्री विद्याचरण शुक्ल की इस धारणा से सहमत है कि साहित्यिक रचनाओं का मूल्यांकन उनके प्रभाव की समग्रता में किया जाना चाहिए।

प्रस्ताव में सरकार से ऐसी जनसमितियाँ बनाने की माँग की गई है जो सुझाव दे सकें कि फासिज्म व प्रतिक्रिया से लोहा लेने के लिये सेंसरशिप को किस तरह एक सही व सबल अस्त्र बनाया जा सकता है। ऐसी समितियों में प्रगतिशील लेखकों, पत्रकारों व कलाकारों को शामिल किया जाना चाहिए ताकि सेंसरशिप को लेखकों की उन कृतियों पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए इस्तेमाल न किया जा सके जिनमें जनता की सही व लोकतांत्रिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति हुई है।

तीसरा प्रस्ताव पटना में अक्टूबर के अन्त में (वहाँ आयी भयंकर बाढ़ के कारण जिसका आयोजन अब दिसम्बर में होगा) हो रहे अन्तर्राष्ट्रीय फासिस्ट विरोधी कांग्रेस के बारे में था। प्रस्तावक थे डॉ. खगेन्द्र ठाकुर। प्रस्ताव में कहा गया है:-

हम भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों से अनुरोध करते हैं कि वे फासिज्म व नव फासिज्म की रणनीति की जड़ों की तलब के लिए मीटिंगें व सेमिनार आदि का आयोजन करें और अपने सामूहिक निष्कर्षों को लेकर पटना आएँ और इस पटना कांग्रेस को संस्कृति और मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के लिए वैसा ही ऐतिहासिक अवसर बनाएँ जैसा 1936 की पेरिस कांग्रेस में हुआ था।

दूसरे दिने 'साहित्य व संस्कृति में दक्षिण पंथ प्रतिक्रियावाद के खिलाफ़ संघर्ष' विषय पर सेमिनार आयोजित किया गया व इसमें 'डॉ. नामवर सिंह, हबीब तनवीर (दिल्ली) सतीश, कालसेकर, अली

सरदार जाफरी (बम्बई) ने मुख्य रूप से भाग लिया। इस विचार विमर्श में भाग लेने वाले प्रख्यात लेखकों में डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, कुलवीर सिंह कांग, शमशेर, बहादुर सिंह, रमेश उपाध्याय, नारायण सुर्वे, कामतानाथ, प्रो. मोहन सिंह, ललितमोहन अवस्थी, मोहन श्रोत्रिय, खगेन्द्र ठाकुर, तरुण सन्याल, कैफी आजमी, ऋषिकेश व करणजीत सिंह शामिल थे।'

विषय प्रवर्तन करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि प्रगतिशील लेखकों के लगातार संघर्ष के बावजूद भी पिछले चर दशकों में साहित्य में प्रतिगामी प्रवृत्तियाँ तेजी से बढ़ी हैं। प्रतिगामी प्रवृत्तियों के सामाजिक आधार व स्वरूप का विश्लेषण करते हुए नामवर जी ने कहा कि इन प्रगतिगामी प्रवृत्तियों का जिनके खिलाफ हमने संघर्ष किया है, एक पक्ष जातिवाद व सम्प्रदायवाद है तथा दूसरा पक्ष है बड़े-बड़े शास्त्रीय शब्दों का प्रयोग करना जिनका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है और जो पूरी तरह से निरर्थक हैं।

नामवर जी ने आगे कहा कि एक प्रकार का विरोध-साहित्य भी विकसित हुआ है। अधिकांश कविता में विरोध प्रमुख है तथा विचारधारा गौण। इनके लिए हर हालत में विरोध लाजिमी है, बिना इस बात की परवाह किये कि विरोध किसका व किस तरह किया जाना चाहिए। इस विरोध व नकारवाद ने, जिसका उद्देश्य महज विरोध के लिए विरोध था, हमारे कुछ प्रख्यात लेखकों जैसे नागर्जुन व रेणु को सम्पूर्ण क्रान्तिकारी जयप्रकाश नारायण की गोद में पहुँचा दिया। यह प्रभाव स्पष्ट रूप से तथाकथित नव नामपंथी आंदोलन की ओर से आया है जिसे एक ओर इजारेदार प्रेस का सहयोग मिला है तो दूसरी और टुटपुँजिये बुद्धिजीवियों का समर्थन भी मिला है। परिणामस्वरूप निषेधवाद का जन्म हुआ, और उसी लेखक को श्रेष्ठ व जन्म हुआ, और उसी लेखक को श्रेष्ठ व क्रान्तिकारी माना जाने लगा जो हर चीज का विरोध करें। इस संदर्भ में देखने पर, संपूर्ण क्रान्ति का नारा आकस्मिक नहीं लग सकता।

इन प्रगतिगामी प्रवृत्तियों के सामाजिक आधार को रेखांकित करते हुए नामवर सिंह ने कहा कि इसका जन्म विभिन्न मामलों से जुड़े असंतोष से हुआ है। पुराना ढाँचा टूट रहा था जबकि नया ढाँचा उतनी तेजी से नहीं उभर पा रहा था। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति का अधिकाधिक फायदा फासिस्ट व नव फासिस्ट तत्व उठाने की कोशिश करते हैं। उन्होंने इस बात पर खुशी जाहिर की कि सारे संरक्षण के बावजूद ऐसी रचनाएँ और प्रवृत्तियाँ हमारे साहित्य में जड़ नहीं जमा सकीं। ऐसा साहित्य जो महज शिकायत और विरोध करता है, आंचलिकता के नाम पर पश्चिम की घनघोर नकल करता है, यथार्थ की जगह विजातीय प्रभावों पर जोर देता है, ज्यादा दूर नहीं जा सकता।

अन्त में उन्होंने कहा कि हमें अपनी सृजनात्मक शक्ति का इस्तेमाल प्रतिक्रिया के सबसे मजबूत गढ़ पर प्रहार के लिये करना होगा। महाराष्ट्र के लेखक सतीश कालसेकर ने कहा कि केवल कुण्ठा और विरोध की बातें करना यथार्थ का अधूरा चित्र प्रस्तुत करना है। उन्होंने कहा कि मराठी साहित्य में यह शुभ परिवर्तन आया है कि कल के अराजकतवादी, लेखक, आज प्रगतिशीलता के घेरे में आने लगे हैं।

प्रख्यात हिन्दी कवि शमशेर बहादुर सिंह ने लक्षित किया कि आज के अधिकांश कवि सामान्य सहज पाठकों के लिये लिखने की बजाय मुख्यत: दूसरे कवियों के लिये लिख रहे हैं। उनका कहना था कि पाठकों को यह बताना जरूरी है कि तथाकथित आधुनिक साहित्य व कला वास्तविक अर्थों में रुग्ण हैं जो हमें अँधेरे की ओर ले जाते हैं।

मराठी कवि नारायण सुर्वे ने कहा कि ऐसे फाउंडेशनों व संगठनों का भंडाफोड़ किया जाना चाहिए जो रुपये का प्रलोभन देकर हमारे युवा लेखकों को गुमराह कर रहे हैं। ललित मोहन अवस्थी ने प्रतिक्रियावाद के चरित्र को बेनकाब करते हुए कहा कि वह राजनीति से साहित्य को अलग रखने की बात करता है और साहित्य की तथाकथित पवित्रता की बात करता है। साथ ही वह मानव मूल्यों में अनास्था पैदा करने की चेष्टा करता है तथा साहित्य में अन्र्तस्बत की बनिबस्त रूप तत्व पर जोर देता है।

मोहन श्रोत्रिय ने कहा कि जितना खतरा दक्षिण पंथी प्रतिक्रियावाद से है उससे कम चरम क्रांतिकारी लफ्फाजों व छद्म प्रगतिशीलों से नहीं है। उन्होंने कहा कि एक ओर वे ताकतें जो अ-राजनीति की राजनीति फैलाती हैं तथा दूसरी ओर वे जो चिरंतन क्रांति की वकालत करती हैं जिनके नायक सोल्झेनित्सीन जैसे लेखक हैं। दोनों ही से खबरदार रहने की जरूरत है तथा उनकी प्रतिक्रिया के समर्थक विचारों की कलई खोलना जरूरी है। डॉ.भगवतशरण उपाध्याय ने संस्कृति व इतिहास के क्षेत्र में काम करने वाली दक्षिण पंथी प्रतिक्रियावादी ताकतों का अत्यंत व्यापक संदर्भों में विश्लेषण किया। उन्होंने कहा कि इतिहास का राष्ट्रीय स्वर में लिखा जाना उसी तरह से गलत, हास्यास्पद व दकियानूसी आग्रह है जैसे गणित व रसायन का राष्ट्रीय स्वर में लिखा जाने का आग्रह। अनगिनत उदाहरणों के जरिये इसकी पुष्टि की कि इतिहास की पुस्तकों के माध्यम से किस प्रकार सांप्रदायिक और हिन्दूकरण के जहरीले विचार फैलाये गये। उर्दू के शब्द जानबूझकर हिन्दी पुस्तकों से निर्वासित कर दिये गये।

अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण में प्रसिद्ध शायर अली सरदार जाफरी ने लक्षित किया कि जनता को गुमराह करने व प्रतिबद्ध लेखन को नीचा दिखाने के लिए प्रतिक्रियावादी प्रेस जानबूझकर कैसे सफेद झूठ प्रचारित करते हैं। उन्होंने इसके कई उदाहरण दिये। (1) कि कि 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के इशारे पर गठित हुआ। (2) कि फ़ैज अहमद फैज प्रतिशील आंदोलन के खिलाफ थे। (3) कि धीरे बहे दोन रे की रचना शोलोखोव ने नहीं की बल्कि किसी अन्य लेखक की पांडुलिपि चुराकर अपने नाम से छपवाली। हबीब तनवीर ने नाटक, टेलीविजन और रेडियो के क्षेत्र में अपने अनुभवों की चर्चा करते हुए कहा कि रंगमंच में जो कुछ भी सर्वोत्तम है वह कैसे प्रगतिशीलता से घनिष्ठ रूप से हमेशा जुड़ा रहा। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रतिबद्ध लेखकों द्वारा जनता के सर्वोत्तम हित में जनसंचार के साधनों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। तरुण सन्याल ने भी जनसंचार साधनों की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहा कि यह खेदपूर्ण तथ्य है कि इन साधनों पर लेखकों का नगण्य असर है। उन्होंने कहा कि फिल्मों में इसलिये हिंसा व सेक्स पर जोर दिया जाता है जिससे कि दर्शक का ध्यान महत्त्वपूर्ण मसलों पर से हटा रहे।

करणजीत सिंह ने सुझाव दिया कि प्रगतिशील लेखकों को इस बात को दरियाफ्त करना चाहिये कि कहाँ-कहाँ हमारे साहित्य, संस्कृति और शिक्षा-फिल्म पत्रकारिता आदि में किन-किन रूपों में प्रतिक्रियावादी विचारधारा ने घुसपैठ कर रखी है। तभी प्रतिक्रिया की जघन्य जनविरोधी भूमिका को बेनकाब किया जा सकता है।